वक्तव्य

परीक्षासमिति के नियमों के अनुसार उत्तमा के परीक्षार्थियों को निबंध लिखना पड़ता है। प्रस्तुत निबंध भी पं० शेषमणि त्रिपाठी ने सं० १९७७ में इतिहास विषय में उत्तमा परीक्षा देने के अवसरपर लिखा था और परीक्षा-समिति ने उसे स्वीकार किया था।

भारत के मुसलमान शासकों में अकबर अद्वितीय थे। उनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी हुई थी कि हिन्दू उन्हें मुकन्देय ब्रह्मचारी का अवतार मानते थे। जिस शासन प्रणाली की अकबर ने नींव डाली, उसी का अवलम्बन अंगरेजी सरकार भी कर रही है। अतएव ऐसे सम्राट् के विषय में कुछ हाल जानने की इच्छा सभी शिक्षित व्यक्तियों को होती है। हिन्दी में इस विषय पर यह ग्रन्थ पहला ही है, हमें आशा है कि इससे जनता को कुछ लाभ होगा ही।

गोपालस्वरूप भार्गव
एम. एस-सी.
परीक्षा मंत्री

प्रयाग
होलिका १९७८

विषय सूची

ॐ

अकबर की राज्य-व्यवस्था

१—उपक्रम

ह्वयन्तु त्वां प्रतिजनाः प्रतिमित्रा अवृषत ।
इन्द्राग्नी विश्वेदेवास्ते विशि क्षेम मदीधरन् ॥
अथर्ववेद ३ । ३ । ६ ॥

"हे राजन् ! तेरे प्रतिपक्षी भी तेरी सहायता करें । तेरे मित्रों ने तुझे निर्वाचित किया है । इन्द्र, अग्नि, और इतर देवताओं ने तुझे घर अर्थात् प्रजा में ही रक्खा है ।

सन् १५५६ ईस्वी में मुअज्जिन की पुकार सुनकर हुमायूँ स्वर्गलोक को सिधारा । उस समय अकबर बैरामखां के साथ कलानौर में था । उसके मित्रों ने वहीं उसको सिंहासन पर बैठाया । बैरामखां, वकील और खान-खांना की उपाधियों से विभूषित होकर, नये सम्राट् का अतालीक़ बना । सन् १५६० तक इसी की तूती बोलती रही । अकबर एक अपरिपक्व किशोर था । अतएव शासन की बागडोर खानखानां के हाथ में थी । वह एक योग्य और समर्थ व्यक्ति था । उसका हाथ सर्वत्र देख पड़ता था और जब तक वह अपने पदपर रहा तब तक उसके असूयक भी डरते रहे । वस्तुतः मुग़लों को अधीनता में रखने के लिए वह बहुत अच्छा व्यक्ति था । यद्यपि उसके समय में थोड़े से लोग बलवा किया करते थे, तथापि राजद्रोहों की संख्या कम थी और उनका प्रादुर्भाव

प्राय: व्यक्तिगत बदले के भय से होता था। तार्दी बेग की हत्या की कथा प्रसिद्ध ही है। वह शेख़ अबुलमाली को भी मारना चाहता था; परन्तु बीच में अकबर के आ जाने से ऐसा न हो सका। अस्तु, उसका स्वभाव कर्कश था। वह फ़ारसी और शिया था तथा हिन्दुओं को घृणा की दृष्टि से देखता था। वकीले-मुतलक़ बैरामखां ने पानीपत के संग्राम में पराजित हैमू को अकबर से मरवाकर किशोर सम्राट् के लिए ग़ाज़ी की उपाधि पैदा करने की इच्छा प्रकट की थी। अहमद यादगार लिखता है कि उसने हेमू के अपवित्र शरीर से शिर को अलग कर दिया। खानखानां में साम्प्रदायिक पक्षपात की कमी न थी। अपने शासन के तीसरे वर्ष में उसने दिल्ली के एक शिया, शेख़ गदाई, को सदरे-सदर का ऊँचा पद दिलाया। जो सुन्नियों को अच्छा न लगा। वास्तव में खानखानां के हाथ में बहुत बड़ा अधिकार था। उसने भूमिकर विभाग मुज़फ्फ़रखां नामक एक तुर्क के हाथ में सौंप दिया। पर इसका परिणाम अच्छा ही हुआ। वह अच्छा प्रबन्ध करने की चेष्टा करता था। सब से बड़ी बात तो यह थी, कि प्रसिद्ध टोडरमल ने उसी की अधीनता में रहकर बहुत कुछ सीखा और अनुभव प्राप्त किया। बैराम के अन्य कृपापात्रों में से कम से कम पचीस तो, अन्त में, पञ्ज-हज़ारी के पद तक पहुँच गये। कृतघ्न पीर मुहम्मद शीरवानी भी इसकी कृपा का ही प्रतिफल था। बैरामखाँ के अहङ्कार और स्वाभिमान में बहुत कुछ तथ्य भी था। इसी की सहायता से हुमायूं और अकबर को एक बार फिर राज्यलक्ष्मी प्राप्त हुई। जिस समय बालक अकबर सिंहासन पर बैठा उस समय चारों ओर से शत्रुओं के

बादल घिरे आ रहे थे। यदि बैरामखां न होता तो भारत का इतिहास कोई दूसरा ही रूप धारण करता। अकबर की राज्य-व्यवस्था को ढालने में जो स्थान शेरशाह सूर का था, वही स्थान उसके सिंहासन को दृढ़ता देने में बैरामखां को मिलना चाहिये। हेमू ने सिकन्दर सूर के निमित्त दिल्ली और आगरा जीत कर स्वयमेव राजा विक्रमाजीत या विक्रमादित्य के नाम से राजछत्र धारण कर लिया था खानखानां ने अन्य लोगों की सम्मति की उपेक्षा करके हेमू से लड़ने का निश्चय कर लिया। उसने अपने अफ़सरों के लिए एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया और कहा कि 'इस समय या तो जीतेंगे या मर जायँगे'। अन्त में हेमू की हार हुई; और दिल्ली और आगरे का शासन अकबर के हाथ आया। लगभग तीस वर्ष पहले जब बाबर के योधा निराश हो गये थे, तब उस वीर सेनापति और बादशाह ने अपने सिपाहियों से "न दैन्यम्, न पलायनम्" का उपदेश देते हुए कहा था कि हम लोग ईश्वर की शपथ लेकर प्रण कर लें कि ऐसी पवित्र मृत्यु में पीछे न हटेंगे; और न लड़ाई की कठोरता देख कर हिचकिचाहट प्रकट करेंगे।" उस समय बाबर के वचनों ने बड़ा प्रभाव डाला और राणा संग्रामसिंह की हार हुई। यदि सब बातों में नहीं, तो कहीं कहीं तो अवश्य ही बैरामखां बाबर के आदर्श पर चलता था। जिस साम्राज्य की नींव बाबर ने डाली थी उसकी उखड़ी हुई जड़ को फिर से जमाकर दृढ़ कर देने की चेष्टा बैरामखां करता रहा। किन्तु उसकी शक्ति अधिक दिनों तक न रही। अन्तःपुर की महिलाओं, शेख गदाई की नियुक्ति से अप्रसन्न सुन्नी दरबारियों, तथा तार्दी

बेग की हत्या से असन्तुष्ट महानुभावों के प्रभाव में आकर अकबर ने शासन की बाग डोर अपने हाथ में लेना निश्चय कर लिया। इसमें संदेह नहीं कि खानखानां ने भी धृष्टता प्रकट की थी। परन्तु दोनों ओर अविश्वास था और अन्त में वैरामखां को शासन से सन् १५६० में हाथ हटाना ही पड़ा। इस प्रकार अन्त में हमीदाबानू बेगम, माहमाङ्गा, अहमदखां और शहाबुद्दीन का षड्यन्त्र सफल हुआ।

सन् १५६० से १६०५ ईस्वी तक अकबर देश का वास्तविक शासक था। आरम्भ में तीन चार वर्षों तक माहमाङ्गा का शासन पर बड़ा प्रभाव रहा, तथापि उस समय भी अकबर अपनी उच्च और स्वतंत्र स्थिति से परिचित था। वैरामखां के पतन से अकबर की मृत्यु पर्य्यन्त शासन के तीन विभाग हो सकते हैं। पहले पन्द्रह वर्षों में वह संग्राम, आखेट, गजयुद्ध, निर्माण (Building) इत्यादि में बहुत लगा रहता था। जिन महानुभावों का बाद को उसके जीवन और शासन पर प्रभाव पड़ा वह सभी इस समय प्रायः सम्राट् की ही भांति नवयुवक थे। इस काल में विचारों का विकास हो रहा था तथा राज्य विस्तार और शासन सम्बन्धी कार्य हाथ में थे। दूसरा काल १५७६ के लगभग आरम्भ होता है। इस काल में फ़ारस से कुछ शिया तथा अन्य काफ़िरी विचार के लोग आये जिनका प्रभाव धीरे धीरे बढ़ने लगा। साथ ही साथ सम्राट् की बुद्धि और विचार का पूर्ण विकास हो चुका था। उसका ध्यान हिन्दुओं की ओर विशेष आकर्षित हुआ और वह भूमि कर विभाग की उन्नति और सङ्गठन में लगा, जिसका प्रजा पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। लगभग पन्द्रह वर्ष बाद तीसरा काल आरम्भ

हुआ। इस काल की गाथा करुणाजनक है। अधिकारी वर्ग धीरे धीरे वृद्ध होते गये, और एक एक करके सुधारकों की आयु और बल क्षीण होने लगा। वह स्वर्ग की शोभा बढ़ाने के लिए संसार से अलग होने की तैयारियाँ करने लगे। १६०५ में जब सम्राट् मृत्यु-शय्या पर था उसके पहले ही दो पुत्र संसार छोड़ चुके थे। केवल सलीम बचा था; किन्तु वह भी कृतघ्न और राजद्रोही था। सम्राट् के परम प्रिय मित्र अबुल फज़ल की हत्या इसी ने कराई थी। उसके सभी मित्र उस समय तक कूच कर गये थे। राजभक्त राजपूतों में से केवल मानसिंह जीवित थे। अन्त समय सर्वत्र अन्धकार छाया था तथापि अकबर ने जो कुछ किया उसपर आश्चर्य होता है। उसका स्मारक आज तक वर्तमान है। क्योंकि आधुनिक भारतवर्ष की शासन पद्धति प्रायः उसीकी राज्यव्यवस्था का परिणाम है।

कुछ लोग अकबर के पचास वर्षों की तुलना १७५० से १८०० तक के अंग्रेजी राज्य से करते हैं। किन्तु दोनों में बड़ा अन्तर है। तथापि अकबर के समान अंग्रेज लोग भी यथासाध्य प्रजा के धर्म में हाथ नहीं लगाते थे। वह अच्छा शासन करने की चेष्टा करते थे तथा उन्हें भी अकबर के समान देश की सेनाओं के थोड़े थोड़े भागों से ही लड़ना पड़ता था। अस्तु, वर्तमान लेखक को अकबर का समय बड़ा ही विचित्र जान पड़ता है। ऊपरी बातों में कोई भी काल उन पचास वर्षों की समानता कर सकता है। पर यदि सूक्ष्म दृष्टि से अकबर के शासन काल की परीक्षा की जाय तो उस समय को भारतीय इतिहास में निराला ही स्थान देना

पड़ेगा। प्रधान बात तो यही है कि उस काल के अधिष्ठाता की समानता करने वाला कोई भी व्यक्ति भारत के मध्यकालीन और वर्तमान इतिहास में नहीं दृष्टि गोचर होता। विगत दस शताब्दियों में इस देश ने कोड़ियों नर-रत्न पैदा किये, परन्तु अमरकोट में उगा हुआ तारा अत्यन्त चमकीला निकला। शासक तो इन शताब्दियों में कदाचित् वैसा कोई हुआ ही नहीं। उपक्रम के आरम्भ में दिया हुआ मन्त्र अकबर के लिए अनुपयुक्त नहीं है। वास्तव में प्रतिपक्षी भी उसकी श्रेष्ठता स्वीकार करते थे। प्रजा के हित चिन्तन में लगे रहने के कारण अकबर हिन्दुओं के हृदय वत्सल हो गये थे। यद्यपि अकबर और उसकी राज्यव्यवस्था में कुछ दोष भी थे, तो भी इसके कारण उसकी श्रेष्ठता में बट्टा नहीं लगता। जिस नर रत्न ने भारत की बिखरी शासन प्रणाली को सोलहवीं शताब्दी में दृढ़ रूप दिया और जिसकी राज्य-व्यवस्था के अनुसार अब भी इस देश का शासन प्रायः होता है, उसी "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" की राज्य व्यवस्था का विवरण आगे के पृष्ठों में दिया जायगा।

२—अकबर की क्षमता

मनुष्य के व्यक्तिगत चरित का उसके सार्वजनिक जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। समाज भले बुरे को पहचानता है और उसीका सम्मान करता है, जिसमें कुछ योग्यता होती है। समाज ने वास्तविक गुण को पहचानने में कभी कभी भूलें भी की हैं, किन्तु अन्त में हीरे और कांच की परख हो ही जाती है। अकबर अपने समय का अद्वितीय हीरा था। अद्यपि उसके कुछ कार्य घृणित और निन्दनीय थे तथापि उसके उत्कृष्ट चरित्र-बल पर आश्चर्य होता है। जिस प्रकार लार्ड क्लाइव जन्मसिद्ध सेनापति कहा जाता है उसी प्रकार अकबर मनुष्यों का जन्म-सिद्ध शासक था। वह संसार के सर्वोत्कृष्ट सम्राटों में गिना जाता है, किन्तु अबुलफजल तथा अन्य बहुत से पूर्वीय और पश्चिमीय विद्वानों ने अकबर की असीम प्रशंसा की है। इस अतिशयोक्ति से सम्राट् की महिमा कुछ बढ़ी नहीं; वरन् इस अनुपयुक्त उपासना से उस के गुणों का प्रकाश भी धीमा पड़ गया है। यह सच है कि उसने भारत में मुगल शासन की नींव डाली और यह भी सच है कि उसीने दूसरों की थोड़ी ही सहायता से इस शासन को वास्तविक, प्रबल और प्रभावशाली बनाया। सच है कि उसने अपने जीते हुए प्रदेशों को केवल लूट और कर-संग्रह की सामग्री न बना कर जनता की भलाई पर भी विशेष ध्यान दिया; तथापि यह कहना कि वह मनुष्य नहीं देवता था ठीक नहीं है। अकबर अपने युग का केवल

एक नर-रत्न था। वास्तविक घटनाओं से यह नहीं सिद्ध होता कि वह अपने समकालीनों से मानसिक और आत्मिक अभ्यास में नितान्त भिन्न था। हां, वह अपने पिता और पितामह के समान उदार था। उसमें क्षमा करने का भी गुण वर्तमान था। परन्तु आखिरकार वह था तो तैमूर, और चङ्गेज खां के ही वंश का! उसने भी कभी कभी ऐसी निर्दय और क्रूर हत्याएँ की हैं जिन्हें देखकर आजकल का मनुष्य भयभीत और चकित हो जाता है। उसकी भी सेनाएं रुण्ड-मुण्ड के खम्भ खड़ी कर देती थीं। यही नहीं; वह स्वयम् भी अपने क्रोध भाजनों को गुप्त रीति से मारने के लिए विष लिये रहता था। पर इतना अवश्य था कि वह कैरो और कुस्तुंतुनिया से बङ्गाल तक के मुसलमान शासकों में सब से अधिक दयावान् था। पेरुशी कहता है कि "बादशाह आपे से बाहर बहुत कम होता है, किन्तु उसे जब क्रोध आता है तब उसकी मात्रा बहुत अधिक होती है। पर यह बहुत अच्छा है कि उसका क्रोध शीघ्र ही शान्त हो जाता है; क्योंकि उसमें मनुष्यत्व, शिष्टता और दयालुता है।"

मुहम्मद कासिम फ़रिश्ता लिखता है कि "जब हेमू अकबर के सामने लाया गया, उस समय बैरामखां ने बादशाह से उस काफिर को अपने हाथ से मारने को कहा। अकबर ने अतालीक की इच्छा पूर्ण करने के लिए तलवार से सिर को छूकर गाजी की उपाधि प्राप्त की। तब बैरामखां ने तलवार खींच कर उस के धड़ से सिर को अलग कर दिया।" फरिश्ता का लिखना सच मालूम होता है। अहमद यादगार और ब्रोयेक के अनुसार भूतपूर्व डाक्टर स्मिथ लिखते हैं कि किशोर

सम्राट ने ही उसे मारा। वह यह भी कहते हैं कि चौदह वर्ष के अकबर के लिए बैराम की आज्ञा पालन करना स्वाभाविक ही था। पर इसका समाधान फरिश्ता के विवरण से स्पष्ट रीति से हो जाता है। बैराम की ही इच्छा पूर्ण करने के लिए उसने तलवार खींच कर बन्दी के सिर पर रखी थी। अकबर की चलती तो हेमू मारा ही नहीं जाता। उसे गाजी बनने की इतनी प्रबल इच्छा न थी। पर वह उस समय बैराम की बात टाल नहीं सकता था, क्योंकि सिंहासन की रक्षा के लिए उसे प्रसन्न रखना आवश्यक था। यही कारण था कि अकबर ने निषेध न करके उसे मारने की अनुमति दी। इस घटना से विदित होता है कि छोटी अवस्था में भी सम्राट् राजनीति के मर्म्म से परिचित था। राजनीतिक दृष्टि से ही उसने बैराम की इच्छा पूर्ण होने दी।

बैरामखाँ को मालूम था कि बादशाह में दयालुता की मात्रा अधिक है। तभी तो उसने तार्दीबेग के विषय में पहले से नहीं पूछा? फरिश्ता लिखता है कि बैरामखाँ को बादशाह की सम्मति न लेने का कोई पश्चात्ताप नहीं था, क्योंकि वह जानता था कि बादशाह तार्दीबेग की त्रुटियों का ध्यान न करके उसे क्षमा कर देगा। शेख़ अबुलमाली को वह सम्राट् के ही कारण न मार सका। अस्तु, अकबर की दयालुता में किसीको सन्देह नहीं हो सकता। जिस समय वह स्वाधीन सम्राट् नहीं कहा जा सकता था, उस समय भी वह यथासाध्य निर्दय कार्यों को करने की अनुमति नहीं देता था। परन्तु वह राजनीति से परिचित था। यही उसके, दयालुता से कभी कभी विचलित होकर, घोर निर्दय कार्य करने का कारण था। वह

दयालुता के लिए अपने राज्य को नहीं गँवा सकता था। वह दयालु शासक था, न कि दयालु ऋषि। उसके आचरण में यदि क्रोध और निर्दयता का आकस्मिक दोष था तो उसके लिए अकबर की निन्दा नहीं की जा सकती। दयालुता की छाया उसके हृदय में छोटी अवस्था में ही जम चुकी थी। कवि ने सच कहा है कि--"होनहार बिरवान के, होत चीकने पात।"

कुछ लोगों का कहना है कि सम्राट् ने बैरामखाँ को पदच्युत करके उसके प्रति कृतघ्नता प्रकट की। यह ठीक नहीं है। यह सच है कि बैरामखां के ही कारण अकबर दिल्ली का सम्राट बन सका पर उसमें कुछ दोष भी थे। इन्हीं दोषों के कारण उसे अपने उच्च पद से अलग होना पड़ा। वस्तुतः उसके शासन और पतन की गाथा से सम्राट् की क्षमता का बहुत कुछ पता चलता है। सम्राट् और बैरामखाँ में जो सम्बन्ध था उस पर ध्यान देने से अकबर के चरित की दो तीन गूढ़ और विशाल बातों का ज्ञान होता है। प्रथम तो यह कि उस समय भी अकबर राजनीति को भली भाँति समझता था। यदि उस समय उसके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति होता तो खानखानां उसको सिंहासन पर रखकर बलबन की तरह आप शासन करता। किन्तु अकबर नासिरुद्दीन नहीं था। इसमें गुलाम सुलतान के गुण वर्तमान थे, पर उसके दोष इसमें नहीं थे। फ़रिश्ता लिखता है, "कुछ लोग कहते हैं कि बैरामखाँ सम्राट् को बन्दी करने का जाल सोच रहा था। और इसी कारण अकबर ने आगरा छोड़ा था।" यद्यपि इसमें विश्वास नहीं जमता (और फ़रिश्ता भी इस विषय में कोई निश्चयात्मक बात नहीं लिखता है) तो भी इतना तो अवश्य

ही सत्य है कि खानखाना सम्पूर्ण शक्ति अपने ही हाथ में रखना चाहता था। अपरञ्च उससे प्रायः सभी लोग अप्रसन्न थे। सम्राट् ने उसे पदच्युत करने में बड़ी योग्यता दिखलाई। यदि वह निकाला न जाता, तो बहुत कुछ सम्भव है कि असन्तुष्ट दरबारियों के षडयन्त्र से सम्राट् और अतालीक दोनों को हानि पहुँचती। किन्तु अकबर जानता था कि कहां पर त्रुटि है और उसे दूर करने में लग जाता था। वह स्थिति को समझ गया। खानखानाँ को मक्का जाने की आज्ञा मिली। कुछ लोगों के बहकाने से वह अकबर के विरुद्ध लड़ने को तैयार हुआ। हारने पर जब उसको अपने किये का पश्चात्ताप हुआ तब वह दरबार में आया। अपनी पगड़ी गले में लटका कर वेग से आगे बढ़ा और सम्राट् के पैरों पर गिर कर आंसू बहाने लगा। सम्राट् ने कहा कि "यदि बैरामखां को पसन्द हो, तो वह कालपी और चन्देरी का शासन करें अथवा दरबार में रहकर सम्राट् के कृपा भाजन बनें अथवा यदि उनका मन ईश्वर की ओर झुका हो तो वह मक्का को जा सकते हैं—उन्हें पहुँचाने के लिए उनके पद के अनुसार प्रबन्ध किया जायगा।" इसे कृतघ्नता नहीं, प्रत्युत कृतज्ञता कहते हैं। अकबर एक कृतज्ञ जीव था। उस पर कृतघ्नता का दोष नहीं लग सकता। इस प्रकार खानखानाँ के पतन से सम्राट् की राजनीतिज्ञता, क्षमा शीलता और कृतज्ञता का स्पष्ट पता चलता है। बैरामखां तथा महमाङ्गन के सम्बन्ध में सम्राट् ने अपने उत्कृष्ट चरित्र बल का परिचय दिया। अपनी अपरिपक्व अवस्था में भी उसने दिखला दिया कि उसमें व्यक्तित्व का प्राबल्य था। संसार के सामने उसने उसी समय

प्रकट कर दिया कि वह अपने कठिन से कठिन बन्धनों को तोड़ने में समर्थ था। उसमें बुद्धि और शक्ति दोनों थीं। यही व्यक्तित्व उसके भविष्य जीवन पर भी लक्षित होता है। वह कट्टर मुसलमान नियमों को लांघ कर जीवन पर्य्यन्त सहिष्णुता की नीति पर चला! कट्टर सुन्नी जमात के लोग उसके कार्य्यों को घृणित समझते थे तो भी अकबर के व्यक्तिगत गुण इतने विशद और उच्च थे कि १५८२ में मांसरेट आश्चर्य के साथ लिखता है कि अकबर की हत्या मुसलमानों ने नहीं की! यह सच है कि राजद्रोह होते रहे, परन्तु उसकी हत्या का उद्योग प्रायः नहीं होता था, उसके गुणों ने घातक की धृष्टता से भी उसकी रक्षा की! अन्तिम दिनों में जब उसके मित्रगण स्वर्गधाम को चले गये थे, तब सम्भव है कि कोई उससे प्रेम न करता रहा हो; पर डरते सब थे! वास्तव में (जैसा कि एक योरोपीय ग्रन्थकार ने लिखा है) वह "पूर्व्व का भय" ("Terror of the East") था!

अकबर में महात्वाकांक्षाएँ अधिक थीं। उसका सारा जीवन युद्ध और विजय में बीता। लोग कहते हैं कि वह विजित प्रदेश में सुख और शान्ति फैलाने के ही लिए उसे जीतता था। किन्तु वास्तविक घटनाओं से दूसरी ही गाथा प्रकट होती है। रानी दुर्गावती के समय में गोंडवाना की प्रजा आसफ़खां के समय से अधिक सुखी थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वह गोंडवाना काशमीर, सिंध और दक्षिण के राज्यों को अपनी सीमा बढ़ाने के ही लिए जीतने का यत्न करता था। अपने राज्य को बढ़ाने की उसकी इच्छा थी और इस में वह बहुत कुछ सफल भी हुआ।

उस की सफलता का मूल कारण उसकी व्यक्तिगत योग्यता ही थी। उसका शरीर स्वस्थ और फुर्तीला था। उसमें वीरता भरी थी। "अफीम विरोधियों को हराने के लिए अकबर का दृष्टान्त सुलभ देख पड़ता है!" वह अफ़ीम तो बहुत खाता था, पर उसे मांस खाना नहीं पसन्द था। वह प्रायः बहुत दूर तक पैदल चला जाता था। विशेषतः जब किसी पवित्र स्थान को जाना तब तो अवश्य कुछ दूर पैदल जाता था। तैराक और घुड़सवार तो वह अव्वल दर्जे का था। चौगान में वह निपुण था और शिकार में दक्ष था। चीतों के मारने में उसकी चतुराई और वीरता की कहानियाँ इसके प्रमाण हैं। जहांगीर अपने पिता के विषय में यों लिखता है, "वह कुछ लम्बाई लिये हुए डील डौल में मध्यम दर्जे का था। उसका वर्ण गेहुआं था। आँखें और भौंहे काली थीं। उसका शरीर सुन्दर था तथा उसकी चौड़ी छाती और लम्बी भुजाओं से उसकी सिंह की सी शक्ति का परिचय मिलता था। नाक के बाईं ओर एक सुन्दर तिल था जिसे लोग धन और भाग्य का चिह्न समझते हैं। उसकी ध्वनि उच्च और बोली हर्षजनक थी। उसका आचरण और स्वभाव औरों से भिन्न था तथा बदन से दिव्य प्रताप की झलक देख पड़ती थी।"

जो कुछ हो, पर अकबर के साहस और वीरता पर आश्चर्य होता है। सन् १५६६ में जब सम्राट खां जमान का पीछा करते करते रायबरेली पहुँचा, तब उसे ज्ञात हुआ कि खां जमान गंगा पार करके मालवा या दक्षिण को जा रहा है। इस समाचार को पाकर उसने खां जमान को पकड़ने का

निश्चय कर लिया। मानकपुर के घाट पर सन्ध्या समय पहुँचा। कोई नाव न मिली। पर वह अपने अफ़सरों की इच्छा के प्रतिकूल हाथी पर चढ़ कर गहरी नदी में चल पड़ा। हाथी को तैरना भी नहीं पड़ा और वह सकुशल दूसरे पार पहुँचा। परन्तु उसकी शरीर-रक्षक सेना में से सौ व्यक्ति जो नदी में चल पड़े बड़ी कठिनाई से पार तक आये। इन्हीं थोड़े से सैनिकों को लेकर वह प्रातःकाल होते होते शत्रु के खेमे के पास पहुँच गया। वहीं आसफ़ खां हिर्वी और मजनू खाँ कड़ा की सेना लेकर सम्राट से मिले। शत्रु के ध्यान में भी नहीं आया था कि अकबर सेना को पीछे छोड़ कर नदी को पार करने का यत्न करेगा! उसकी रात्रि आनन्द मनाने में बीती। परन्तु प्रातःकाल होते ही शाही नक्कारा सुनकर उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। ऐसी अद्भुत और साहस पूर्ण घटनाओं से सम्राट का जीवन भरा है। अनेक स्थानों पर तो उसने इससे भी बढ़कर क्षमता दिखलाई थी! जिस समय १५७२ में सम्राट भरोच की ओर इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा के विरुद्ध चला, उस समय मिर्ज़ा मुगल सेना से बचने के लिए पञ्जाब की ओर से राजद्रोह पैदा करने के निमित्त बढ़ा। सम्राट् को रात के नौ बजे इसका समाचार मिला। खेमें में कुमार सलीम को नियत करके उसने थोड़े से घुड़ सवारों को लिया और मिर्ज़ा को रोकने के लिए चल पड़ा। दूसरे दिन जब सम्राट महेन्द्र नदी के किनारे पहुँचा उस समय उसके साथ केवल चालीस सैनिक बच रहे थे। उसने नदी के दूसरे किनारे पर मिर्ज़ा को एक सहस्र मनुष्यों के साथ ठहरे हुए देखा। इस कठिन समय पर सय्यद मुहम्मद

खां बादा, राजा भगवान दास, राजा मानसिंह, शाह कुलीखाँ, सुर्जुनराय, रनथम्भोर के राजा और अन्य सामन्तगण सत्तर घुड़सवारों के साथ पहुँचे। फ़रिश्ता कहता है कि अकबर के साथ उस समय १५६ से अधिक मनुष्य नहीं थे। अधिक सेना आने ही वाली थी पर सम्राट् ने ठहरना उचित नहीं समझा। शत्रु की सेना पर आक्रमण कर ही दिया। जिस समय अकबर अपने राजपूतों के साथ एक गली में जिसमें तीन सवारों के ही लिए स्थान था रुका था, उस समय शत्रु के तीन सैनिकों ने अकबर पर आक्रमण किया। इस समय सम्राट् की रक्षा करने के लिए राजा भगवानदास ने अपूर्व वीरता दिखला कर अपने प्राण खोये। अस्तु, सम्राट् ने शत्रु के सैनिकों का पीछा किया। जब मिर्ज़ा दृष्टिगोचर हुआ तब उस पर वार किया, किन्तु वह अपने तेज़ घोड़े पर भाग निकला। फ़रिश्ता कहता है कि जैसा व्यक्तिगत साहस और निर्भीकता अकबर ने इस समय दिखलाई वैसी कदाचित् ही किसी बादशाह ने दिखलायी हो। वह यह भी स्वीकार करता है कि सम्राट् ने अनावश्यक ही अपने शरीर को ऐसे भय के स्थान में डाला था। अस्तु, सम्राट् की निर्भीकता अद्भुत थी। ऊपर के दो उदाहरणों से उसकी शीघ्रगामिता और कार्य-कुशलता का भी पता चलता है। शत्रु के सामने वह इतना शीघ्र पहुँच जाता था कि सब लोग दङ्ग हो जाते थे। १५७३ में जब इख्तियारुलमुल्क और मुहम्मदहुसेन मिर्ज़ा अहमदाबाद को घेर रहे थे, उस समय भी अकबर ने अपनी अद्भुत शक्ति और क्षमता का परिचय दिया। अहमदाबाद के समीप पहुँच कर उसने शत्रु के पास अपने आगमन का समाचार भेजा और

जब नगर चार मील रह गया तब नौबत बजाने की आज्ञा दे दी। शत्रु हक्का बक्का हो गया पर तुरन्त युद्ध की तैय्यारी में भी लग गया। मुहम्मद हुसैन मिर्ज़ा थोड़े से घोड़ों के साथ नदी के किनारे गया और सुभान कुली खां को देखकर पूछा कि यह किसकी सेना है? उत्तर मिला कि "सम्राट् स्वयं इस सेना के साथ आये हैं"। मिर्ज़ा ने कहा कि "यह असम्भव है; क्योंकि केवल चौदह दिन हुए जब मेरे गुप्तचरों-ने उसको आगरा में देखा था; अपरञ्च इस सेना में शाही हाथी भी कोई नहीं दीख पड़ते"। सुभान कुली खां ने उत्तर दिया कि "सम्राट् को आगरे से चले केवल नौ दिन हुए, स्पष्ट है कि कोई भी हाथी इतनी जल्दी उसके साथ नहीं आ सकते थे।" तात्पर्य यह है कि सम्राट् में शीघ्र-गामिता और कार्य्य कुशलता का गुण अद्वितीय था।

अकबर की प्रवृत्ति न्याय की ओर अधिक थी। वह कहता था कि "यदि मैं स्वयं कोई दोष करूंगा तो मैं अपने विरुद्ध भी न्याय करूँगा।" यह कहना केवल कहना मात्र न था। वह अपने समय के अनुसार न्याय करता था। उसकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। मनुष्यों के स्वभाव का उसे गहरा ज्ञान था। अतएव जब वह स्वयम् न्याय करता था तब उसको बड़ी सफलता होती थी। फ़रिश्ता ने अकबर के आचरण के सम्बन्ध में एक बहुत अच्छा दृष्टांत दिया है। वह लिखता है कि "लड़ाई में पकड़े हुए हाथी नियमानुसार सम्राट् को मिलने चाहियें थे। पर खांज़मान और बहादुर खां सीस्तानी ने एक बार सब अपने पास रख लिये। नियम-भङ्ग का समाचार पाकर जब अकबर इनके विरुद्ध चला तब

वह लूट का सब माल लेकर अकबर को समर्पित करने चले। किन्तु सम्राट् बड़ा ही उदार और दयालु था। उसने सब कुछ लौटा दिया। उसने लिया केवल उतना ही जितना नियम पूर्वक उसे मिलना चाहिये था!" उस समय का दूसरा कोई बादशाह होता तो सब कुछ ले लेता; पर अकबर न्याय पूर्ण भाग से अधिक नहीं लेना चाहता था। डाक्टर स्मिथ का कहना है कि "सम्भवतः अकबर की दयालुता स्वाभाविक नहीं होती थी, प्रत्युत उसका भी सम्भवतः राजनीतिक कारण रहता था।" इसके प्रमाण में वह सम्राट् के दो तीन क्रोध और निर्दयता के कार्यों का उदाहरण देते हैं। स्मिथ का कहना सच हो सकता है पर इसमें कोई वास्तविक सार नहीं है। अकबर की दयालुता से राजनीतिक लाभ हुए हैं, किन्तु इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वह राजनीतिक दृष्टि से ही दयालुता दिखलाता था। यों तो मनुष्य के आचरण में अपूर्णता होती ही है। अतएव दयालु मनुष्य के लिए भी कभी कभी निर्दयता और क्रोध कर जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

अन्य राजनीतिज्ञों के समान अकबर भी अपने हृद्गत भावों को छिपाता था। वास्तव में राजनीतिज्ञों को ऐसा करना आवश्यक और उचित भी है। कभी कभी वह कहता कुछ था और हृदय में कुछ और ही होता था। गोआ के पुर्तगालियों के साथ वह ऊपर से तो बड़ी मित्रता का व्यवहार करता था पर भीतर से उनकी हानि और नाश का उपाय सोचा करता था। असीरगढ़ में खानदेश के बादशाह के प्रति भी उसका व्यवहार इसी ढंग का था। धार्मिक मामलों में मुसलमान धर्म के अनुकूल बहुत सी बातें वह

राजनीतिक दृष्टि से ही करता था। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि "सम्राट् का परमेश्वर पर परम विश्वास है और वह सत्य की खोज में लगा रहता है। वह भीतरी तथा बाहरी कष्टों का भी सहन करता है; तो भी वह कभी कभी आजकल के कट्टर मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए मुसलमानी प्रार्थना में भी सम्मिलित होता है।" अंतिम बार १५७९ में अजमेर में उसके जाने का भी यही कारण जान पड़ता है। "दीन पनाह ने सैय्यद को प्रसन्न रखने के ही लिए उस पत्थर का आदर से स्वागत किया था जिस पर कि (लोग कहते थे) मुहम्मद के चरणों का निशान था, यह बातें अबुलफ़ज़ल की पुस्तक में हैं, इसलिए इनमें सन्देह नहीं हो सकता। बार्टोली कहता है कि अकबर ने अपने हृदय के भाव अथवा विश्वास या धर्म्म के विषय में ठीक ठीक जानने का कभी अवसर ही नहीं दिया। सम्भव है कि इसका राजनीतिक उद्देश्य रहा हो पर राजनीतिक सफलता में तो इससे अवश्य ही सहायता मिली। बार्टोली फिर कहता है कि "सभी बातों में अकबर ऐसा ही था। वह देखने में तो बड़ा सच्चा और निश्छल था; परन्तु वस्तुतः उसके शब्दों और कार्यों में बड़ी विभिन्नता थी। यदि कोई उसके आज के वचनों और कार्य की गत दिवस से तुलना करे तो उसे दोनों में कोई समानता न मिलेगी।" वास्तव में सम्राट् के आचरण पर साधारण न्यायालय नहीं विचार कर सकता। इसके लिए राजनीतिक न्यायालय में ही जाना उचित और न्याय सङ्गत है। उस न्यायालय में क्रूरता से विचार करने पर भी अकबर के चरित्र में दोष निकालना कठिन होगा। यदि दोष होंगे तो वह गुणों की ढेरी में छिपे पाये जायँगे।

१९१९ के कलकत्ता-रिव्यू में प्रोफ़ेसर ब्लोकमैन ने 'जहांगीर के आचरण' विषय पर बड़ा उत्तम लेख दिया था। उसमें उनका कहना है कि "समस्त मुसलमान शासकों में अकबर अपने राजकीय कर्त्तव्य को सबसे अधिक समझता था। उस के समय में झगड़े शान्त किये गये, अविश्वास कम किये गये, और देशभक्ति के विचारों से काम लिया जाने लगा। सम्राट् को विश्वास था कि उसको एक पवित्र कर्त्तव्य का पालन करना है और उसे अपने कार्यों के लिए ईश्वर के प्रति उत्तरदायी होना पड़ेगा। वह जानता था कि कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिए उसको शासन के कार्य पर ध्यान देना चाहिये। छोटी छोटी बातों के भी समझने में जो समय लगता है उसे यही समझना चाहिये कि उतना समय परमेश्वर की सेवा में लगा है।"

अकबर साक्षर नहीं था किन्तु ज्ञान लिप्सा उसमें अधिक थी। शासन के गूढ़ तत्वों को तो उसके समान बहुत कम लोगों ने समझा है। वह पुस्तकें पढ़ तो नहीं सकता था परन्तु १६०५ में उसके पुस्तकालय में २४००० चुनी हुई हस्तलिखित पुस्तकें मिलीं। सम्राट् बहुत सी पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ रखता था—एक प्रति बाहर रहती थी और दूसरी अंतः पुर में। इससे पता चलता है कि अन्तःपुर में भी वह पुस्तकें पढ़वाकर सुनता था। अकबर वास्तव में बड़ा धार्मिक व्यक्ति था। उसका मस्तिष्क धर्म की कट्टरता की दीवाल को लाँघ कर स्वच्छन्द धर्म्म में भ्रमण करता था। दिन में चार बार वह ईश्वर की प्रार्थना करता था—प्रातः, मध्याह्न, सायम् और निशीथ। आत्मचिन्तन और ईश-स्तुति में उसका

बहुत समय बीतता था। उसका स्वभाव तो मनोहर था। पादरी जेरोम जेवियर कहता है कि वह बड़े के साथ बड़ा और छोटे के साथ छोटा है। ड्यू जैरिक का कहना है कि वह अपने कुटुम्ब को प्रियतम, बड़ों को भयावह और छोटों पर दयालु था। वह छोटे और साधारण लोगों के साथ इतनी सहानुभूति रखता था कि उनकी बातें बराबर सुनता और प्रार्थनाएँ स्वीकार करता था। उनके तुच्छ उपहारों को बड़े आदर और प्रेम के साथ ग्रहण करता था। इतना आदर तो वह बड़े बड़े दरबारियों के उपहारों का नहीं करता था! यही सब कारण थे जिनसे सम्राट् सर्वप्रिय हो गया था।

संक्षेप में, यही कहा जा सकता है कि अकबर नीति-निपुण, साहसी, कार्यशील, न्यायप्रिय, वीर, दयालु, कृतज्ञ, ज्ञान-लिप्सु, धार्मिक, सच्चरित्र* और सफल राजनीतिज्ञ, शासक और विजेता था। ऊपर के दृष्टान्तों से तथा आगे वर्णित उसकी राज्य व्यवस्था से सम्राट् की अद्भुत क्षमता का पता चलता है। अस्तु अकबर की क्षमता बड़ी थी। और भारतीय शासन के निर्माण में उसका बड़ा भाग था। इस नरपति-कुल-तिलक की क्षमता में भला सन्देह ही किसको हो सकता है?

---

* हां मीना बाज़ारवाली घटना उसके लिए कलङ्क पूर्ण थी, तो भी अकबर में उत्कृष्ट चरित्र बल था।

३—पठान शासन-पद्धति

अकबर के व्यक्तिगत गुणों की परीक्षा हो चुकी। उसके व्यक्तित्व और क्षमता का वर्णन किया जा चुका। अब एक दूसरे आवश्यक विषय की पड़ताल करनी है। सम्राट् की राज्यव्यवस्था को समझने के लिए दो बातों का जानना आवश्यक है—एक तो उसका व्यक्तिगत चरित्र और दूसरे उसके शासन के पहले की राज्यपद्धति। पिछले अध्याय से पहली बात पर प्रकाश पड़ता है। अब दूसरी पर विचार करना है। अकबर के पिता और पितामह ने देश की राज्यव्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया था। न तो उनकी इधर प्रवृत्ति ही थी और न उनको इसके लिए समय ही मिला। किन्तु शेरशाह सूर ने थोड़े समय में ही बहुत कुछ किया। उसके सिद्धान्तों का आधार दिल्ली के सुल्तानों का ही शासन था। उसने कोई नई पद्धति नहीं चलायी, वरन् पठान राज्यव्यवस्था के ही मूल तत्वों को सुधारा और जागृत किया, तो भी उसकी चलायी हुई पद्धति तथा पहले की पद्धति में कुछ भेद भी था। अतएव पठान राज्य व्यवस्था के दो भाग हैं:—पहला पूर्व-पठान-शासन पद्धति और दूसरा उत्तर-पठान-शासन-पद्धति। यहाँ पर संक्षेप में दोनों का विवरण देना आवश्यक है।

(क) पूर्व पठान शासन—पद्धति

पूर्व-पठान-शासन की तीन शताब्दियों में लड़ाई और मारकाट की ही गाथा प्रायः देख पड़ती है। सिंहासन में कुछ

दृढ़ता न थी। जिस व्यक्ति में क्षमता थी वही लोहू की धारा में सने हुए सिंहासन को अपने अधिकार में कर लेता था। प्रायः पूरा हिन्दुस्तान दिल्ली के अधिकार में था और भिन्न भिन्न प्रान्तिक शासकों में स्वतन्त्रता की मात्रा भी भिन्न भिन्न थी। राजधानी के समीपस्थ स्थानों में प्रान्तिक शासकों को इतनी स्वाधीनता न थी जितनी दूर वालों को। वास्तव में यही दशा थोड़े बहुत अन्तर के साथ मुग़ल साम्राज्य के अन्त तक रही। प्रबल शासकों की अधीनता में प्रान्तिक शासकों को उतनी स्वच्छन्दता न थी। पर सुदृढ़ भुजाओं के दूर होते ही यह लोग स्वतन्त्र होने की चेष्टा में लग जाते थे। दिल्ली के सिंहासन पर दो तीन अयोग्य व्यक्तियों के आते ही राज्य भर में गड़बड़ी मच जाती थी। नये नये शासक अपने सिर उठाने लगते थे और पुराने स्वच्छन्द हो जाते थे। यदि फिर कोई प्रबल व्यक्ति सिंहासन[१] पर आता तो उसे नये सिरे से जीत का काम आरम्भ करना होता था। शांति तो उस समय थी ही नहीं; तो भला राज्य प्रणाली को दृढ़ रूप कैसे दिया जा सकता था? प्रत्येक सुल्तान यह समझता था कि हिन्दुस्तान में भौगोलिक एकता है। अतएव इस देश में राजकीय एकता लाने की चेष्टा करना स्वाभाविक था। एक तो यह काफ़िरों का देश था, दूसरे सम्पूर्ण देश में भौगोलिक एकता थी। बस, पठानों का शासन प्रायः सैनिक शासन था। किसी किसी सुल्तान को विश्व विजेता बनने की भी अभिलाषा होती थी। मुहम्मद तुग़लक के स्वप्नों में से एक फ़ारस और चीन का विजय था। अलाउद्दीन ख़िलजी ने भी यही स्वप्न देखा था। दिल्ली में एक अपना प्रतिनिधि

रख कर वह सिकन्दर की भाँति संसार जीतने के लिए जाना चाहता था। किन्तु प्रसिद्ध ऐतिहासिक बारनी के पितृव्य ने उसे हिन्दुस्तान के ही भिन्न भिन्न भागों को जीतने की सम्मति दी, जिस पर सुल्तान भी सहमत हो गया। अस्तु, पठान शासकों को विश्वविजय की अभिलाषा होती थी। उनमें सैनिक बल भी था। परन्तु विजित प्रदेशों में चिरस्थायी राज्यप्रणाली स्थापित करना उनकी क्षमता के प्रायः बाहर था।

गुलाम, खिलजी और तुग़लक तीनों वंशों में कुछ बुद्धिमान सुल्तानों ने शासनप्रणाली पर भी ध्यान दिया था। उन्होंने आवश्यक परिवर्तन और परिशोध भी किया था। लोदियों ने भी शासन की योग्यता दिखलाई थी किन्तु उनका वर्णन अलग करना अच्छा होगा। उनको पूर्व-पठान-काल में सम्मिलित करना अनुपयुक्त है। क्योंकि तैमूर के आक्रमण के साथ ही पूर्व पठान-काल का अंत हो चुका था। लोदियों से सूरियों तक के शासन को उत्तर-पठान-काल में ही रखना चाहिये। वास्तव में पठान काल वही है भी। क्योंकि गुलाम खिलजी और तुग़लक वंशों को पठान नाम भूल से ही दिया गया है। अस्तु, सुल्तान अलशमत और बलबन, अलाउद्दीन खिलजी तथा मुहम्मद तुग़लक और फ़ीरोज़शाह के नाम पूर्व पठान कालीन राज्यव्यवस्था के सम्बन्ध में लिये जाते हैं। इन लोगों के शासन की मुग़लों से तुलना की जाय तो इनकी राज्य व्यवस्था अवनत मालूम होती है। परन्तु नई खोजों से पता चला है कि किन्हीं किन्हीं बातों में यह मुग़लों से बढ़ कर भी थे। एक बड़ा भेद पठान

सुल्तानों और मुग़ल सम्राटों में यह था कि यह लोग यद्यपि वास्तव में स्वाधीन थे तथापि अपने को खलीफा के अधीन ही समझते थे। अलाउद्दीन खिलजी नया मत स्थापित करना चाहता था। बहुत संभव तो यह है कि वह राजनीतिक उद्देश्यों से ही ऐसा करना चाहता था किंतु कुछ सोच समझ कर रुक गया। संभव है अकबर पर सुल्तान के इस राजनीतिक स्वप्न का भी प्रभाव दीन-इलाही के सम्बन्ध में पड़ा हो।

सुल्तान अलतमश ने अरबी ढंग का सिक्का पहले पहल भारत में ढालना आरम्भ किया। चाँदी के चौड़े सिक्के यही ढलवाने लगा। अब तक विजेताओं ने देशी ढंग के सिक्के ढाले थे। सुल्तान का नाम नागरी अक्षरों में और कभी कभी अरबी अक्षरों में खुदा रहता था। सिक्कों पर हिन्दू चिह्नों का ही प्रयोग होता था। परन्तु अब पूर्णतः अरबी रीति का अनुसरण होने लगा। बलबन ने बाद को चलकर सोने का टाँका चलाया और मुहम्मद तुग़लक ने करेंसी सिक्का ताम्बे का चलाया। यद्यपि मुहम्मद तुग़लक का प्रयत्न असफल हुआ तो भी ग़ुलामों के समय से तुग़लकों तक के इतिहास पर दृष्टिक्षेप करने से विदित होता है कि सिक्के की उन्नति तथा अन्य आर्थिक आयोजन इत्यादि करना पठान शासन की एक मुख्य बात थी।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के अर्थ सम्बन्धी सुधारों से बहुत लोग परिचित हैं। उसका सिद्धान्त था कि प्रजा में अधिक धन का रहना राजद्रोहों का कारण होता है, क्योंकि अधिक धन भी एक रोग है। सुल्तान इस रोग को दूर करने की चिन्ता करने लगा। प्रसिद्ध ऐतिहासज्ञ बरनी कहता

है, "सम्राट् ने आज्ञा दे दी कि जहाँ जहाँ मिल्क, इनाम या वक्फ़ के गाँव हों, सब ज़प्त कर लिये जायं। प्रजा पर हर तरह का दबाव डाला जाता था तथा अनेक प्रकार के बहानों से उनसे रुपया लिया जाता था। बहुतों के पास तो बिल्कुल रुपया न रह गया। यहाँ तक कि अंत में मालिकों और अमीरों, तथा अफसरों, मुल्तानियों और बैंकरों को छोड़कर किसी के पास एक पैसा भी न रह गया। ज़प्ती इतनी कठोर थी कि कुछ सहस्र बंकों को छोड़कर सभी पेंशनें, जागीरें और वक्फ़ें ज़प्त करली गयीं। जनता अपनी जीवनवृत्ति के ही उपार्जन में इतनी तल्लीन थी कि राजद्रोह का कोई नाम भी न लेता था।" हिन्दुओं का धन इतना खींच लिया गया कि प्रायः कोई भी घोड़े या हथियार या अच्छे कपड़े या अन्य सुख की सामग्री का प्रयोग करने योग्य न रह गया। लेन-पूल के अनुसार अपनी उपज का आधा भाग हिन्दुओं को भूमि-कर के रूप में देना पड़ता था। उन्हें अपनी भैंसों बकरियों तथा अन्य दूध देने वाले जानवरों के लिये भी कर देना होता था। नये नियमों का पालन बड़ी कड़ाई से होता था। कर वसूल करने में बड़ी ही कड़ाई होती थी। सोना चाँदी की तो बात ही दूसरी है; यहाँ तक कि पान भी हिन्दुओं के यहाँ नहीं मिलता था। इस देश के दरिद्र सहकारी नौकरों की स्त्रियों को मुसलमानों के घरों में नौकरी करनी पड़ती थी। अतएव सरकारी नौकरी को मृत्यु से भी कठोर जान कर हिन्दू लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। यहाँ तक कि कोई हिन्दू ऐसे व्यक्ति से अपनी लड़की का विवाह नहीं करता था।

लेनपूल के इतिहास से हिन्दुओं की तत्कालीन दशा पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस जाति का भाग्य दीनता और अनादर में ही जमा था। आर्थिक स्थिति तो अत्यन्त शोचनीय थी ही; इस जाति की कन्याएँ मुसलमान घरों में नाममात्र के वेतन पर नौकर रखी जाती थीं। अलाउद्दीन के प्रश्न का काज़ी ने उत्तर दिया था वह उल्लेखनीय है। काजी मुग़ीसुद्दीन ने कहा कि "हिन्दुओं को ख़रज गुजार कहते हैं। भूमिकर का कर्मचारी उनसे यदि चाँदी माँगे तो उन्हें सुवर्ण लाना चाहिये। उन्हें प्रश्न करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि अफसर उनके मुँह में धूल फेंके या थूकना चाहे तो उन्हें अपना मुख खोल देना चाहिये। इससे ज़िम्मी का विनय ज्ञात होता है। इसलाम की विभूति ही कर्तव्य है। हिन्दुओं को नीचा करना विशेष धर्म है; क्योंकि इनसे बढ़कर इसलाम का द्वेषी कोई नहीं है।" सुल्तान बुद्धिमान था। उसने कहा कि "आपको संसार का अनुभव नहीं है तथापि मैंने हिन्दुओं को इतना दरिद्र और आज्ञाकारी बना दिया है कि वह चुहियों की तरह मेरे कहने पर बिल में भी घुस जायँगे।"

अलाउद्दीन दण्ड भी बड़ा कठोर देता था वस्तुतः पठान राज्य काल में यही दशा रही। बलवन और अलाउद्दीन तो इतने निरक्षर तथा अशिक्षित थे कि उनसे किसी दूसरे व्यवहार की आशा भी नहीं करनी चाहिये। किन्तु अपने समय का अद्वितीय विद्वान् मुहम्मद तुग़लक भी तो कठोरता के लिए प्रसिद्ध है! षड्यन्त्र का पता लगने पर ख़िल्जी ने मुग़लपुर की स्त्रियों और लड़कों तक को मरवा डाला। बारनी

कहता है कि "अबतक किसी दूसरे ने पुरुषों के दोषों के कारण स्त्रियों और बच्चों पर हाथ नहीं लगाया था।" वह स्त्रियों और लड़कों को भी बन्दीगृह में भेज देता था, सुल्तान ने इस विषय पर स्वयम् काज़ी से कहा था कि "जब सिपाही सेना के एकत्र होने के समय नहीं आते, तब तीन वर्ष का वेतन उनसे ले लिया जाता है। शराबी और शराब बेचने-वाले गड्ढे में ढकेल दिये जाते हैं। यदि कोई पुरुष परस्त्री का सम्भोग करता है तो उसे ऐसा दंड देता हूँ कि ऐसा फिर न करे। स्त्री को तो मरवा ही डालता हूँ। अच्छे बुरे पुराने या नये सभी राजद्रोहियों को मरवा डालता हूँ। उनकी स्त्रियों और सन्तानों को भिक्षुक बना देता हूँ। रुपये सम्बन्धी कड़ाई का मैं भी कड़ा दण्ड देता हूं और राजनीतिक बन्दियों के साथ भी कठोरता का वर्ताव करता हूँ। अस्तु, पूर्व पठान काल में दण्ड बड़ा ही कठोर होता था। बलबन, अलाउद्दीन ख़िलजी और मुहम्मद तुग़लक़ की कठोरता इसका प्रमाण है।

गुप्तचरों के आयोजन में ख़िलजी का नाम प्रसिद्ध ही है। "कोई उसके जाने बिना कहीं जा नहीं सकता था; और जो कुछ दरबारियों, बड़े बड़े लोगों और अफ़सरों के यहाँ रहा था उसका समाचार गुप्तचरों द्वारा सुल्तान को मिलता रहता था।" "यह प्रथा यहाँ तक बढ़ी थी कि कोई बड़ा आदमी एक बड़े घर में भी ज़ोर से बोलने का साहस नहीं कर सकता था। यदि उन्हें कुछ कहने की आवश्यकता पड़ती थी तो संकेत द्वारा बातें करते थे। वह गुप्तचरों की रिपोर्टों से अपने ही घर में कांपते थे। कोई भी अनुचित शब्द या कार्य्य बिना

दण्ड के नहीं बचना था। बाज़ार सम्बन्धी बातें. क्रय-विक्रय तथा मोलभाव करना इत्यादि सब समाचार सुल्तान को दिये जाते थे। बाज़ार पर सुल्तान का पूर्ण शासन था। सुल्तान ने आज्ञा दे दी थी कि "बड़े बड़े लोग न तो आपस में किसी के घर जायँ, न भोज (दावत) दें और न सभाएँ करें।" सुल्तान की आज्ञा बिना वह किसी से मित्रता नहीं कर सकते थे; यहाँ तक कि किसी को अपने गृह में रखने की भी उन्हें आज्ञा न थी।

बलबन के विषय में लेनपूल ने कहा है कि उसकी कठोरता और कड़ी देखभाल का भी कारण था। उनका कहना है कि यदि उसने बड़ी कठोरता दिखलाई तो वह दोषी नहीं है, क्योंकि यह उसके जीवन मरण का प्रश्न था। यदि बात उस समय के सभी सुल्तानों के विषय में कही जा सकती है। षड्यन्त्रों की कमी पठान काल में भी न थी। सुल्तान को अपनी शरीर रक्षा के लिए भी कठोर होना पड़ता था। वास्तव में, बलबन और अलाउद्दीन खिलजी के समान शासक की उस समय आवश्यकता थी। इन लोगों ने शासन क्षमता मोग़ल आक्रमणों के कठिन समय में दिखलाई। परन्तु कदाचित इन लोगों ने स्थायी राज्यव्यवस्था की कोई जड़ नहीं जमायी तथापि इनके शासन में बहुत सी बातें ऐसी थीं जो मुग़ल सम्राटों के काल में भी प्रचलित थीं। पठान शासकों को भी यह मालूम था कि सुल्तान को बड़े ठाटबाट की आवश्यकता होती है। हिन्दू लोग, झुंड के झुंड, बलबन के दरबार की विशालता और ठाटबाट देखने आते थे। उसके व्यक्तिगत नौकर चाकर भी बिना सब कपड़े पहने उसके पास नहीं

जा सकते थे। ठाठबाट का तत्कालीन राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान था। मुग़ल सम्राटों का ठाठबाट और सजावट दूर दूर के देश देशान्तरों में प्रसिद्ध थी पठानों में इस ठाठबाट की न्यूनता थी पर अभाव नहीं था। भारत के मुसलमान शासकों में मुग़लों ने ही राजनीति के इस भाग का आविष्कार नहीं किया था वरन् पठानों ने भी।

पूर्व पठान काल की राज्यव्यवस्था से ही उत्तर पठान काल में शेरशाह सूर की प्रसिद्ध प्रणाली का आविर्भाव हुआ था। ध्यान से देखने पर पूर्व पठान काल में सेना, भूमिकर तथा अन्यकर, प्रजा-हित चिन्तन इत्यादि विषय पर मुसलमानी दृष्टि से कुछ कम ध्यान नहीं दिया जाता था। बलबन ने सुल्तान अलतमश की चलायी हुई "चालीस दासों की संख्या" की शक्ति को कुचला; अलाउद्दीन खिल्जी ने भूमि की स्वीकृति द्वारा सरकारी कर्म्मचारियों के वेतन चुकाने की प्रथा को घृणित दृष्टि से देखा और आगे चल कर फ़ीरोज़ तुग़लक ने दासों का बड़ा बृहत समूह तैय्यार किया और कर्म्मचारियों को कभी कभी बड़े बड़े ज़िले और प्रांत तक दे दिये। इससे स्पष्ट है कि आवश्यकतानुसार राज्यव्यवस्था में सुल्तान लोग बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन किया करते थे; अथवा, दूसरे शब्दों में, पठान राज्यव्यवस्था सुदृढ़ नहीं थी।

पठान काल की सेना का संगठन मुग़ल सेना की भाँति दोषों से रहित न था। तो भी पठान सेना की शक्ति में किसी को सन्देह नहीं है। उसमें भी शक्ति थी और वह भी देश के भिन्न भिन्न भागों को जीतती थी। पश्चिमोत्तर सीमा पर प्रायः सभी बुद्धिमान शासकों का ध्यान था। उधर दुर्ग इत्यादि

भी बनवाये गये। अलाउद्दीन खिल्जी और मुहम्मद तुग़लक ने इस विषय पर विशेष ध्यान दिया था। दाग़ की प्रथा भी उस काल में प्रचलित थी। तारीख़े फीरोज शाही का लेखक ज़ियाउद्दीन बारनी लिखता है कि रँगरूटों की अरज़े मुमालिक के सामने जाँच होती थी और उनमें से वही सही शुदा किये जाते थे जिनके पास अच्छे कमान और कवच रहते थे। सुल्तान की आज्ञा से घोड़ों के मूल्य और दाग़ की प्रथा का नियमन होता था।

भूमिकर के सम्बन्ध में बारनी लिखता है कि "अलाउद्दीन का पहला भूमिकर सम्बन्धी नियम यह था कि सब कृषि, चाहे अधिक हो या कम, प्रत्येक बिस्वे के हिसाब से नाप कर की जाती थी*" यही ग्रन्थकार फिर लिखता है कि मलिक अज़ीजुद्दीन वज़ीर हुआ और शहर-नौ का भूमिकर राजधानी के निकटस्थ स्थानों की नाईं प्रत्येक बिस्वे के हिसाब से नाप कर लगाया जाता था†"। सुल्तान फ़ीरोज़शाह ने नहरों और वाटिकाओं इत्यादि से भी कोश की वृद्धि का उपाय सोचा था। नहरों वाटिकाओं और नई बोई भूमियों से‡ सुल्तान को लगभग तीस सहस्र पौंडों की वार्षिक आय होती थी। भूमिकर से अफ़ीफ़ के अनुसार छः करोड़ पचासी लाख टांका (६५०,००० पौंड लेनपूल के अनुसार)

---

* इलियट डाउसन तृतीय पृ० १८२।

† इलियट डाउसन तृतीय पृ० १८८।

‡ अर्थात् जिनमें पहले खेती नहीं होती थी।

मिलता था, जो कि अकबर की आय का लगभग तृतीयांश है। इसमें से दोआब से ही असी लाख आता था।

सार्वजनिक हित पर भी सुल्तान का ध्यान गया था। फ़रिश्ता ने फ़ीरोज़ के नाम कम से कम ८४५ सार्वजनिक कृतियाँ लिखी हैं। इनमें नहर, बांध, तालाब, पुल, स्नानागार, क़िले, मसजिद, विद्यालय और सराय इत्यादि हैं। कुतुब-मीनार, और दिल्ली के बादशाहों की क़ब्रों इत्यादि का जीर्णोद्धार भी उसने किया था। लेनपूल को इस सूची में किसी सड़क का नाम न देख कर आश्चर्य होता है। वस्तुतः सड़कों की बड़ी कमी थी, पर अभाव न था, क्योंकि इब्न-बतूता लिखता है कि "इन दोनों स्थानों (दिल्ली और अहम-दाबाद) के बीच की सड़क के दोनों ओर वृक्ष लगे हैं। एक एक मील पर तीन ठहरने के स्थान हैं जहां यात्री को आवश्यक वस्तुयें मिलती हैं। चालीस दिनों की यात्रा बाज़ार सी जान पड़ती है। सड़क से छः महीने तक चलने पर तैलंग और मलाबार पहुँचते हैं। ठहरने के प्रत्येक स्थान पर सुल्तान के लिए भवन बना है। यात्री और प्रजा को यात्रा की सामग्री घर से ले जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती; क्योंकि सब कुछ सड़क की दूकानों पर मिल जाता था।" वास्तव में यह फ़ीरोज़ के पहले का विवरण है। सुल्तान अलाउद्दीन के पुत्र सुल्तान कुतुबुद्दीन के समय का यह वर्णन है। नगर बसाने तथा अन्य निर्माण करने की ओर कई सुल्तानों का ध्यान गया था। ऐबक, अल्तमश, अलाउद्दीन, मुहम्मद तुग़-लक़ और विशेष कर फ़ीरोज़शाह का कृत्य इस सम्बन्ध में इतिहासकारों ने वर्णन किया है। डाक के विषय में भी पठानों

ने प्रबन्ध किया था। इब्नबतूना जो शेरशाह के लगभग २०० वर्ष पहले भारत में आया था लिखता है कि "भारत में वरीद या डाक दो प्रकार की है*। घोड़े की डाक को उलक कहते हैं। चार चार मील पर सुल्तान के घोड़े रहते हैं। वही डाक ले जाते हैं। पैदल डाक का प्रबन्ध यह है.............यह घोड़ों से तेज़ चलती है। खुरासान के फल जिनकी हिन्दुस्तान में बड़ी माँग रहती है इसी रीति से आते हैं। बड़े बड़े कैदियों का देश निकाला भी इसी तरह होता है। वह एक बैठक पर रख दिये जाते हैं जिसे सिर पर रख कर हरकारे दौड़ते हैं।"†

इस प्रकार पूर्व-पठान-काल में (अर्थात् मुहम्मद गोरी से तैमूरलङ्ग के समय तक) कुछ अच्छे शासक भी दिल्ली के सिंहासन पर आये थे। इन शासकों ने सेना, सीमाप्रान्त की रक्षा, कर, सिक्का, तथा कुछ कुछ सार्वजनिक हितचिन्तन पर भी ध्यान दिया था। इस काल में सुल्तानों में से कई एक ने यह समझ लिया था कि कुरान का अक्षरशः पालन करना हिन्दुस्तान में असाध्य है‡। राज्यव्यवस्था में हिन्दुस्तान की नयी परिस्थिति के अनुसार मुसलमानों ने कुछ परिवर्तन भी किया। वह पूर्णतः मुसलमानी राज-कल्पना से काम नहीं चला सकते थे। इसकी जब चेष्टा की जाती थी तब प्रायः हानि ही होती थी। इस काल में विद्या-नुराग के प्रति भी सुल्तान नासिरुद्दीन मुहम्मद तुग़लक

---

* मुहम्मद तुग़लक के शासनकाल में।

† इलियट-डाउसन तृतीय पृ० ६०२।

‡ अलाउद्दीन खिल्ज़ी का उदाहरण प्रत्यक्ष है

इत्यादि का ध्यान था। वस्तुतः पूर्व पठान राज्य व्यवस्था इतनी बुरी न थी जितना काला रंग ऐतिहासिक ने उसपर छिड़का है। यद्यपि इस कालमें फीरोजशाह जैसे कट्टर सुल्तानोंने ब्राह्मणों से भी जजिया उगाहना आरम्भ किया था तथापि मुहम्मद तुग़लक का कृषकोंको ऋण देना और फीरोजशाह का उसे क्षमा कर देना कितना स्तुत्य कार्य था। मुहम्मद गोरीसे तैमूरलङ्ग के आक्रमण तक राज्यव्यवस्था एक विशेष धारामें रही परन्तु जब साम्राज्यके टुकड़े टुकड़े हो गये और दिल्लीमें सैय्यदों का राज्य रहा उस समय पठान शासनप्रणाली भी विकृत अवस्थामें थी। उसकी बहुत सी बातों का साम्राज्यके विच्छेद (Disintegration) के साथ साथ नाश सा हो चला था। पर लगभग आधी शताब्दी के अन्धकारके बाद दिल्लीके साम्राज्यमें जान आने लगी। यही आधी शताब्दी पूर्व पठान-कालको उत्तर पठान-काल से अलग करती है। सम्भव है यह विचार नया हो परन्तु पुराना मत अनुपयुक्त प्रतीत होता है। लोदियोंसे सूरों तक के समयमें एक विशेष ऐक्य है। अतएव उसका विचार अलग ही करना उचित है।

(ख) उत्तर पठान शासन-पद्धति

इस अन्धकार का पर्दा बहलोल लोदीके १४५१ में सिंहासनारूढ़ होनेके साथ साथ उठने लगता है। दिल्लीकी घोर अवनति कुछ कुछ दूर होने लगी, उसके तथा उसके बादके दो सुल्तानोंके समयमें दिल्लीका भाग्य अन्धकारयुगके शून्यसे कुछ ऊपर उठने लगा। फ़रिश्ता बहलोल लोदी के विषय में

कहता है कि बहलोल लोदी गुणी और दयालु शासक था। वह अपनी पूर्ण जानकारीके अनुसार न्याय करता था। दरबारियोंके साथ वह मित्रवत् व्यवहार करता था। जब वह बादशाह बनाया गया तब उसने सारा कोश मित्रोंमें बाँट दिया। वह प्रायः बहुत कम सिंहासनपर बैठता था; क्योंकि वह कहता था कि "यही पर्य्याप्त है कि संसार मुझे बादशाह मानता है। दिखानेकी आवश्यकता नहीं है।'......स्वयम् अधिक विद्वान् न था, पर विद्वानोंका आदर करता था। उसे अपनी मुग़ल सेनापर अधिक भरोसा था.........उसके शासनकालमें लगभग २०००० मुग़ल सरकारी नौकरी करने लगे। फ़रिश्ता के अतिरिक्त तारीखे-दाऊदीमें अब्दुल्लाने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। वह लिखता है कि "सुल्तान बहलोल.........क़ानूनका पालन करता था.........और दीनों की दशा की विशेष जाँच करता था......न्याय करने में वह अधिक ध्यान देता था। प्रजा के प्राथना पत्रोंको स्वयम् सुनता था।.........जो धन, माल या नये परगने उसके अधिकार में आते थे उन्हें अपने सैनिकोंमें विभक्त कर देता था। उसनें धन नहीं जमा किया और न धूमधाम और ठाठवाट का इच्छुक था।" अब्दुल्ला कहता है कि "सुल्तान प्रायः सिंहासनपर नहीं बैठता था वरन् एक क़ालीन पर। फ़रमानोंमें वह अपने बड़े बड़े राज कर्मचारियों को 'मसनद अली' लिखता था और जब कभी कोई उससे असन्तुष्ट हो जाता तो वह स्वयम् भी उसके घर जा कर प्रसन्न करनेकी चेष्टा करता था। वह अपने सरदारों और सिपाहियोंके साथ मैत्रीका भाव रखता था।......... जबसे वह सिंहासन पर आया तबसे लड़ाईमें उसपर किसीको विजय नहीं प्राप्त हुई।"

सिकंदर लोदी ने भी इसी रीति का प्राय: अनुसरण किया। उसके शासन की भी बड़ी प्रशंसा की गई है। अब्दुल्ला लिखता है कि "सुल्तान साक्षियों को तौलकर अभियोगों का निर्णय करने, साम्राज्य का शासन सम्बन्धी कार्य करने तथा प्रजा को सुखी करने में लगा रहता था।.........दोपहर के निमाज़ के बाद मुल्लाओं की सभा में जाता और कुरान पढ़ता था।...........वह प्राय: रात में निवेदन-पत्रोंको सुनता था। रातका कुछ भाग साम्राज्यके शासन-सम्बन्धी कार्यों तथा प्रान्तीय शासकों और तत्कालीन स्वतंत्र बादशाहों के पास क्रमश: फ़रमान और पत्र लिखने में लगता था। सत्रह चुने हुए विद्वान् उसके निजी गृह में बराबर साथ रहा करते थे।"

उसने अपने राज्य भरमें मसजिदें बनवायीं और अपनी राजधानी* आगरेमें बहुत से विद्वानोंको एकत्रित कर लिया था। सालार मासूदके जलूसको उसने बन्द कर दिया। स्त्रियों-को कब्रोंकी तीर्थयात्रा करनेका निषेध किया और सम्भवत: मुहर्रम के ताजियोंको भी रोका। क्योंकि ताजियोंकी प्रथा नाममें मुसल्मानी होनेपर हिन्दू मतसे मिलती जुलती है। तारीखे-दाऊदी (इलियट, चतुर्थ भा० पृष्ठ ४५४) से पता चलता है कि सुल्तान न्यायका अधिक पक्ष करता था। जो धार्मिक भूमि

---

*दिल्ली साम्राज्य का राजधानी आगरे में पहले पहल सम्भवत: इसी समय आयी।

सैय्यदोंके पास थी उसे कोई भी जागीरदार सम्भवतः जप्त नहीं कर सकता था। एक बार एक सैय्यद और जागीरदारके बीच अभियोग चला था। सुल्तानने सैय्यदके अनुकूल निर्णय किया और दंड स्वरूप जागीरदारकी जागीर जप्त कर ली।

सिकन्दरके देहान्त के समय तक दिल्लीका राज्य लगभग अपनी पुरानी सीमा तक पहुँच गया था। पर इब्राहीमकी नीति दूसरी धारामें बहने लगी जिससे लोदियोंका अंत हो गया। उसने अपने पुराने दरबारियों और मन्त्रियोंके साथ बुरा बर्ताव किया। अनुभवी कर्मचारी और मन्त्री भी उसकी इस नीतिसे असन्तुष्ट थे। उसने अपने पिताके प्रधान सचिवसे छुटकारा पानेके लिए बड़ी अनुपयुक्त रीतिका अनुसरण किया था। जिसका विवरण इलियट (पञ्चम, पृ० १४) में मिलेगा। यद्यपि उसके दरबारकी यह दशा थी तो भी अब्दुल्ला लिखता है कि "उसके समय में अनाज, कपड़ा और सब प्रकारका पदार्थ सस्ता था। इतना सस्ता अलाउद्दीन खिल्जीको छोड़ कर और किसीके शासन-कालमें न था।...........एक बहलोलीका दस मन अन्न, पांच सेर घी और दस गज़ कपड़ा मिलता था। और वस्तुयें भी सस्ती थीं। क्योंकि वर्षा अधिक हो गयी थी ....और सुल्तानने भी यह नियम कर दिया था कि सरदार इत्यादि कृषकोंसे रुपये न लेकर अन्नमें ही लगान लें।........सोना-चाँदी कठिनाईसे मिलता था। एक भला आदमी, जिसके आश्रित कुटुम्ब भी रहता था, पांच टांका महीना उपार्जन करता था और घुड़सवार २० या ३० टांका

मासिक वेतन पाता था। दिल्ली से आगरे तक यात्री बड़े आरामसे अपने घोड़े और नौकर के साथ केवल एक बह-लोलीके व्ययसे चला जाता था।" किंतु इस समृद्धिका कारण सुशासन नहीं था। क्योंकि इब्राहीमके शासनमें बराबर लड़ाई झगड़े सन्देह और निर्दयताका दौर-दौरा था।

लोदियोंके बाद दिल्लीका राज्य पठानोंके हाथ से चौदह वर्ष के लिए निकल गया, पर देशकी आन्तरिक राज्य व्यवस्थामें कोई महत्वपूर्ण अंतर न पड़ा। हाँ, भावी गहन और आवश्यक सुधारोंकी (जिन्हें अकबरने किया) नींव डालने-वाली मुग़ल (अथवा तुर्क) * जातिका दिल्लीपर कुछ दिनों के लिए अधिकार अवश्य हो गया। अस्तु, लोदियों के बाद उत्तर पठानकालकी राज्य व्यवस्थाके सम्बन्ध में शेरशाह सूरीका नाम लिया जाता है। यद्यपि उसने पाँच ही वर्ष शासन किया तथापि 'तारीखे शेरशाहीका' रचयिता लिखता है कि "संसार में ऐसी सुव्यवस्थाकी स्थापना हुई कि एक लूला रुस्तमसे भयभीत न होता था (इलियट चतुर्थ)।" कीनने लिखा है कि "शेरशाहके शासनका सिद्धान्त 'एकता' था। कट्टर मुस्लिम होकर भी वह अपनी हिंदू प्रजा को कभी तंग नहीं करता था।" परन्तु इस बातमें अधिक सत्यता नहीं है। केनेडीने "दी हिस्ट्री आफ दी ग्रेट मोग़ल्स में" लिखा है कि उसकी नीति ऐसी न थी जो हिन्दुओंको सुल्तानका भक्त बना दे। यह बहुत कुछ सच है। जब पूर्ण-

* कीनने मुग़लोंको तुर्क लिखा है।

मल अपनी स्त्री रत्नावली (यह हिन्दी गीत बहुत अच्छा गाती थी) को तथा उसके सरदार अपनी-अपनी स्त्रियों को मारकर स्वयं शेरखाँ के अफ़गानों के साथ लड़कर मर गये, उस समय वह स्त्रियां जो जीवित बच रही थीं पकड़ लायी गयीं। पूरणमलकी एक पुत्री और तीन भतीजे जीते पकड़े गये और सब मार डाले गये। शेरखाँने पूरणमलकी पुत्री को कुछ बाज़ीगरों को दे दिया कि वह लोग उसको बाज़ारों में नचावें। इतिहासकार का कहना है कि कालिंजर में एक अत्यन्त सुन्दर नर्तकी कन्या थी जिसे सुल्तान जीवित ही (अर्थात् जौहर इत्यादि होनेके पहले) ले लेनेकी इच्छा में था। इसी निमित्त उसने जिहादका बहाना करके आक्रमण किया था। इस नीतिसे वह हिन्दुओंके राज्योंको जीत सकता था तो कोई आश्चर्य नहीं, पर हिन्दुओंके हृदयको तो वह कभी नहीं जीत सकता था।

हिन्दुओंके प्रति उसका व्यवहार चाहे जैसा रहा हो, पर शेरशाहने अपने राज्यका शासन बड़े व्यवस्थित रूप से किया और कई सुधार भी शासन-प्रणाली में हुए। अबुल-फ़ज़ल कहता है कि यह सुधार मौलिक नहीं थे। तो भी शेरशाहने पूर्व पठान-काल की अच्छी अच्छी प्रणालियों का पुनरुद्धार करके बड़ा काम किया। अबुलफ़ज़लकी बात पूर्णतः सत्य नहीं मानी जा सकती। उसके सुधारोंमें कुछ मौलिकता भी अवश्य थी। ज़बदात तवारीख[२] में लिखा है

---

२ इलियट, प्रथम, २९३।

कि "उसके शासन में यात्रा की सुविधा थी, क्योंकि सुल्तान ने एक कानून बना दिया था कि जिस किसी गांव में यात्री पर डाका या चोरी होगी उस गांवके मुकद्दमको अर्थदण्ड सहना पड़ेगा और इस भयसे ज़मींदार लोग रातको सड़कोंपर पहरा दिया करते थे"। वास्तवमें यह सुधार मौलिक था, क्योंकि पहलेके किसी ऐतिहासिकने इसका वर्णन नहीं किया है। मुन्तखब-उलतवारीख़के अनुसार उसने बङ्गालसे पच्छिमी रोहतास तक चार महीनेके रास्तेकी सड़क बनवाई, जिसपर स्थान स्थानपर सराय और डेढ़ डेढ़ मील पर कुएँ थे। प्रत्येक मसजिदमें एक इमाम और मुअज़्ज़िम था। सरायोंमें दीनोंके लिए सामग्री रखी रहती थी तथा हिन्दुओं मुसलमानोंके योग्य अलग अलग आदमी रहते थे। सड़कके दोनों ओर वृक्षोंकी पंक्तियां थीं। सड़कें बनवाना कोई नई बात न थी; हां उसके प्रबंधमें कुछ नवीनता थोड़ी बहुत अवश्य रही होगी।

शेरशाह और उसके पुत्र सलीमशाहकी शासन विषयक योग्यताको अबुलफ़ज़ल भी स्वीकार करता है तथा अब्दुल क़ादिर कहता है कि "उसने (शेरशाहके पुत्रने) सैनिकोंकी भूमिको ज़ब्त कर लिया और शेरशाह द्वारा नियत शरहसे नक़द वेतन देने लगा। हरएक ज़िलेमें धार्मिक, राजकीय और भूमिकर सम्बन्धी बातोंका उल्लेख करके फ़रमान भेजे गये। उनमें सेना, कृषक, व्यापारी तथा अन्य पेशेवालोंके सम्बन्धके नियम भी लिखे थे। इससे राजकर्मचारियोंको अपने काममें बड़ी सहायता मिलती थी। इससे अब इन

विषयोंपर काज़ी या मुफ्तीसे भी सम्मति लेनेकी आवश्यकता न रह गई।" यह कार्य भी मौलिक जान पड़ता है। पर शेरशाहका इमामोंकी भूमिका ज़प्त करना, सेना के घोड़ोंमें दाग़ प्रथाका पालन करना, गुप्तचरों (जासूसों) का वृहत् आयोजन करना इत्यादि कार्य्य नये और मौलिक न थे, क्योंकि पूर्व-पठान-कालमें भी* ऐसा होता था। डाकके विषयमें भी शेरशाहने कोई मौलिकता नहीं दिखलाई। अनुमान तो यह है कि पहलेकी डाकसे शेरशाहकी डाक अधिक अपूर्ण थी। उसके सम्बन्धमें पैदल डाकका तो वर्णन नहीं मिलता है। हाँ घोड़ेकी डाकका संगठन बड़े ध्यानसे किया गया था।

शेरशाह अत्यंत परिश्रमी था तथा, यद्यपि वह शत्रुओंको धोखा देना बुरा न मानता था तथापि, न्यायप्रिय था। उसके कर्मचारियोंको दण्ड अथवा पदच्युतिके भयसे उसके चलाये नियमोंके विरुद्ध काम करनेका साहस न होता था। यदि उसका कोई निकटतम सम्बन्धी भी ऐसा करता था तो वह उसे बड़ा घोर दण्ड देता था। कोई भी कर्मचारी उसका विरोध न करता था और न उसका कोई कर्मचारी या सरदार या सैनिक अथवा कोई चोर या डाकू दूसरेके मालपर हाथ लगानेका साहस करता था। यात्रियोंको चोर या डाकूका भय न था। वह जहाँ चाहते थे वहीं ठहर कर आराम करते थे और कोई उनका माल न छूता था। क्योंकि मंसबदार उनकी देख-भाल किया करते थे। शासनके संगठनमें

*पहले लिख चुका हूँ।

शेरशाह ने इतने ही समय में अपूर्व क्षमता दिखलायी। अगर उसे अधिक समय मिलता, और अगर उसका शासन काल कुछ पहले आरम्भ होकर कुछ काल बाद समाप्त होता, तो बहुत कुछ सम्भव है कि वह एक दृढ़ राज्य व्यवस्था तथा सुदृढ़ सम्राज्य की स्थापना कर जाता। किंतु उसके पास समय थोड़ा था और उसके बादके सूर शासकोंमें उसकी जैसी योग्यता न रही, जिसके कारण उसके वंशसे हिन्दुस्तान का शासन बादको निकल गया।

जो जो सुधार शेरशाह ने किये थे उनमें भूमिकर सम्बन्धी सुधार भी मुख्य था। भूमिकर सम्बन्धी कर्मचारियोंको गिनाकर अब्बासखाँ लिखता है कि "उसने प्रान्तीय शासकोंको हर फसलके बाद भूमि नापनेकी आज्ञा दी। उसने भूमि और उपजके अनुसार भूमिकर वसूल करनेकी आज्ञा दी थी। एक हिस्सा उपजका कृपक को और आधा हिस्सा 'मुकद्दम' को मिलता था। अनाज के प्रकार (क़िस्म) के अनुसार कर लगाया जाता था, जिससे 'मुकद्दम' 'चौधरी' और 'आमिल' लोग कृषकोंको तंग न करें क्योंकि राज्यकी समृद्धि कृपकों ही पर निर्भर है"* परन्तु जैसा पूर्व पठान शासनके सम्बन्धमें लिखा जा चुका है कि शेरशाहने इस विषय में कोई मौलिकता नहीं दिखलायी, वरन् अपनी संगठनशक्तिका परिचय दिया। इसी संगठनशक्तिके द्वारा उसने अपने आरम्भिक जीवनमें अपने पिताके दोनों परगनोंको समृद्धि-

---

* इलियट चतुर्थ

शाली बनाया था। उस समय कुछ कृषक तो द्रव्य (रुपयोंमें) द्वारा भूमिकर देना चाहते थे और कुछको किस्मते गल्ला पसंद था। उसने नापनेवालों और कर वसूलकरनेवालोंका वेतन (अर्थात् जरीबाना और मुहस्सिलाना) नियत कर दिया था, जिससे वह कृषकोंको तङ्ग न करें। उसी समय शेरशाहने शासनकी वास्तविक योग्यता प्राप्त की थी और बादमें दिल्ली राज्यका शासन भी बहुत कुछ उसी ढंगपर किया। वास्तवमें उसके शासनमें यद्यपि बहुत मौलिकता न थी तथापि कई दशाब्दों की सोची हुई पठान राज्य व्यवस्थाको पुनरुद्धार तथा सुधार करना और अकबरके सुधारोंके लिए क्षेत्र तैय्यार कर देना शेरशाह सूरीका ही काम था। जब मुग़लोंका पुनरागमन हुआ तब शेरशाहके अफ़सर अकबरकी सेवामें ले लिये गये। इस प्रकार मुग़लों (अर्थात तुर्कों) की आरम्भिक शासन पद्धतिके दोषोंसे बचनेका अकबरको अच्छा उपाय मिल गया। यह सच ही है कि अकबरके सुशासन तथा सुधारोंकी नींव शेरशाह सूरने ही डाली थी।

इस प्रकार पूर्व पठान काल तथा उत्तर पठान कालकी राज्यव्यवस्थाकी विवेचनासे ज्ञात होता है कि उन साढ़े तीन शताब्दियों (१२०६-१५५६) में एक विशेष प्रकारकी प्रणालीका अनुसरण होता था। सम्पूर्ण प्रणालीमें एकता देख पड़ती है। अन्तर यही था कि कभी शासनकी ग्रन्थि बहुत ढीली थी और कभी दृढ़ थी। मुसलमानी राज्यव्यवस्थाके अनुसार प्रायः शासन होता था, किन्तु उसमें भारतकी परिस्थिति तथा प्रजाका ध्यान रख कर दिल्लीके बादशाहोंने

बहुत कुछ परिवर्तन भी किया था। इसी पठान राज्यव्यवस्था के आधारपर अकबरने अपने सुधारों को आरम्भ किया। पठान व्यवस्थामें पठान और हिन्दू शासन प्रणाली का जोड़ मिला ही था। यद्यपि मुगलों की राज्य व्यवस्थापर पठान व्यवस्था, मुगल व्यवस्था (तुर्क) और हिन्दू व्यवस्था का विशेष प्रभाव पड़ा किन्तु आधार पठान व्यवस्था ही रही। अस्तु इस परिच्छेद में वर्णन किये हुए शासन के अनुसार तुलनात्मक दृष्टि से आगे के अध्यायों में यह देखा जायगा कि भारतीय मुगलों ने इस देशकी राज्यव्यवस्थाको किस प्रकार चलाया उसमें कैसे कैसे सुधार किये, उन्हें कैसी सफलता हुई और आगे चल कर उसका क्या प्रभाव पड़ा। इन अध्यायोंमें अकबरी राज्यव्यवस्थाका ही विशेष वर्णन मिलेगा, क्योंकि वही भारतमें मुगल साम्राज्यलक्ष्मीके समृद्धिका कारण थी और उसीको केन्द्र मान कर भावी शासनका कार्य चलता था तथा आधुनिक प्रणालीमें भी बहुत कुछ उसका अंश विद्यमान है।

४—अकबर के शासन का उद्देश्य

सम्राट् अकबरमें अद्भुत क्षमता थी। उसके पहलेकी साढ़े तीन शताब्दियों वाली राज्यव्यवस्थाको आधार मान कर योग्य व्यक्ति बहुत कुछ सुधार कर सकता था। अकबरने देख लिया था कि हिन्दुस्तानकी प्रजापर मुसलमानी शासनका क्या प्रभाव पड़ता है। पठानोंके शासनका इतिहास एक बुद्धिमान मुसलमान बादशाहको स्पष्ट सिखला सकता था कि भारतवर्षमें मुसलमान शासकको कैसी

नीतिका अनुसरण करना चाहिये। पठान शासनमें एक निश्चित राज्यव्यवस्था देख पड़ती थी। पिछले परिच्छेदमें उसका साधारण वर्णन किया जा चुका है। उसके पहले यह भी दिखलाया जा चुका है कि अकबर कैसा व्यक्ति था और उसकी योग्यता और शक्ति कितनी थी। अस्तु, आधार मालूम है और उस आधारपर कार्य्य करनेवाली अद्भुत शक्तिका भी पता चल गया है। अब यह देखना है कि इस आधार और क्षमताके एकत्र होनेका उद्देश्य क्या है; अथवा सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध में अकबरके शासनका अभिप्राय क्या है। वह किस अभावको पूर्ण करनेके लिए दिल्लीके सिंहासनपर आया और उसके सम्मुख क्या और कितना कार्य्य था। यही इस परिच्छेद में देखना है।

सिंहासनारूढ़ होनेके समय अकबर १३ वर्षका लड़का था। उस समय वह नाममात्रको हिन्दुस्तानका बादशाह था क्योंकि उसके अधीन केवल दोआबका थोड़ा सा भाग और वर्तमान पञ्जाबका अधिकतर भाग था। १६०५ में उसके देहान्तके समय उसका शासन हिमालयसे विन्ध्याचल तक और पच्छिमी अफगानिस्तानसे पूर्वी बङ्गाल तक फैल गया था। यह प्रसार एक निश्चित नीतिका फल था। अकबरकी इच्छा सम्पूर्ण भारतवर्षको अपने अधिकारमें लानेकी थी। जीत उसके जीवनके प्रधान उद्देश्योंमें से एक थी। भारत ही नहीं, वरन् पच्छिमके देशोंको भी जीतना उसकी इच्छा के बाहर न था। आईन-ए अकबरीमें बारह सूबोंका वर्णन करनेके पहले अबुलफ़ज़ल लिखता है कि "मैं इन सूबोंका

विवरण बङ्गाल से आरम्भ करता हूँ जो कि हिन्दुस्तानका निम्नतम प्रदेश है और जबुलिस्तान तक अपने विवरणको पहुँचाना चाहता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि जब तक मैं वहाँ तक लिख चुकूंगा तब तक सम्भवतः तूरान और ईरान ही नहीं वरन् अन्य देशोंका भी विवरण जोड़ना पड़ेगा[२]।" इससे स्पष्ट प्रकट होता कि अकबर तूरान और ईरान इत्यादि-को भी जीत कर अपने साम्राज्यके सूबे बनाने की चेष्टा करता, यदि उसका जीवन कुछ और अधिक दिन रहता तथा अनुकूल समय प्राप्त होता।

सम्भव है कुछ लोग भारत को एक देश न मानते हों, किन्तु प्राचीन कालसे लेकर वर्तमान समय तकके इतिहास से यही विदित होता है कि भारत में भौगोलिक एकता है। प्रायः सभी सुयोग्य सम्राटोंकी इच्छा होती थी कि समस्त देशको एक छत्रके तले लाकर राजकीय एकता प्रदान करें। भारतीय इतिहास के चञ्चलमालाके भीतर इसी प्रयत्नका सूत्र दृष्टिगोचर होता है। तो भला अकबर सा उच्चाभिलाषी व्यक्ति अपने प्रयत्नके पुष्पको इस मालामें क्यों न गूंथता? अकबर यह भी भूला न था कि उसका पितामह बाबर अपने पूर्वजोंकी भूमिको जीतनेकी अनेक चेष्टायें कर चुका था। वह जानता था कि अन्तमें असफल होकर भी बाबर अपने वंशानुगत देशसे प्रेम करता था। अतएव मध्य एशियाकी ओर अकबरका ध्यान जाना स्वाभाविक था। फिर मुहम्मद तुगलक इत्यादि दिल्लीके सुलतानोंकी तरह ईरान अथवा

---

२ ग्लैड्वियन पृष्ठ २९८

फ़ारस पर विजयपताका फहरानेकी ओर सम्राट्की इच्छाका झुकाव होना असम्भव नहीं था। इसी प्रकार जीत विषयक तीन चार समस्यायें अकबरके सामने थीं। एक तो भारतकी भौगोलिक एकताको राजकीय एकता प्रदान करना, दूसरे अपने पूर्वजोंके देशको अपने अधिकार में लाना और तीसरा अन्य देशों पर विजय प्राप्त करना। अबुलफ़ज़लको उपर्युक्त बातका दूसरा अर्थ ही क्या हो सकता है?

यदि अनुकूल समय होता तो अकबर भारत के पच्छिम भी अपनी नीति दौड़ाता, पर वह अपनी कठिनाइयों को जानता था। सम्पूर्ण भारत का विजय जब इतना दुष्कर था, तब योग्य और बुद्धिमान् विजेता दूसरी ओर अपना ध्यान नहीं दौड़ा सकता था। वह अपनी शक्ति को ईरान और तूरानकी ओर नहीं विभक्त कर सकता था। क़ाज़ीने अला-उद्दीन ख़िल्जीको यह सम्मति दी थी कि पहले हिन्दुस्तान-के ही भिन्न भिन्न भागोंको जीतना चाहिये तब कहीं दूसरी ओर ध्यान दौड़ा सकते हैं। अस्तु, अकबरकी भी नीति यही थी। उसका निश्चित उद्देश्य था हिन्दुस्तानको अपने सुदृढ अधिकारमें लाना। हिन्दुस्तानकी विजयके बाद वह दक्षिण भारत के राज्योंको भी जीतनेकी चेष्टा करने लगा। कुछ भाग उसने अपने जीवन-कालमें ही मिला लिया, पर अधिकतर विभाग सदा उसकी छत्रछाया के बाहर रहा। उसकी इच्छा भारत के पच्छिम जा सकती थी, पर उसका निश्चित उद्देश्य यह नहीं था। उसकी नीति को दक्षिणी भारतके ऊपरी भागमें ही रुक जाना पड़ा। हाँ यदि सम्राट्

शतायु होता तथा उसका प्रसिद्ध मंत्रिमण्डल* अंत समय तक संसार में रहता तो सम्भव है वह अपने उद्देश्यको आगे बढ़ाता। पर यह होना नहीं था। वह भी मनुष्य था और बुद्धिमान् नीतिज्ञ था। वह अपना उद्देश्य शक्तिके बाहर नहीं बना सकता था अतएव उसका उद्देश्य था हिन्दुस्तानको अपने शासनमें लाना और यथासाध्य दक्षिणी भारतको भी जीतना।

यद्यपि अकबर ने ऐसे ऐसे कार्य भी किये जिनका होना शान्ति के ही कालमें सुगम है तथापि तलवारको छुट्टी कभी न मिली। दिल्ली और आगरेकी विजय से आरम्भ करके काबुल, बंगाल, राजस्थान, मालवा और गुजरात तथा गोंड-वाना और उड़ीसा इत्यादि सभी भागोंको जीतना था; क्योंकि प्रायः सभी प्रान्त उस समय वास्तवमें स्वाधीन थे। इसके अतिरिक्त दक्षिणमें खानदेश, बिहार, बिदर, अहमदनगर गोलकुन्डा और बीजापुर अपने स्वतन्त्र सुल्तानों के अधीन थे। इनके अतिरिक्त विजयनगरका विशाल हिन्दू राज्य भी समृद्धिपूर्ण था। समुद्र के किनारे गोआ इत्यादिमें पुर्त-गालियोंका अधिकार था और पश्चिमोत्तर किनारेपर कांश-मीर सिन्ध और बलूचिस्तान आदि पूर्णतः स्वतन्त्र थे। ऐसी दशामें अकबर सा बुद्धिमान् और उच्चाभिलाषी व्यक्ति इच्छा होते हुए भी अपने ध्यानको काबुलके पच्छिम नहीं ले जा सकता था। सच तो यही है कि अपने बृहत् कार्यका ध्यान रखते हुए उसने भारतकी भौगोलिक एकताको राजकीय

*The Round Table of India

एकता प्रदान करना ही अपना उद्देश्य बना लिया और इस उद्देश्यकी पूर्तिमें उसे अपूर्व सफलता भी प्राप्त हुई। दक्षिणके प्रधान राज्योंको छोड़ कर सभी उसके अधीन हो गये।

कर्नल मैलेसन और काउन्ट वान नोअरका कहना है कि अकबर भिन्न भिन्न राज्योंको शासन करनेके लिए ही नहीं जीतता था वरन् उसका उद्देश्य उन राज्योंको सुख और समृद्धिपूर्ण बनाना था। डाक्टर स्मिथने अपनी पुस्तकमें इसका युक्तिपूर्ण खण्डन किया है। स्वयं अबुल फजल आईन (तृतीय खण्ड-पृष्ठ ३९९) में लिखता है कि। "बादशाहको सदा विजयकी कामना करनी चाहिये। क्योंकि ऐसा न करनेसे पड़ोसके बादशाह उसीके विरुद्ध हथियार उठाने लगते हैं। सेनाको युद्धका अभ्यास कराना चाहिये, अन्यथा सैनिकोंके सुखप्रेमी (आरामतलब) हो जानेकी सम्भावना है। सोलहवीं शताब्दीकी राजनीतिमें कर्नल मैलेसन और वान नोअर की जैसी उक्तियोंको स्थान देना अनुपयुक्त है। आजकल न्याय और स्वभाग्य निर्णय (Self-determination) के समयमें भी सच्चा इतिहासकार निश्चय पूर्वक यह नहीं कह सकता कि कोई विजेता विजित देशके सुखके लिए ही जीतने चलता है। फिर एक मध्य कालीन सम्राट्के लिए ऐसा कहना केवल अत्युक्ति है। अकबर अपनी प्रजाकी सुख समृद्धिका ध्यान रखता था—इस बातको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

---

* पृष्ठ १८४; मैलेसन कृत 'अकबर'।

‡ पृष्ठ २४६-७, स्मिथ कृत अकबर।

† जैरट अकबरके शब्दोंमें।

किन्तु उसका यह कार्य केवल निमित्त था और राज्यको दृढ़ता देना नैमित्तिक था। उसका चरम उद्देश्य था एक सुदृढ और विशाल मुगल साम्राज्यकी स्थापना करना और गौण उद्देश्य था विजित देशकी प्रजाको सुख और समृद्धि-पूर्ण बनाना।

सम्राट्का विजय मात्र उद्देश्य नहीं था। वह दिल्लीके सुल्तानोंके इतिहाससे परिचित[1] था। सिंहासन पर बलबन अलाउद्दीन खिलजी और शेरशाह सूरी जैसे योग्य व्यक्तियोंको बैठनेका अवसर मिला था। यह लोग दृढता पूर्वक अपने राज्यकी वागडोर पकड़े रहे। इनके शासनकी प्रशंसा प्रायः बहुत से इतिहासकारोंने की है। परन्तु इनके घराने में साम्राज्य टिक न सका। शेरशाह सूरी भी जिसकी योग्यतामें किसीको सन्देह नहीं है दिल्ली के राज्यको अपने वंशमें चिरस्थायी न कर सका। उन साढ़े तीन शताब्दियोंमें दिल्लीके सिंहासन पर कोई ऐसा व्यक्ति नहीं आया जिसके वंशमें राज्यलक्ष्मी स्थिर रूपसे रही हो। लक्ष्मीकी चञ्चलता सिद्ध करनेके लिए १५२६ से १५५६ तकके इतिहासमें अनेक दृष्टान्त मिलेंगे, पर अकबर की बुद्धि विलक्षण थी। वह इतिहाससे लाभ उठाना जानता था। उसने ऐसी राज्यव्यवस्था चलायी कि उसके आधारपर डेढ़ शताब्दियों तक साम्राज्य उसके वंशजोंके हाथ में स्थिर रूप से रहा और अयोग्य तथा बलहीन व्यक्तियों के आने पर भी पूरे डेढ़ शताब्दियों तक नाम-मात्रके मुगल सम्राट के नामकी धाक तो अवश्य ही रही। इस प्रकार डेढ़ शताब्दियों तक दृढ़

१ निमित्त = Cause; नैमित्तिक = Effect.

शासन करनेके बाद भी मुग़ल राजवंशकी इतिश्री होनेमें पूरे डेढ़ शताब्दी लग गयी।

इस प्रकार विजय के साथ साथ अपने राज्यको दृढ़ता देना भी अकबरके शासन का उद्देश्य था। भारत के मध्यकालीन इतिहासमें इस विषयमें अकबर को ही सबसे अधिक सफलता हुई। उसे इस उद्देश्यकी ओर पठान सुल्तानोंके चञ्चल इतिहासने ही नहीं प्रवृत्त किया; वरन् सबसे अधिक तो हुमायूं के पतन की गाथा ने उसपर प्रभाव डाला। उसे मालूम था कि शेरशाह सूरीने उसके पिता को बड़ी सरलतासे दिल्लीके सिंहासनसे उतारा था। वह यह भी जानता था कि उसके पिताको कहां कहां ठोकरें खानी पड़ीं और कौन कौन सी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी। वह समझ गया था कि केवल विजयसे काम नहीं चल सकता। उसके पितामहके ही समय प्रायः सारा हिन्दुस्तान[२] जीता जा चुका था; पर वह टिक न सका। अतएव अकबरने यह निश्चय कर लिया कि जितना जीता जाय उतना दृढ़ और स्थिर रहे। जीतका काम और स्थिरीकरणका भाव दोनों साथ साथ चलने चाहिये।

यों तो अपने राज्य को दृढता देना सभी नृपतियोंका उद्देश्य होता है, परन्तु सफलता कुछ ही लोगोंको होती है। जीत की धुनमें लोग प्रायः स्थिरीकरणके कामको भूल जाते हैं। पर अकबर को अपने उद्देश्यकी ओर सर्वदा ध्यान बना रहता था। उसके दोनों कार्य साथ साथ चलते थे। जीत-

---

[२] उत्तरी भारत।

की गाथाका तार उसके शासनकालके आरम्भसे प्राय:-अंत तक देख पड़ता है। उसी प्रकार राज्य को स्थिरता देने-वाले कार्यों का भी जोड़ आरम्भ से अंत तक मिलेगा। हिन्दुओं तथा हिन्दू राजाओं के सम्बन्ध में उसकी जो नीति रही उसका बहुत कुछ अभिप्राय राज्य को स्थिरता देना ही था। हिन्दू राजकुमारियों से परिणय की नीति का उद्देश्य भी यही था; क्योंकि अबुल फजल *आइने-अकबरी में लिखता है कि "हिन्दुस्तान और अन्य देशों के राजाओं की पुत्रियों से विवाह सम्बन्ध करके वह राजद्रोहों को रोकता है और बाहर के सबल व्यक्तियों को मित्र बना लेता है।"

वास्तव में सम्राट अकबर में निर्माण और स्थिरी-करण-की प्रतिभा (Constrnctive genius) थी। कर्नल मैलेसन का कहना है कि † "जब बैरमखां अकबर के नाममे शासन करता था उस समय बालक सम्राट् विगत राज-वंशों की अस्थिरता का कारण सोचा करता था तथा अपने विचारों को परिपक्व कर लेने पर उसने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली और ऐसी शासनपद्धति चलायी कि जब तक उसके अनुसार शासन होता रहा तब तक तो मुगल वंश फलता फूलता रहा और उसका पतन तभी हुआ जब मुगल सम्राट् उसकी सहिष्णुता और मैत्री करण के सिद्धान्तों से विचलित होने लगे।" बाबर और हुमायूं को जीत के सिद्धान्त के अतिरिक्त कुछ और सोचने का अवसर न मिला और हुमायूं में तो योग्यता भी न थी। किन्तु अकबर ने मुगल राजवंश की जड़ को दृढता-

* ग्लैडविन पृष्ठ २७।   † अकबर पृष्ठ ६।

पूर्वक जमा कर विजित देशों में सुख और शान्ति की स्थापना की।

पहले के मुसलमान बादशाहों ने इस देश की भिन्न भिन्न जातियों को एकता के बन्धन में जोड़ने की चेष्टा नहीं की थी। उनका शासन स्थिर नहीं था; क्योंकि किसी सबल व्यक्तिका सामना पड़ने पर उन्हें राज्य से हाथ धोना पड़ता था। इस अस्थिरता के कारण सब लोगों को विश्वास हो गया था कि भारतीय मुसलमान राजवंश चिरस्थायी नहीं हो सकता। अपरञ्च इस चञ्चल स्थिति ने कुछ ऐसे लोगों को भी पैदा कर दिया था जो राज्य प्राप्तिके लिए यत्न करने का अवसर ढूंढा करते थे। सम्पूर्ण देशमें कुछ ऐसे लोग छितराये हुए थे। उनका विश्वास था कि मुगलोंकी भी वही दशा होगी जो पहलेके मुसलमानी राजवंशोंकी हो चुकी थी। वह समझते थे कि मुगलोंके स्थानपर कोई दूसरा दिल्लीके सिंहासनको सुशोभित करेगा। अकबर स्थिति को समझ गया था। अतएव इन भावोंको लोगोंके हृदयोंसे दूर करनेके उपाय वह सोचने लगा और वह अपने इस कार्यमें सफल भी हुआ। उसका पहला उद्देश्य था मुगल राजवंशको चिरस्थायी बनाना। वह सबको एक सुदृढ केन्द्रके चारों ओर एकत्रित करना चाहता था। समस्त राजनीय व्यासोंको एक निश्चित प्रधान केन्द्रमें मिलाना उसका लक्ष्य था। वह उन लोगोंमें जो पहले उसकी शक्तिका सामना करते थे यह भाव उत्पन्न करने की चेष्टा करता था कि अकबरकी अधीनतामें उनका सम्मान घटेगा नहीं, वरन् उसे

फलने फूलने का अवसर मिलेगा। जीते हुए राज्यों के शासकों-को वह सम्मान के पदोंपर यथासाध्य प्रायः सुशोभित करता था, जिससे वह सन्तुष्ट हो जाते थे। मालवा के अफगान शासक का उदाहरण इस बात का प्रमाण है। इस प्रकार सम्राट् को अच्छे अच्छे लोग मिल जाते थे, जो उसके उद्देश्यकी पूर्ति में सहायता करते थे। राज्य को दृढ़ता भी देनेमें इसका विशेष प्रभाव पड़ता था।

सम्राट् का उद्देश्य विजय और स्थिरी करण के अतिरिक्त कुछ और भी था। भारत को सुदृढ मुगल छत्रके तले लानेके साथ साथ देशकी प्रचलित राज्य व्यवस्था का सुधारना भी उसका एक मुख्य उद्देश्य था। विजित प्रदेश के धन धान्य को लूटना उसका लक्ष्य नहीं था। वह हृदय से चाहता था कि प्रजा सुखी और समृद्धिशाली हो। यही उसकी राज्य व्य-वस्था का चरम सिद्धान्त था। अबुल फजल आईन-ए-अकबरी (Gladwin P 2) में लिखता है कि "जनता के आचार विचार सुधारना, कृषि की उन्नति करना, राज कर्मचारियों का नियंत्रण और सेना का युद्धाभ्यास (Discipline) सर्वोत्तम कार्य हैं।" सम्राट् की नीति प्रायः इसी केन्द्र पर चलती थी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए "जनता को सन्तुष्ट करना और कोश तथा आयव्यय का समुचित प्रबन्ध करना अनिवार्य है।[२]" जब इन बातों का ध्यान रखकर कार्य किया जाता है, "तब प्रजा सुखी और समृद्धि पूर्ण होती है।" अकबर का इतिहास इसी सिद्धान्त का दृष्टान्त है।

---

[२] आईन-ए-अकबरी Gladwin P. 2

इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए वह पूरा यत्न करता था और उसको सफलता भी अच्छी हुई। वह न तो कभी समय खोता था और न कार्य ही कभी छोड़ता था। सदा वह अपने उद्देश्य को सिद्ध करने में लगा रहता था। कार्य-की अधिकता में भी वह आमोद प्रमोद और खेल इत्यादि में भाग लेने को समय पा ही जाता था। *खेल इत्यादि में भी सम्राट् अपने उद्देश्यों को नहीं भूलता था; प्रत्युत इन खेलों से वह राजनीतिक लाभ उठाता था। अबुल फजल† कहता है कि "सम्राट् मानव जाति के गुणों और भावों को पहचानने में प्रवीण है। वह इन खेलों का प्रयोग मनुष्यों के गुणों की परख करने के लिए करता है।" इसमें सन्देह नहीं कि जो बातें साधारण मनुष्यों को आमोद प्रमोद सी ही दीख पड़ती हैं उन्हींके द्वारा बुद्धिमान पुरुष अनेक लाभ उठाता है। अकबर खेल तमाशों में से भी अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपाय निकाला करता है। वहां पर मनुष्यों के गुणों की परख करके वह उनसे अपने काम में सहायता लेता था। कहने का तात्पर्य्य यह है कि साधारण बातों से भी सम्राट् असाधारण काम निकालता था। अबुल फजल ने पशु युद्ध इत्यादि सार्व-जनिक तमाशों (public Spectacles) को भी राजनीतिक भाव से वर्णन किया है। वह कहता है कि "सम्राट् सार्वजनिक तमाशों को इसलिए प्रोत्साहित करता है कि जिससे सब प्रकार के लोग उनमें सम्मिलित होकर मेल मिलाप और पार-

* चौगान इत्यादि

† आईन-ए-अकबरी Gladwin पृष्ठ २०६

स्परिक मित्रता बढ़ावें* ।" इन उद्धरणोंको देनेका अभिप्राय यह है कि सम्राट् इन खेल तमाशोंसे भी अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें सहायता लेता था। यह क्षमता सभी नरपतियोंमें नहीं होती।

अकबर अपने तीनों उद्देश्योंके महत्वसे सम्यक् परिचित था। अतएव उनकी पूर्तिके लिए सर्वदा यत्नवान् रहता था। हिन्दू राजाओं तथा सम्राट्की हिन्दू प्रजाको मालूम हो गया कि अकबर पहलेके सुल्तानोंसे भिन्न व्यक्ति है। उसके सिद्धांत उन सुल्तानों की तरह नहीं थे जो हिन्दू प्रजाको तङ्ग करना अपना धर्म समझते थे वरन् तीनों उद्देश्योंकी रग रगमें सहिष्णुता और मैत्रीकरणका भाव भरा था। वह सीधे रास्तेपर चलना चाहता था, क्योंकि सीधे मार्गसे चलनेवाला भूलें नहीं करता। उसके एक मुहर पर यह वाक्य खुदा था:—

रास्ती मूजिब रज़ाये खुदास्त,
कस न दीदम कि गुम शुद अज़ रह रास्त।

अस्तु, अकबर स्वयम् सीधे मार्ग से चलता था। इसीको वह ईश्वरको प्रसन्न करनेका उपाय समझता था। इसी मार्ग पर अपनी प्रजाको भी चलाना चाहता था। राजनीतिमें भी अकबरका यही सिद्धान्त था। वह अपने तीनों राजनीतिक उद्देश्योंको (विजय, स्थिरीकरण और शासन-सुधार) सिद्ध करनेके लिए भी इसी उपायका अवलम्बन किये था। उसे तीनोंमें सफलताकी आशा थी और सफ-

*आईन-ए-अकबरी Gladwin पृष्ठ १४३

लता हुई । अद्वितीय योग्यताके कई मनुष्य सम्राट्के सहायक थे। अब देखना है कि इस त्रिकोण भूमिपर जो भवन बना उसका रूप क्या था। अकबरने इन्हीं तीनों उद्देश्योंकी दीवालपर राज्य-व्यवस्थाका एक सुदृढ़ और चिरस्थायी भवन निर्म्माण किया। उसके गम्भीर तत्वोंके समझनेके लिए इस परिच्छेदके अन्तमें इन ती-ों उद्देश्योंको स्पष्ट लिख देना आवश्यक है। वह निम्न लिखित हैं:—

(१) भारतके भिन्न भिन्न प्रदेशों को एक छत्रके तले लाना।

(२) मुगल साम्राज्यको दृढ़ और चिरस्थायी बनानेका उपाय करना।

(३) प्रजाकी हित-चिन्ता और शासन-प्रणालीका सुधार करना।

५—सम्राट् तथा राजकर्मचारीगण

भारतकी मध्यकालीन राजनीतिमें सम्राट्की शक्ति और अधिकारोंकी नियामक व्यवस्था कोई न थी। जिस शासकमें जैसी क्षमता (Capacity) होती थी, वैसी ही उसकी शक्ति और अधिकारोंकी इयत्ता भी रहती थी । एक सबल सुल्तान या सम्राट् सब कुछ कर सकता था और एक निर्बल व्यक्तिका सिंहासनपर रहना भी दुष्कर हो जाता था। शासनका सब कार्य तथा अधिकार एक व्यक्तिके हाथमें था। उसे किसीकी सम्मति लेनेकी आवश्यकता न, थी। कोई इसकी इच्छाको

रोक न सकता था। उसका शब्द ही कानून था। हाँ क़ुरानके नियमोंका पालन करना सभी मुसल्मान बादशाहों को अनिवार्य है। परन्तु यह बात केवल सिद्धान्तमें सत्य है; क्योंकि वास्तविक इतिहासमें अनेक दृढ उदाहरण इसके विरुद्ध मिलते हैं—सो भी हिन्दुस्तान ही में नहीं, वरन् पच्छिमके मुसल्मान देशों में भी।

मुसल्मानी राष्ट्रका सिद्धांत है कि समस्त शक्ति और अधिकार बादशाहों से ही औरों को मिलते हैं। पद इत्यादि सब कुछ वही देता है। कोई भी संस्था या समाज विभाग (Section of society) उसके अधिकारके बाहर नहीं है। राज्य की समस्त भूमिका स्वामी भी वही है। मध्यकालीन भारत में उमरा लोगों को जो जागीरें दी जाती थीं उनका उत्तराधिकारी सम्राट् ही माना गया है। उन लोगोंका सम्मान और पद सम्राट् की इच्छापर निर्भर रहता था। अतएव उमरा लोग उसे प्रसन्न रखने के लिए चापलूसियां भी प्रायः किया करते थे। [२]मुगल दरबार में सम्राट् के मुखसे साधारण बातके निकलने पर भी "करामात!" "करामात!!" की झड़ी लग जाती थी फ़ारसी का यह छन्द उस समयके उमराओंका प्रायः सिद्धान्त सा था:—

अगर शह रोज रा गोयद शबस्तीं,
बबायद गुफ्त ईनस्त माहो परवीं।

यद्यपि मुसल्मान नरपति पर कुरान तथा उलमा इत्यादि का कुछ अधिकार रहता है तथापि वास्तवमें बादशाहकी

[२] बर्नियर का भार. यात्रा, Constable पृष्ठ २४६

शक्तिका नियंत्रण इनके द्वारा नहीं हो सकता था। उसकी शक्तिका नियन्त्रण केवल राजद्रोहों के भयसे होता था। भारतके मध्यकालीन इतिहासमें बादशाह या सम्राट् किसी ईश्वरीय अधिकार (Divine Right) से सिंहासनका उत्तराधिकारी नहीं बनता था। सिंहासनाधिकारी होनेकी क्षमता तथा शक्ति निदर्शन के अतिरिक्त * दूसरा कोई नियम नहीं था। पहलेके प्रायः सभी सबल मुगल सम्राटोंने अपने देहान्तके बहुत पहले ही शासनके उत्तराधिकारी निर्दिष्ट करने की प्रवृत्ति दिखलायी थी। इससे ज्ञात होता है कि उस समय उत्तराधिकारके नियमकी जड़ मुगलों द्वारा पड़ रही थी।

कीनने 'टकस इन इंडिया' नामक पुस्तकके आरम्भिक अध्याय (Introduction) में दिखलाया है कि भारतमें मुगल

---

* जब अकबर अपनी मृत्युशय्या पर था, उस समय राजा मानसिंह खुसरू (सलीमका पुत्र) को सिंहासनका अधिकार दिलाना चाहते थे, किन्तु अकबर ने सलीम को ही राज्य प्राप्तिका अधिकार दिया। सलीम अपने पिताका कुछही वर्ष पहले विरोधी रहा। अपने एक मात्र बचे हुए पुत्रको सिंहासनके लिए नियुक्त करनेमें सम्भवतः सम्राट ने यही सोचा था कि मुग़ल राज्यवंशमें पुत्रको ही उत्तराधिकारी होनेका नियम बना दिया जाय। खुसरूको छोड़कर जहांगीर के चुनने में अकबर का सम्भवतः यही उद्देश्य था। बाबर और शाहजहांके इतिहाससे ज्ञात होता है कि वह लोग ज्येष्ठ पुत्रको उत्तराधिकारी बनाकर अन्य पुत्रोंको उनके अधीन रखना चाहते थे।

साम्राज्यके स्थापकों पर. स्त्री जातिका कितना और कैसा प्रभाव पड़ा था। उन्नत तथा कार्य्यकुशल जातिकी स्त्रियोंसे उत्पन्न और अवनत तथा विविक्त (Secluded) स्त्रियोंसे पैदा हुई जातियोंमें महान् अन्तर है। वह तूरानियोंके वंशज थे; परन्तु चंगेज़खांके बाद तीसरी पीढ़ीमें उन्होंने इसलाम धर्म स्वीकार कर लिया और प्रायः आर्य्य रुधिरकी स्त्रियोंसे (बहुधा लूट इत्यादि में पकड़ी हुई कन्याओंसे) सम्बन्ध करने लगे। इन स्त्रियोंके दोष इस जातिमें भी आ गये। शेरखाँ (शेरशाह सूरी) ने बाबरके खेमेमें मुग़लोंके आचारोंका अनुभव प्राप्त करके (.अब्बासखां, 'डाउसन' चतुर्थ) कहा था कि "मैं मुग़लोंको हिंदसे निकाल दूंगा। क्योंकि यह युद्धमें अफ़ग़ानोंसे बढ़कर नहीं हैं। अफ़ग़ानोंने अपनी फूटके कारण राज्य खो दिया। मैंने मुग़लोंको ध्यानसे देखा है। उनमें नियम-पालनका भाव (Discipline) नहीं है। तथा उनके शासक अपने पदके गर्वमें आकर शासन कार्य्य दूसरों (सचिव इत्यादि) पर छोड़ देते हैं तथा उनकी बात और कार्यपर अंधोंकी तरह विश्वास करते हैं। यह राजकर्मचारीगण सैनिकों कृषकों या राजद्रोही ज़मीदारों इत्यादि सभी लोगोंके विषयमें अनुपयुक्त और बुरे लक्ष्यसे कार्य करते हैं।........सुवर्णके इस लोभके कारण वह शत्रु और मित्रमें कोई अन्तर नहीं रखते।"

किन्तु अकबर और उसके वंशजोंके इतिहासको चाहे स्थूल दृष्टिसे देखा जाय और चाहे सूक्ष्म दृष्टिसे, दोनों दशाओंमें यह स्पष्ट हो जायगा कि [२]"विजित भारत-

[२]प्रिंगल केन्नेडी History of the great Moghuls पृष्ठ ३८।

वर्षने अपने विजेताओंपर ही विजय प्राप्त कर ली !" "बाबर और अकबरकी विजयोंका चरम परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष ने स्वयं मुग़ल राष्ट्र न बनकर मुग़लोंको ही भारतीय बना लिया ! हाथ स्वयं उसी रंगमें रँग गया जिसमें उसे काम करना पड़ा !" माहमाङ्कन नूरजहाँ बेगम और जहाँनारा इत्यादि के उदाहरणोंसे विदित होता है कि राज-नीति पर मुग़ल हरमका कभी कभी क्या, प्रायः बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था। पर अकबरने हरमको भी तो गाढ़े हिन्दू रँगमें [२]रँगनेकी प्रथा चलायी थी ! यहाँ तक कि सुल्तान सलीम (जहाँगीर) और शाहजहाँ हिन्दू स्त्रियोंके पुत्र थे ! परन्तु प्रधान बात तो यह थी कि हिन्दुस्तानमें मुग़लोंने विजित राज्योंके शासनकी बागडोर अपने ही हाथमें नहीं रखी। हिन्दू लोग अधिक संख्यामें देशके शासन तथा सेनाके प्रबन्धमें लगाये जाते थे। उन्होंने हिन्दुस्तानमें देखा कि जनसंख्या बहुत अधिक है, देशमें एक सभ्य जातिका निवास है और साथ साथ पहलेकी एक विजेत्री जातिके लोग जो मुग़लोंके ही धर्मके हैं बसे हैं। इन मुग़लोंमें चंगेज़खांकी कठोरता और निर्दयताको स्थान नहीं था। वह इतने मूर्ख न थे कि देशके कृषकोंको निकाल बाहर करनेकी इच्छा करते। अस्तु, भारतका मुग़ल सम्राट् मुग़ल नहीं, प्रत्युत भारतीय रंगमें रँग गया था। उसके शासन-कार्यमें भारतीयोंकी अधिक संख्या लगी थी और हरममें भी राजपूत कुमारियोंको लानेकी चेष्टा की जाती थी।

---

[२] हिन्दुओं के साथ विवाह सम्बन्ध।

अस्तु, भारतका मुग़ल सम्राट् मुसल्मान राष्ट्र (The muslim state) के सिद्धान्तोंका भी अनुचर नहीं था। उसके लिये कुरान ही सब कुछ न था। वह राजनीतिको भी समझता था। हाँ, औरङ्गजेबने भारतमें मुस्लिम राष्ट्रके सिद्धान्तोंको पुनः प्रचलित करनेकी विशिष्ट और महती चेष्टा की थी परन्तु उसे सफलता न हुई। मुग़ल साम्राज्यकी स्थितिको भी उलटी उसके कार्योंने डाँवाडोल कर दिया! मुस्लिम राष्ट्रके सिद्धान्तोंको पहले पहल अकबरने ही खुले मैदानमें तोड़ा। काफ़िरोंके ऊपर जो जज़िया कर लगाया जाता था उसे सम्राट्ने बन्द ही कर दिया था, इसके अतिरिक्त उसके अनेक कार्य्य मुस्लिम राष्ट्रके नियमोंके विरुद्ध थे। सितम्बर १५७९ (रजब ९८७) में उसने प्रधान उलमाओंसे यह स्वीकार ही करा लिया कि मुज्तहिदोंकी सम्मतिमें विभिन्नता होनेपर सम्राट्का निर्णय सभी उलमाओंको मान्य होगा। उन लोगोंने मान लिया कि ईश्वरकी दृष्टिमें सुल्ताने-आदिलका पद मुज्तहिदके पदसे बड़ा है; अतएव उसकी आज्ञा उलमाओं तथा समस्त राष्ट्रको मान्य होनी चाहिये। इस प्रकार सम्राट्के अधिकारोंमें मुस्लिम राष्ट्रके सिद्धान्तों द्वारा जो धार्मिक नियन्त्रण रखा गया था, उससे भी अकबर मुक्त हो गया। यों तो उसकी स्वतंत्रतामें पहले भी कोई बाधा नहीं डाल सकता था, परन्तु अब तो उलमाओंने सम्राट् अकबरकी सर्वोपरि स्थिति और मुज्तहिदों और उलमाओंकी उस पर अधीनता यथाविधि (formally) भी स्वीकार कर ली। इस प्रकार मुग़ल सम्राट्की शक्ति और उसके अधिकार मुस्लिम राष्ट्रके सुल्तानसे बढ़ कर थे। उसे पूर्ण स्वतन्त्रता थी।

धर्मगुरुओंको भी उनके कार्यों में हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं रह गया। केवल राजद्रोहका भय हो सकता था, परन्तु जब देशी सामन्तगण तथा हिन्दू प्रजा संतुष्ट ही नहीं, वरन् उसके सहायक भी थे, तब थोड़ेसे कट्टर मुल्लियोंके असन्तोषका उसे डर नहीं हो सकता था। और यदि वह मुल्लाओंके असन्तोष-को दूर करनेमें लग जाता, तो हिन्दुओंमें असन्तोष फैल जाता और उस दशामें अधिक हानिकी सम्भावना थी। अस्तु, अकबर सम्राटमें अपूर्व क्षमता थी और वह शक्ति और अधिकारमें पूर्ण स्वतन्त्र था।

सम्राट्की शक्ति और अधिकारोंकी विवेचनाके बाद यह आवश्यक है कि राजकर्मचारियोंके पदों का भी दिग्दर्शन कराया जाय। सिद्धान्तमें तो एक स्वतन्त्र सम्राट्के लिए कोई मंत्रिमण्डल रखनेका नियम आवश्यक नहीं है। अकबर यदि राजकार्यमें योग देनेके लिए दूसरोंको न रखता तो भी उसे कोई नियमोल्लङ्घनका दोष नहीं लगाता। पर वह स्वयम् सब कार्य नहीं कर सकता था। एक व्यक्ति चाहे उसमें असीम क्षमता हो तथापि साम्राज्यका शासन अकेले बिना औरोंकी सहायताके नहीं कर सकता। उसे राजकर्मचारी नियुक्त करने ही पड़ेंगे। हाँ, इन राजकर्मचारियोंपर सम्राट्का ही पूर्ण अधिकार रहेगा और उसकी इच्छा के ही अनुसार इनकी नियुक्ति और पदच्युति इत्यादि होगी। अकबरके समयमें राजकर्मचारियोंकी यही स्थिति थी। यही दशा सभी स्वतन्त्र शासकोंके कर्मचारियोंकी रहती है। अस्तु, अकबरके शासनकालमें मुख्य-मुख्य सचिव यह थे:—

१—वकील या प्रधान सचिव

यह राजकर्मचारियोंके शीर्ष स्थानीय था। तीक्ष्ण बुद्धिवाले सब विषयोंके गूढ़ तत्वोंके ज्ञाता, शिक्षित, निश्छल, कार्य-पटु, आत्मीय और परकीयके प्रति समदर्शी, शत्रु और मित्र के प्रति निष्पक्ष, सभी सम्प्रदायोंके हितचिन्तक और अति विश्वासी व्यक्तिको ही सम्राट् इस पदपर नियुक्त करता था। सभीका मंगल साधन वकीलोंका कर्त्तव्य था।

२—वजीर या [2]राज-सचिव

वजीर सर्वप्रधान राज-सचिव होता था। अच्छे गणितज्ञ, सत्यवादी, सावधान, सुदक्ष, लोभहीन एवं मनोहर और परिष्कृत लेखन-प्रणालीके ज्ञाताको सम्राट् इस पदपर नियुक्त करता था। राजकीय धनागारका तत्वावधान और हिसाब (लेखा) परिदर्शन करना इनका कर्त्तव्य था।

३—मीरबख्शी या प्रधान बख्शी

प्रधान बख्शीको बख्शी उल मुमालिक या मीर बख्शी कहते थे और प्रायः उसे [3]अमीरुल-उमराकी उपाधि दी जाती थी। बख्शी-उल-मुमालिकके [4]यह कर्त्तव्य थे :

---

[2] वजीरको कभी-कभी दीवान भी कहते थे।

[3]इर्विन (The army of the India Moghuls पृष्ठ ३८) का अनुमान है कि अकबरके समयमें एकसे अधिक व्यक्तियों को अमीरुल उमराकी उपाधि मिलती थी पर आलमगीरके समयसे एक साथ दो व्यक्ति इस उपाधिको धारण नहीं करते थे।

[4] Irvine पृष्ठ ३८।

(१) सेनामें रँगरूटोंकी भर्ती करना।

(२) मंसबदारोंकी एक सूची रखना जिसमें राजधानी तथा बाहर प्रान्तोंमें नियत अफसरोंका विवरण भी हो।

(३) राजभवनके रक्षक अफ़सरोंकी सूची और उनके कार्य विभागका व्योरा रखना।

(४) तनख्वाहकी स्वीकृतिके नियम तैय्यार करना।

(५) नक़द तनख्वाह पानेवाले अफ़सरोंकी सूची रखना और वेतनोंका विवरण रखना।

(६) दाग़ का प्रबन्ध करना।

(७) ऐसे रजिस्टर तैय्यार करना, जिनमें छुट्टी या बिना छुट्टीके अनुपस्थित कर्मचारियों, देहान्तों, पद-च्युतियों, अग्रिम दिये हुए नक़द द्रव्य, मुतालिबा, और प्रान्तोंमें कार्य करनेवाले अफ़सरोंके पास भेजे हुए दस्तक (लिखित आज्ञाका प्रेषण) इत्यादिका विवरण हो।

(८) किसी भारी युद्धके अवसरपर सेनाके पुरोभाग, मध्य-भाग पृष्ठदेश और किनारों पर सेनापतियोंके स्थानोंका निर्देश करना।

(९) युद्धदिवसके प्रातःकाल सम्राटके सामने प्रत्येक सेना-पतिके अधीनस्थ मनुष्योंकी ठीक-ठीक संख्या इत्यादिका विवरण उपस्थित करना।

इर्विनके अनुसार बख्शीको ही मीरे-अर्ज भी कहते थे। मीर बख्शीके अतिरिक्त तीन और बख्शी हुआ करते थे, जिनके अधिकारों तथा कर्त्तव्योंमें थोड़ा बहुत अंतर रहता था। अपरञ्च सूबोंमें भी इसी प्रकारके कार्य करनेके लिये अफ़सर

रहा करते थे। प्रान्तीय वख्शीके ही पदमें प्रायः वाकयानिगारक* भी पद सम्मिलित रहता था। आजकल भी जिलेकी तहसीलोंमें बख्शी का पद कहीं कहीं होता है, परन्तु अकबरके बख्शी दूसरे ही प्रकार के होते थे। आधुनिक वख्शी अत्यन्त साधारण लेखकके तौर पर होता है, किन्तु अकबरके समयमें बख्शीका पद साम्राज्यमें बड़ा ऊँचा पद था। वख्शीके कर्तव्य और अधिकार भी बड़े भारी भारी और उत्तरदायित्वके थे। आधुनिक और तत्कालीन बख्शीमें आकाश पातालका सा अन्तर है अतः इनकी तुलना करना ठीक नहीं है।

४—सदर या सदरुस्सदर

अकबरी शासनके पूर्व भागमें सदर सर्वोच्च धार्मिक कर्म्मचारी था। धर्मका शासन उसके हाथमें था वह मृत्युदण्ड भी दे सकता था तथा धर्म अथवा परोपकारके निमित्त[२] विना सम्राट्की आज्ञा लिए भूमि समर्पित कर सकता था। नये भूपतिके नाममें उसका ख़ुतवा पढ़ना भूपतिकी पद प्राप्तिको नियमानुकूल बना देता था। किन्तु वादको सम्राट्ने सदरकी शक्तिको कम कर दिया और १५८२ में तो इस पदका अंत ही कर दिया। इस पद को मिटाकर सम्राट्ने सदरुस्सदरके कार्यको छः प्रान्तीय अफसरोंमें विभक्त कर दिया।

---

* सम्भवतः वाकयानिगार और वाक़या नवीस का पद एक ही था।

[२] स्मिथ कृत अकबर, पृष्ठ ३५८।

वकील वज़ीर, मीरबख़्शी और सद्र इन चार बड़े बड़े अफ़सरोंके अतिरिक्त अन्य कर्मचारी भी महती शक्ति रखते थे। यथा, अबुलफ़ज़ल न तो कभी विधिवत् वज़ीर बनाया गया और न वकील; परन्तु वह सम्राट्का बहुत समय तक अत्यन्त विश्वस्त मन्त्री और राज सचिव था। शासन कार्यपर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा। राजभवनके कर्मचारियों का भी अधिक प्रभाव था। पाकालय, जलपूर्ति, अश्वालय इत्यादि राजभवनके भिन्न भिन्न भागोंका अच्छा संगठन था। हकीम हमामका जो मीर वकालत अर्थात् पाकालयका अध्यक्ष था दरबारमें बड़ा प्रभाव था। वह सम्राट्का मित्र था और उसकी गणना* नवरत्नोंमें हुई है। अबुलफ़ज़ल राजभवनके कर्मचारियोंका वर्णन करते हुए लिखता है कि "सम्राट् सब पदों (ओहदों) के कार्योंसे परिचित है और उसने प्रत्येक विभागके लिए यथोचित नियम बनाया है........ इन पदोंपर वह सत्यप्रिय (ईमानदार) लोगोंको नियुक्त करता है।..........राजभवनके बहुत से कर्मचारी सैनिक वेतन पाते हैं तो भी इस शासनके ३९ वें वर्षमें राजभवनके कर्मचारियोंको ३०९·८६·९५ दाम (७७·९६५॥≡)) वेतन दिया जाता है।" इस सम्बन्धमें वह फिर लिखता है कि

---

* अकबरी दरबार के नवरत्न यह थे:—

राजा बीरबल, राजा मानसिंह, राजा टोडरमल, हकीम हम्माम, मुल्ला दुपियाज़ा, फ़ैज़ी, अबुलफ़ज़ल, मिर्ज़ा अब्दुल-रहीम ख़ानख़ानाँ और तानसेन।

"राज्यके व्यय तथा कर-प्राप्तिके लिये सौसे अधिक दफ्तर हैं जिनमेंसे प्रत्येक एक नगर अथवा छोटेसे राज्यके समान मालूम होता है।" राजकीय हरम भी कई समूहोंमें विभक्त था और हरएक समूह एक स्त्री दरोगाके अधीन रहता था। बड़े फाटक पर 'मुशरिफ़' रहता था और अंदर रक्षक स्त्रियां थीं। हरमकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध था इसके लिए भी बहुत से कर्म्मचारी नियुक्त थे। राजभवन और हरमके अतिरिक्त साम्राज्यके शासनकार्यके लिए राजधानी और प्रांतोंमें बहुत बड़ी संख्यामें राजकर्मचारी नियुक्त थे।

खजानेके प्रबन्धके लिये प्रत्येक करोड़ीके साथ एक एक खज़ाँची भी रहता था। राजधानीमें एक प्रधान ख़ज़ाँची भी बादको नियुक्त किया गया जिसे सहायता देनेके लिए दारोगा और लेखक नियत थे। इनाम, दान तथा अन्य इसी प्रकारके व्ययोंके लिए भी खज़ांची, कर्मचारी और पेशकार इत्यादि अलग रहते थे। रत्नालय (जवाहिरातका दफ्तर) में भी एक ख़ज़ांची, एक तेपञ्ची, एक दारोगा और बहुत से निपुण जौहरी रहते थे। टकसालमें तो अनेक प्रकारके कर्मचारी होते थे। अबुलफजलने टकसालके कर्मचारियोंके कार्य और उनकी फीसोंका अच्छा विवरण दिया है। टकसालका प्रधान अफ़सर एक दारोगा होता था। तथा दारोगाके अतिरिक्त सर्राफ़, अमीन मुशरिफ़, व्यापारी, खजांची, मापक (तौलने वाला), पिघलानेवाला, जर्गाब, सिक्ची, सुत्वक, कुर्शब, निचेवीवाला, खक्शु, इत्यादि अनेक छोटे बड़े कर्मचारी उसमें लगे रहते थे।

सम्राट्को जब बाहर जाना होता था उस समय अनेक कर्मचारियोंकी आवश्यकता होती थी। इन कर्मचारियोंके भी पद प्रायः स्थायी होते थे, क्योंकि बराबर इनकी आवश्यकता पड़ती ही थी। इस कार्यके लिए १००० फ़राश (ईरानी और तूरानी भी), ५०० पुरोगामी, १०० जलवाहक ५० बढ़ई, ५० शिविर निर्माता, ५० योजक, ३० चर्मकार और १५० भङ्गी नियत थे। परन्तु इन छोटे छोटे नौकरोंकी गणना राजकर्मचारियों में नहीं की जा सकती। किन्तु इस विभागके कर्मचारियों में मीरमंजिलका पद भारी होता था। वही खेमेका स्थान इत्यादि भी निर्दिष्ट करता था। इस कार्यमें अनेक मंसबदारोंकी भी आवश्यकता पड़ती थी।

चौकी देनेके लिए राजधानीमें तीन प्रकारके कर्मचारी होते थे। मंसबदार, अहदी, घुड़सवार और पैदलों के सात विभाग थे, जिनमेंसे प्रत्येक एक एक दिन चौकी देता था। प्रधान उमराओंमेंसे कोई इनका अध्यक्ष होता था। कुशाक (चौकी) का मीरे-अर्ज और अमीरसदा सम्राट्के समीप रहते थे, क्योंकि सभी आज्ञायें इन्हीके द्वारा भेजी जाती थीं। इन सात विभागोंके अतिरिक्त सेनाके बारह भाग थे; जिनमेंसे प्रत्येक एक एक महीने चौकी देता था। और फिर दूसरे १२ विभाग थे जो एक एक वर्ष तक बारी बारी यह काम करते थे। इर्विनने (पृष्ठ १८९) तीसरेका वर्णन नहीं दिया है और पहले दोनोंके विषयमें उनका कहना है कि "मैं नहीं समझता कि यह दोनों विभाग (सात और बारहके) एक ही साथ कैसे काम करते थे!"

तोपखाना एक दारोग़ाके अधीन था और उसमें बहुत से लेखक काम करते थे। उमराओं और अहदियोंको अच्छी तनख्वाहें दी जाती थीं। बन्दूक़चियोंके भी वेतन अच्छे थे। बड़े बड़े अफ़सर चाहे वह सेना विभागमें हों या प्रबन्ध विभाग (civil and military both) में हों, मंसबदार कहलाते थे। मंसब केवल सैनिक सेवाके लिए नहीं प्रयुक्त होता था। प्रत्येक [2]राजकर्मचारी जो साधारण सिपाही या दूतके पदसे ऊँचा होता था मंसब पाता था। वास्तवमें साधारण कर्मचारियोंको छोड़ कर अन्य दशाओंमें राजकीय कोशसे रुपये पानेके दो ही उपाय थे। या तो मंसब स्वीकार करके राजकीय सेवा की जाय, या पवित्र पुस्तकोंके विद्यार्थी, या मुतवल्ली या खादिम या दरवेश या क़ाजी या मुफ्ती होकर 'मददेअम्वाश'के लिए प्रार्थना की जाय।[3] इन अफ़सरों (मंसबदारों) की तेतीस श्रेणियाँ थीं। देहवाशीसे लेकर देहहज़ारी तक मंसबदार होते थे। ८०००के ऊपरके मंसब कभी भी[4] राजकुमारोंके अतिरिक्त दूसरोंको नहीं दिये गये थे। दूसरे प्रकारके सैनिक कर्मचारी 'अहदी' थे। अहदियोंके दीवान और बख्शी अलग हुआ करते थे। प्रधान 'अमीर' इन लोगों

---

[2] इर्विन पृष्ठ १।

[3] मंसबदारोंके नीचे रोजंदार होते थे जो लिखने इत्यादि-का काम करते थे।

[4] ७००० का मंसब बादको राजा टोडरमल तथा दो एक और अफ़सरोंको मिला था।

का अध्यक्ष रहता था। इन सैनिक कर्मचारियोंके अतिरिक्त एक मीरबहरी भी होता था जो नौ-सेनाका प्रबन्ध करता था।

अकबरका साम्राज्य भूमिकरकी व्यवस्थाके लिए प्रसिद्ध है। इस विभागमें भी बहुत से कर्मचारी लगे रहते थे। आमिल गुज़ार कर वसूल करनेके लिए [२] तिपक्ची या वितिक्ची, हिसाब इत्यादि ठीक रखनेके लिए कानूगो, पटवारी, मुहर्रिर, ज़मींदार मुक़द्दम, नायक, मुंसिफ़, खजांची और थानेदार इत्यादि वसूली, हिसाब, अथवा अन्य प्रकारसे इस कार्यमें सहायता देनेके लिए नियुक्त रहते थे। भूमिकरके सम्बन्धमें इन कर्मचारियोंपर दृष्टिक्षेप फिर करना होगा अतएव यहांपर केवल निर्देश कर देना ही पर्य्याप्त है।

न्याय और विचारका कार्य मीर आदिल और काज़ीके सिपुर्द था। काज़ी विचार करता था और मीर आदिल दण्ड निश्चय करके दण्डकी आज्ञा देता था। इसके अतिरिक्त स्थान स्थानके सम्वादोंका पता लगानेके लिए वाक़ियानवीस नियुक्त थे। पुलिसका भी प्रबन्ध था। नगरोंमें दोषोंको बन्द करने और सुव्यवस्था रखनेके निमित्त कोतवाल रहा करते थे। कोतवाल नगरको महालोंमें बाँटकर एक एक मीर महालके अधीन कर देता था और नगरके प्रत्येक महालके दो दो गुप्तचर रखता था। [१] कोतवालके कार्य प्रायः आजकलके कोतवालोंके कार्यों

---

[२] ग्लैडविनकी आईन-ए-अकबरीमें तिपक्ची नाम दिया है पर स्मिथने अपने अकबरके इतिहासमें (पृष्ठ २७६) वितिक्ची लिखा है। Tepukchy : Gladwin; Bitekchi : Smith.

से मिलते जुलते हैं किन्तु तत्कालीन और आधुनिक कोतवालमें अन्तर भी पर्य्याप्त है।

अकबरका साम्राज्य सूबोंमें विभक्त था। पहले बारह सूबे थे, पर बादको-बढ़ाकर उनकी संख्या १५ कर दी गयी। सूबेका शासन एक सूबेदार या सिपहसालारके अधीन रहता था। जब तक सूबेदार अपने पदपर स्थित करता था तबतक उसके अधिकार प्रायः अपिरिमित से थे। शासनकी सैनिकताका इसीसे पता चल जाता है कि प्रान्तीय शासकको जिसे बादको 'सूबेदार' कहने लगे आईन-ए-अकबरीमें 'सिपहसालार' नाम दिया है। प्रान्तको प्रजा और सेना उसके अधीन थी और उसीके सुशासनपर प्रजाकी सुख-समृद्धि-निर्भर थी। न्यायका विचार भी उसे करना पड़ता था। न्याय कार्यमें उसे काजीसे सहायता मिलती थी। आवश्यकतानुसार मीरअदल भी नियुक्त कर दिये जाते थे। अस्तु, प्रान्तीय शासकोंको अपने अपने प्रान्त पर पूरा अधिकार था। प्रबन्ध, सेना और न्याय (civil.military Judical) तीनों विभागोंका कार्य उसके अधीन था। किंतु अबुलफ़ज़ल कहता है कि "जो कार्य नौकरोंके द्वारा हो सकता है वह पुत्रोंको नहीं सिपुर्द करना चाहिये और जो कार्य पुत्रों द्वारा क़िया जा सके वह सिपहसालारको उन्हींसे कराना चाहिये।" सूबेके प्रत्येक विभागमें योग्य व्यक्तियोंको उसे नियुक्त करना चाहिये। 'उसे डाकुओं इत्यादिका दमन करके सड़कोंको सुरक्षित रखना चाहिये। सेनाकी व्यवस्था (discipline) का ध्यान रखना, कृषि तथा जन संख्याकी वृद्धिका उद्योग करना उसका कर्तव्य था। आईन ए. अकबरीका रचयिता कहता है कि "भिन्न-

भिन्न कार्यों के लिए वास्तवमें सुयोग्य व्यक्तियोंको नियत करना चाहिये। और यदि वास्तविक योग्यताके व्यक्ति न मिलें तो सिपहसालारको उचित है कि वह उस पदपर कई व्यक्तियोंको नियत कर दे जो कि न तो एक दूसरेके सम्बन्धी हों और न घनिष्ठ परिचित हों।" इस प्रकार सिपहसालार अपने प्रान्तका शासक था और प्रान्तके अधिकतर कर्मचारियोंको वही योग्यतानुसार नियुक्त करता था।

सिपहसालारके नीचे फ़ौजदार होता था। उसकी भी नियुक्ति सम्भवतः सम्राट् स्वयं करता था। एक प्रान्तमें कई फ़ौजदार होते थे। इनके अधीन कई परगने रहते थे। जान पड़ता है कि सरकारोंके ही अध्यक्षको फ़ौजदार कहते थे। फ़ौजदारका यह भी कर्त्तव्य था कि वह राजद्रोहियोंका दमन करे, करोंकी वसूली कर सम्बन्धी कर्मचारियोंकी सहायता करे, और आवश्यकता पड़नेपर कर देना अस्वीकार करने वालोंके प्रति सैनिक बलका भी प्रयोग करे। उसके लिए नियम था कि जहाँ पदाति से काम चल जाय, हयबल (cavalry) का उपयोग न करे। उस समय अकबरके शासन-कालमें याज्ञवल्क्यका "दण्डस्त्वगतिका गतिः" वाला सिद्धान्त माना जाता था। राजद्रोहियोंको दमन करने पर जो लूटका माल होता था उसका पञ्चमांश तथा विभक्त करने पर बचा हुआ कुल भाग फौजदारको राजकीय कोशमें भेज देने का नियम था। सम्राटकी आज्ञाओं और नियमोंको कार्य्यमें परिणत करना उसका कर्तव्य था।

इस प्रकार अकबरी साम्राज्यके शासनकार्यमें कर्मचारियोंका एक बृहत् समुदाय लगा था। ऊपरके पृष्ठोंसे ज्ञात

होता है कि चार प्रधान राजकर्मचारियोंके (वकील, वजीर मीर बख्शी, और सदर) अतिरिक्त राजभवन, हरम, खजाना, रत्नालय, टकसाल, खेमा और तोपखाना इत्यादिमें बहुत से कर्मचारी लगते थे। राजकर की वसूली इत्यादि और पुलिस न्याय तथा प्रान्तीय शासन कार्यके लिए बहुत से योग्य व्यक्तियोंको कार्य करना पड़ता था। राजकर विभागके आमिल, कानूगो, पटवारी इत्यादि; न्याय विभागके काजी और मीर अदल तथा पुलिस विभागके कोतवाल और मीर महाल इत्यादि सभी अकबरके उद्देश्योंके पूर्ण करनेमें, यथा साध्य सहायक थे। सूबोंमें सिपहसालारोंकी शक्ति तथा सरकारोंमें फ़ौजदारोंका कार्य विशेष ध्यानसे देखनेका विषय है। सेनाके विविध कर्मचारियों तथा मंसबदारों इत्यादि पर फिर दृष्टिक्षेप करनेका अवसर मिलेगा। यह विदित होता है कि आजकलकी भाँति उस समय भी [१] राजकर्मचारियोंका दल अत्यन्त संगठित रूपमें था। पर उस समय इतना ध्यान देनेपर भी घूस लेनेवालों की संख्या कर्मचारियोंमें अधिक थी [२]। बड़े बड़े कर्मचारियोंको सम्राट् स्वयं नियुक्त करता था तथा मंसबदारी वकालत, सिपहसालारी राजकुमारोंमें से किसीकी अतालीकी, अमीरुल उमरा, नहायुती, विज़ारत, बख्शीगीरी और सदारत इत्यादिकी नियुक्ति फ़रमान या सनद

---

[१] अकबरके शासनकालमें हिन्दू लोग प्रतिष्ठित पदों पर थे। इसका कुछ ब्योरा आगे चलकर मिलेगा। कीन The Turks in India पृष्ठ ८२

[२] बदाऊनी भाग २ पृ० २०७ तथा केनेडी पृष्ठ २०४

द्वारा होती थीं। इनके अधिकार अधिक थे; परन्तु अंतमें यही कहना पड़ता है कि साम्राज्यके छोटे-बड़े सभी कर्मचारियोंकी नियुक्ति और पदच्युति सम्राट्के बाँये हाथका खेल था।

६--साम्राज्य के विभाग और उनका शासन

वर्तमान भारतवर्षका मान-चित्र कुछ हेर फेरके साथ पुराने ही आधारपर बना है। मुग़लोंके सूबोंके आजकलके प्रान्तों और देशी रजवाड़ोंकी तुलना करनेसे अंतर स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है पर समानता भी उतनी ही प्रत्यक्ष है। वास्तवमें भारतके यह राजनीतिक विभाग अपनी जड़में बहुत पुराने हैं। मुग़लोंके पहले भी इस दीवालकी नींव देख पड़ती है। या यों कहा जा सकता है कि मुग़लोंका सूबा विभाग आकस्मिक नहीं था; प्रत्युत उसकी जड़ पहलेके राजकीय विभागमें पड़ी थी। मुग़लोंके कई सूबे तो समय समयपर स्वतन्त्र राज्य रहते आये थे। वह दबाव पड़ने पर ही किसीकी अधीनता मानते थे और पश्चिमोत्तर किनारेसे किसी भी वेगके धक्के से स्वतन्त्रता फिर जमाने लगते थे। जहां कोई गहरा धक्का दिल्ली पर पड़ा कि प्रान्त छिन्नभिन्न होने लगे। ऐसा ही मुग़लों-के [२] पहले हुआ था और ऐसा ही मुग़लोंके बाद [३] हुआ। मध्यकालीन भारतके इतिहासमें ऐसे कई दृष्टान्त हैं जब कि बादशाह भारतके भिन्न भिन्न प्रदेशोंको जीतनेके पहले ही उनके शासक नियत कर देता था। यह प्रान्तीय शासक उस स्वतन्त्र

---

[२] तैमूर लङ्ग। [३] नादिरशाह।

राज्यको बादशाहके नाममें जीतकर अपने अधीन कर लेते थे और इस प्रकार उस राज्यकी स्वतंत्रता तो चली जाती थी पर राजनीतिक एकताको छिन्नभिन्न करनेकी चेष्टा प्रायः नहीं की जाती थी। वस्तुतः भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें बहुत पुराने समयसे राजकीय एकता (स्वतंत्र या परतंत्र) चली आती है।

जिस समय अकबर सिंहासनपर आया उस समय दिल्ली और आगरेकी भी स्थिति डाँवाडोल था। परन्तु जब वह १६०५ में देवलोकको सिधारा उस समय उसका दृढ़ साम्राज्य काशमीरसे अहमद नगर और काबुलसे बंगाल तक फैला था। पच्चीस वर्षकी अवस्थामें ही, लगभग नव वर्षके अनवरत युद्धके बाद, उसने अपने पितामहके जीते हुए समस्त प्रदेशों-पर अपना शासन स्थिर कर लिया था।

[२] शासनके पच्चीसवें वर्ष (१५८०) में सम्राट्का दबदबा प्रायः सम्पूर्ण हिन्दुस्तानमें (उत्तरीभारत) जम गया था। तभी दश वार्षिक-भूमिकर व्यवस्थाके साथ साथ साम्राज्यके बारह विभाग किये गये। इलाहाबाद, आगरा, अवध, अजमेर अह-मदाबाद (अर्थात् गुजरात), बिहार, बंगाल, दिल्ली, काबुल, लाहौर, मुल्तान और मालवाके सूबे उसी समय बने। बरार, खानदेश और अहमदनगरके सूबे बादको जीते गये और तब

[२] ग्लैडविनने शासनके 'चालीसवें' वर्ष में सूबोंका विभाग होना लिखा है, परन्तु सम्भवतः उन्होंने भ्रमसे शासन लिखा है। यदि 'शासन के' स्थानपर 'जवान' लिखा जाय तो अकबरके शासनका लगभग पचीसवां वर्ष होता है। यही ठीक भी है (India of Aurangzeb; sarkar पृष्ठ XXV)

अकबरके साम्राज्यमें पन्द्रह सूबे हो गये। अबुलफ़ज़लने (Gladwin पृष्ठ २९७) इन्ही पन्द्रह सूबोंका नाम गिनाया है, पर सूबोंके विस्तृत विवरणमें अहमदनगरका नाम बिल्कुल छोड़ ही दिया है और पन्द्रहकी संख्या पूरी करनेके लिए काशमीरका विवरण अन्तमें जोड़ दिया है। चहार गुल्शन (पृ०१५१) में अहमदनगरको औरंगाबाद सूबेका एक सरकार माना है। इससे मालूम होता है कि आरम्भमें कुछ काल तक अहमदनगरका अलग सूबा था। पर बादको दूसरेमें सम्मिलित कर दिया गया। सूबोंके विभागमें इस प्रकारका परिवर्तन होना कोई कल्पित बात नहीं है। अबुलफ़ज़लके समयमें उड़ीसा और ठट्टा (सिंध) क्रमशः बंगाल और मुल्तानमें सम्मिलित थे पर बादको उड़ीसा और सिंधके सूबे अलग तैय्यार हो गये—यहां तक कि स्वयं अबुलफ़ज़लने ठट्टाको एक स्थान पर 'सरकार' न कहकर 'सूबा' नाम दिया है। डाक्टर जदुनाथ सरकारका कहना है कि अकबरके पन्द्रह सूबे बादके सत्रह सूबोंके बराबर थे। बहुत कुछ सम्भव है कि घूम घूमाकर अकबरके साम्राज्यमें पन्द्रह ही सूबे रहे हों परन्तु इतना तो निश्चय है कि सूबोंके विभागमें हेर फेर कुछ न कुछ बराबर होता ही रहा। इसका कारण विशेष कर यही था कि अकबरके समयमें आदिसे अंत तक जीतका काम जारी रहा। अतएव सूबोंकी संख्या[२] और विभागमें परिवर्तन होना स्वाभाविक था।

---

[२] १६९५ में १८ और १७२० में २१ सूबोंमें साम्राज्य विभक्त मालूम होता है।

ज्यों ज्यों साम्राज्यका क्षेत्रफल बढ़ता गया त्यों त्यों प्रान्तोंके क्षेत्रफल भी बढ़ानेकी चेष्टा दृष्टिगोचर होती है। अकबरके सूबोंकी भी पड़ताल भिन्न-भिन्न समयोंमें करनेसे यह चेष्टा छिपी नहीं रह सकती। तथापि अकबरके बादकी संख्याओंमें बहुत बड़ा अंतर देख पड़ता है। सूबोंकी संख्या क्षेत्रफल तथा योजनामें इस प्रकारके अन्तर करनेकी आवश्यकता भी थी। यह सूबे धीरे-धीरे शासनमें आगये।। राज्यव्यवस्था अधिक व्यवस्थित रूपमें आ गई और देशके विभागोंके शासन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। शासनके सुभीतेके लिए कभी-कभी क्या, प्रायः सूबोंकी सीमायें बदला करती थीं। एक सरकार या विभागको एक प्रान्तसे अलग करके दूसरे प्रान्तमें मिलानेका कार्य आवश्यकतानुसार प्रायः होता रहा। मुगल सम्राट् बाबा आदमके समयके नहीं थे। वह शासन करना जानते थे और आवश्यकता पड़नेपर किसी प्रकारके परिवर्तन को त्याज्य नहीं समझते थे। मुगलोंका साम्राज्य साधारण नहीं था। उसका क्षेत्रफल छोटे-छोटे अनेक राष्ट्रोंके जोड़ से भी बड़ा था। यहाँ तक कि कोई कोई मुगल सूबा भी एक पूरे स्वतन्त्र राज्यसे बड़ा होता था। सच तो यह है कि मुगल साम्राज्य कई स्वतन्त्र राज्योंको जीतकर बना था। ऐसे बड़े राज्यके शासनमें सूबोंके क्षेत्रफल, योजना और संख्यामें परिवर्तन होना भारतके मध्यकालीन राजनीतिकी एक साधारण बात थी।

अस्तु, अकबरका शासन-काल साम्राज्यका अनवरत वृद्धि-का समय था। सम्राट्की तलवार साम्राज्य वृद्धि और स्थिरीकरण के निमित्त शत्रुओंके दमनमें निरत थी। नीचेके चक्रसे पता

चलेगा कि भिन्न-भिन्न प्रान्त और विभाग कब उसके अधिकार में आय।

१५५६	दिल्ली और आगरा
१५५८	अजमेर और गवालियर
१५६१	लखनऊ और जौनपुर
१५६१	मालवाके भाग पर चढ़ाई
१५६०	बुरहानपुर (खानदेश में)
१५६७ —७२	राजपूताना (प्रतापसिंह ने १५८० में उदयपुर बसाया और स्वतन्त्रताका सदा अविचल परन्तु विकट उपभोग करते रहे)
१५७२ - ३	गुजरात (१५८४ में पुनः अधीनतामें लाना पड़ा)
१५७५ —९२	बंगाल और बिहार
५९२	उड़ीसा
१५८६ —७	काश्मीर
१५९२	सिन्ध
१५९४	क़न्धार (काबुल नाममात्रको सम्राट्के अधीन था)
१५९५—१६०१	अहमद नगर १५९९ खानदेश ६०१ (अकबरकी मृत्युके समय दक्षिणमें खानदेश, बरारका अधिक भाग, अहमदनगरका दुर्ग और निकटस्थ जिले मुग़ल साम्राज्यमें थे)

इत्यादि।

अकबरके सूबोंमें, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, हेर फेर होता रहा। १६०५ में अकबरकी मृत्युके समय चार्ल्स जापेनकी गणनाके अनुसार अट्ठारह सूबे थे। लेकिन यह गणना प्रामाणिक नही मानी जा सकती। जापेनने जो जो नाम गिनाये हैं वह सभी अकबरके शासनमें कभी न कभी सूबे थे, पर जहाँ तक पता चलता है वहाँ तक यही मानना पड़ता है कि एक ही समय में सूबोंकी संख्या १८ तक कदाचित् कभी अकबर के शासन कालमें नहीं पहुँची। श्री जदुनाथ सरकारने अकबर के सोलह सूबे भारतमें माने हैं*। काबुलका जोड़ देनेसे सत्रह पूरे हो जाते है। यद्यपि सरकारने अहमदनगरको अलग सूबा नहीं माना है तो भी सूबा मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं देख पड़ती; क्योंकि अबुलफजलने इसे सूबो मे गिनाया है, जिससे पता चलता है कि वह कुछ समयके लिए सूबा अवश्य ही था। एक एक सूबे मे कई[2] सरकार होते थे और एक सरकार में कई परगने या महाल होते थे। इन सरकारों और परगनोंके शासनको आजकलकी कमिश्नरियों और जिलोंका आधार समझना चाहिये। समयानुसार हेर फेर बहुत हुआ है तो भी मूल पुराना ही है। उस समय शासनकी सुविधाके लिए ऐसे परगनोंको जिनके आचार व्यवहार (दस्तूर) एकसे होते थे एक भिन्न इकाई मानते

---

* India of Aurangzeb पृ० xxviii

२ सरकार आजकल की बड़ी २ कमिश्नरियोंसे प्रायः छोटे होते थे।

थे इन्हींको[1] दस्तूर कहते थे। सूबों के शासनके लिए एक सिपहसालार या सूबेदार होता था। उसके अधीन बख्शी और दीवान भी होता था तथा सूबेके भिन्न भिन्न विभागोंके लिए फौजदार और आमिलगुज़ार होते थे। नगरोंमें कोतवाल रहता था। प्रत्येक सूबेमें न्यायके लिए क़ाज़ी भी रहता था। सूबा तथा सूबा विभागोंमें खज़ांचीके भी रहनेकी आवश्यकता होती थी। इस प्रकार राजधानीके कलपुर्ज़ोंकी ही लीकपर स्थानीय शासन होता था। सिद्धान्त एक ही था परन्तु अभ्यासमें कर्मचारियों की संख्या, उनके अधिकार और कर्त्तव्य तथा पदों (Posts) की संख्या इत्यादिमें क्रमानुसार विशाल अंतर होना स्वभाविक था। सूबोंका समाचार जानने-के लिए प्रत्येक प्रांतमें सम्वाददाता नियत थे। इसके लाभ भी अनेक थे। सम्राट्को सूबों की बातों से परिचित रहनेके लिए सम्वाददाता नियत रखना आवश्यक था। तुज़के जहाँगीरीमें जहाँगीर[2] लिखता है कि "यह नियम बना दिया गया था कि सूबोंका सम्वाद सूबेकी सीमा के अनुसार राजधानीमें भेजा जाय। इस कार्यके लिए सम्वाद-दाता नियुक्त थे। मेरे पूज्नीय पिताने यह नियम बना दिया था। अतएव मैं भी इसके अनुसार कार्य करता हूं। इससे बड़ा लाभ होता है और संसार तथा संसारके निवासियोंके

१ दस्तूरका भी अनुकरण अंग्रेज़ोंने पहले किया था पर बाद को छोड़ दिया। (वाजिबुल-अर्ज)

2 Rojers and Beveridge पृ० २४७।

विषय में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। यदि इसके लाभों का उल्लेख किया जाय तो बहुत अधिक हो जायगा।" इस प्रकार राजधानी और सूबोंके समाचार जानकर शासन को व्यवस्थित किया जाता था। वास्तव में उस समय प्रान्तीय शासन की योग्यतापर सम्राटोंका अधिक ध्यान रहता भी था। मध्यकालीन भारतके मुग़ल सम्राटों की आधुनिक शासकों से तुलना करनेपर वह लोग हीन नहीं देख पड़ते। प्रान्तीय शासन की बागडोर भी दृढ थी। अब यहाँ नीचे तत्कालीन प्रान्तों के विषय में कुछ चक्र दिये जायंगे, जिनसे उनके विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

क्रम संख्या	*सूबा	सरकारों की संख्या	महालों की संख्या	बीघों में क्षेत्रफल	राजकर रुपयों में
१	दिल्ली	८	२३७	२०५४६८१६—१६	१५०४०३८६
२	आगरा	१३	२६८	२७८६२२८९—१८	१३६५६२५७
३	इलाहाबाद	१०	१७७	३६६८०१८—३	५३१०६९५
४	अवध	५	१३३	१०१७११८०	५०४३६५४
†५	बिहार	७	२००	२४४४१२०	५५४७६८५

† शेषभाग दूसरे पृष्ठ पर देखिये।

* इस चक्रका ग्लैडविनके आईनसे तुलना करने पर कहीं कहीं विशेष अन्तर देख पड़ता है, किन्तु इन अङ्कों को जदुनाथ सरकारने आलोचनात्मक रीति से निश्चित किया है। उन्हीं के अङ्कोंसे इस चक्रमें विशेष सहायता ली गई है।

क्रम संख्या	सूबा	सरकारों की संख्या	महालों की संख्या	बीघोंमें क्षेत्रफल	राजकर रुपयों में
६	बंगाल	१९	६८८	—	११८१८१६५
७	उड़ीसा	५	९९	—	३१४३३१६
८	मालवा	१२	३०१	४२६६२२१—६	६०१७३७६
९	अजमेर	७	१९७	२१४३५६४१ ७	७२१००३९
१०	गुजरात	९	१३८	१६६३६३७७—३	१०९२०५५७
११	मुल्तान	३	८८	३२७३९१३२—४	५०४१८८५
१२	ठट्टा(सिंध)	५	५३	—	१६५६२८५
१३	पंजाब —	५	३३२	१६१५५६४३—३	१३९८६४६०
१४	बरार	*१३	२४२	—	१६०६५०८२
१५	खानदेश	१	३२	—	११३८२३५६
१६	काश्मीर	१	३८	—	१५५२८२६
१७	काबुल	—	—	—	८०७१०२४†
१८	अहमदनगर	—	—	—	

* आईन में पहले सरकारों की संख्या सोलह और महालों की संख्या २४२ लिखी है। पर विस्तृत विवरण में केवल तेरह सरकारों का नाम दिया है, जिनके महाल सब मिलकर २४२ होते हैं।

सौलह सूबोंके क्षेत्रफलका योग १२७०६०४४० बीघा था और राजकर का योग १३२१३६८३१ रुपये था।

† इसमें गल्ले का कर सम्मिलित नहीं है।

ऊपरके चक्रसे अकवरके अन्तिम दिनोंके सूबों तथा उनके विभागोंके साथ साथ क्षेत्रफल और राजकरका भी ज्ञान प्राप्त होता है। यदि इसकी तुलना औरंगजेब के समयसे की जाय तो दोनोमें बड़ा अन्तर देख पड़ेगा। औरंगजेब के समयमें अहमदनगर औरङ्गाबादके सूबेमें सम्मिलित था तथा बीजापुर, हैदराबाद और बीदरके सूबे अकबरके समयमें मुग़ल साम्राज्यमें सम्मिलत ही नहीं थे। साम्राज्यकी बाहरी सीमामें भी विशेष बढ़ाव औरङ्गजेबके समयमें हुआ जैसा नीचेके चक्रसे ज्ञात होगा।

क्रम संख्या	सूबा	सरकारों की संख्या	महालों की संख्या	बीघों में क्षेत्रफल	राजकर रुपयोंमें
१	दिल्ली	८	२२९		१८६५८३७०
२	आगरा	१४	२६८		२४५४५०००
३	इलाहाबाद	१६	२४७		६४०१५२५
४	अवध	५	१६७		६६१३५००
५	बिहार	८	२४०		६५१८२५०
६	बङ्गाल	२७	११०९		११५७२५००
७	उड़ीसा	१५?	२३३		१०१०२६२५
८	मालवा	१२	३०९		६२२५४२५
*९	अजमेर	७	१२३		१३८८४०००

? सन्दिग्ध

* शेष दूसरे पृष्ठपर

क्रम संख्या	सूबा	*सरकारों की संख्या	महालों की संख्या	बीघों में क्षेत्र-फल	रुपयों में कर
१०	गुजरात	९	१८८		१४५९४७५०
११	मुल्तान	३	९६		६११५३७५
१२	ठट्टा (सिंध)	४	५८		२३७४२५०
१३	पंजाब	५	३१६		२२३३४५००
१४	बरार	१०	२००		१५१८१७५०
१५	खानदेश	५ ?	११२		११०९०४७५
१६	काश्मीर	१	४६		३१५७१२५
१७	औरंगाबाद	८	८०		१२९०७०००
१८	काबुल	—	—		—
१९	बीजापुर	—	—		—
२०	हैदराबाद	—	—		—
२१	बीदर	—	—		—

* सूबोंके विभागोंकी संख्यामें प्राय: औरङ्गजेबके समयमें वृद्धि ही देख पड़ती है तो भी कुछ थोड़े से सूबोंमें समता अथवा कमी भी देख पड़ती है, जैसा दोनों चक्रोंकी तुलनासे ज्ञात होगा।

? सन्दिग्ध।

ऊपर के दोनों चक्रोंकी तुलनासे पता चलता है कि भारतकी मध्यकालीन राजनीतिमें घटाव-बढ़ाव होना कोई बड़ी बात नहीं थी। अकबर से औरंगजेब तकमें तो तीन पीढ़ियोंका अन्तर है। केवल अकबरके ही कालमें साम्राज्यकी वृद्धि इतनी हुई कि प्रान्तों और उनके विभागोंके संगठनमें समय समयपर हेर-फेर होना स्वाभाविक था। साम्राज्य जिस समय अकबरके हाथमें आया (१५५६) उस समय दिल्ली और आगरा तकके लिए युद्ध करना पड़ा था, पर जिस समय वह मृत्युशय्या पर (१६०५) पड़ा था उस समय वह अपने पुत्रके लिए एक विशाल साम्राज्य छोड़ गया। साम्राज्य ही नहीं वरन् सुदृढ राज्यव्यवस्थाका सुन्दर भवन सम्राट् जहाँगीर को बना बनाया तैय्यार मिला। राजधानीमें तो व्यवस्था अकबर ने स्थापित ही की थी, प्रान्तोंमें भी उसने ऐसे शासनकी नींव जमायी, जिसकी श्रेष्ठतामें कोई सन्देह नहीं हो सकता। प्रान्तोंके विभागों और उनके क्षेत्रफल तथा राजकर इत्यादि में एक निश्चित व्यवस्था (Definite system) देख पड़ती है। प्रान्तोंके भिन्न भिन्न शासकोंके शासन-काल वेतन, स्थानपरिवर्तन (Transfer) और पदच्युति अथवा पदोन्नति इत्यादि विषयोंमें व्यवस्था थी। इन सब बातोंका अनियमित व्यवहार नहीं था। आजकल पाँच पाँच वर्ष के लिए प्रान्तीय शासक प्रायःनियत किये जाते हैं। मुग़लोंके समयमें भी प्रान्तीय शासकों को एक प्रान्तमें प्रायः थोड़े ही वर्षों तक रखा जाता था।

खोज करनेपर इस सम्बन्धमें मुग़लोंके प्रान्तीय शासन वषयक बहुत सी बातोंका पता चल सकता है। अस्तु,

सम्राट् अकबर एक विशाल साम्राज्यके साथ साथ एक उत्तम शासनपद्धति छोड़ गये। सम्राट्की शासनपद्धतिका कुछ कुछ विवरण पिछले तथा आगेके पृष्ठोंसे मालूम होगा। यहाँपर नीचे एक मानचित्र दे देना आवश्यक प्रतीत होता है जिससे साम्राज्यके आकारके साथ साथ सूबोंकी स्थिति (Situation) भी मालूम हो जाय। (देखिये चित्र १)

मुग़लोंके प्रान्तीय राज्य व्यवस्थाके विषयमें अभी बड़े खोजकी आवश्यकता है। पुराने विवरणोंमें कहीं कहीं तो बहुत अधिक विरोधाभास है जिससे किसी निर्णयपर आना सहज नहीं है। अबुलफ़ज़लमें भी विरोधाभासकी कमी नहीं है। एक स्थानपर एक ही विषयमें कोई अंक लिखा है और दूसरे स्थानमें कुछ दूसरा ही मालूम होता है। एक स्थानपर जिस विभागको सूबोंमें गिनाया है उसको दूसरे स्थान पर सरकार माना है। अबुलफज़लको इस विरोधाभासको स्पष्ट कर देना चाहिये था। जैसा ऊपर लिख आये हैं सूबोंकी योजना इत्यादिमें परिवर्तन हुआ करता था। अबुलफ़ज़लके विरोधाभासका यही कारण जान पड़ता है। जो हो पर इतना तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि अकबरका *प्रान्तीय शासन सुव्यवस्थित था।

---

*अकबरके समयमें भी एक ही उपविभाग (sub-division) दो विभागों (Division) में सम्मिलित रह सकता था। कुछ कार्य्यों के लिए एक विभाग से सम्बन्ध रहता था और कुछ अथवा अधिकांश कार्यों के लिए दूसरे विभागसे सम्बन्ध रहता था। आजकल भी कहीं कहीं रजिस्ट्री इत्यादिके लिए
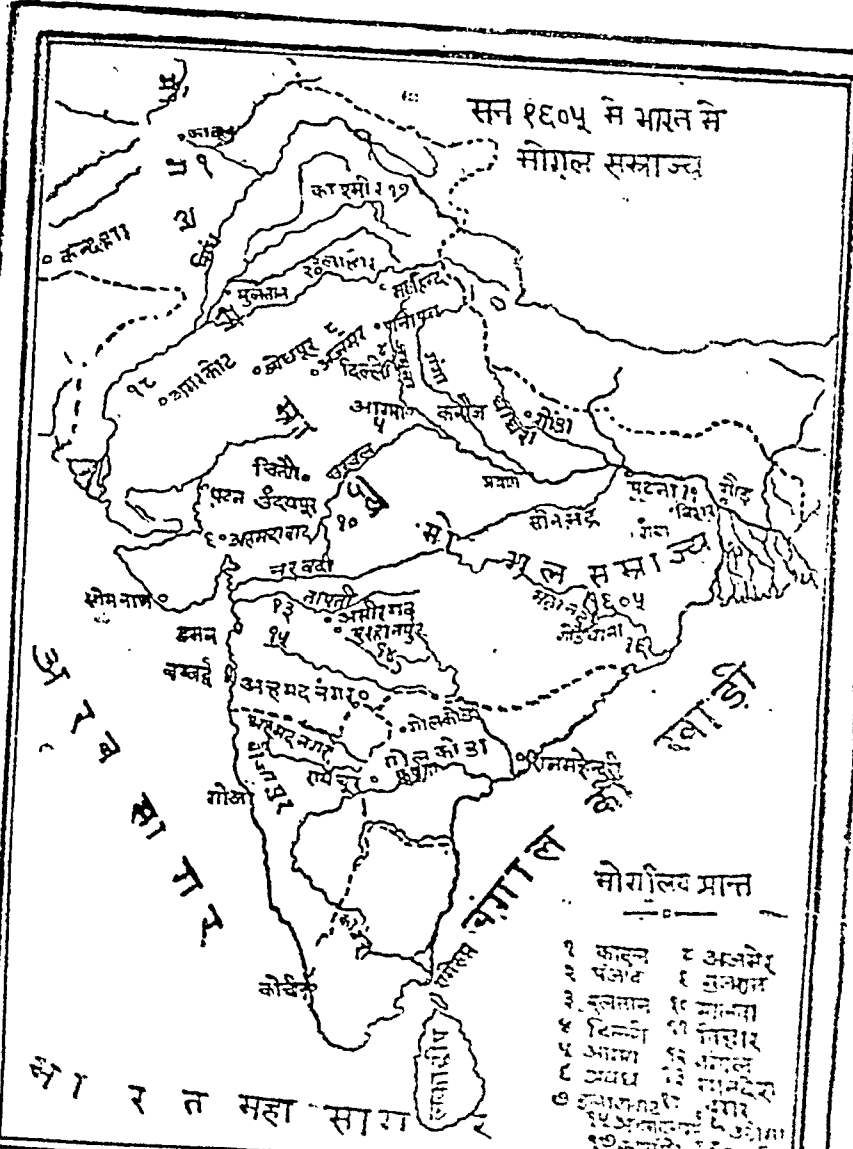
अकवर की राज्य-व्यवस्था—
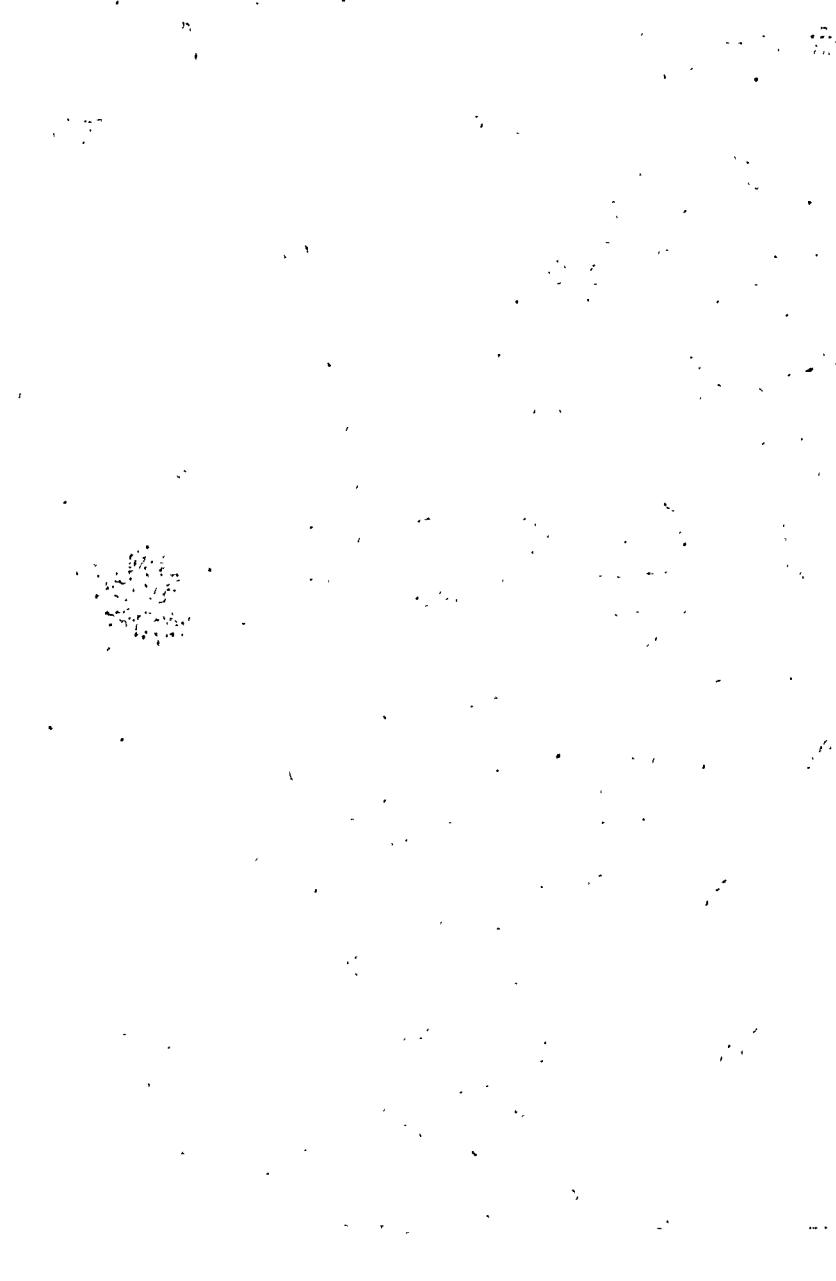
७—शासन कार्य के विभाग

भूतपूर्व सम्राट्ने भारतके राजाओं और जनताके प्रति-घोषणा करते हुए २री नवम्बर सन् १९०८ को कहा था कि +"आप लोगोंके विशाल इतिहासमें आधी शताब्दी बहुत ही सूक्ष्म समय है तो भी जिस आधी शताब्दी का आज अन्त हो रहा है वह आप लोगोंके ऐतिहासिक युगोंके घन समूहमें अत्यन्त चमकीले दृश्यके समान है। भारतको साम्राज्यके सीधे अधिकारमें लानेवाली घोषणा (१८५८) ने भारतीय शासनकी एकता पर मुहर लगा दी और नये युगको आरम्भ किया। यात्रा कठोर थी और उन्नतिकी चाल कभी कभी सुस्त रही

एक विभाग एक जिलेमें माना जाता है और अन्य कार्यों के लिए वही अलग ही दूसरे जिलेमें सम्मिलित रहता है।

*Half a century is but a brief span in your long annals, yet this half century that ends today will stand amid the floods of your historic ages, a far shining landmark. The proclamation of the direct supremacy of the crown sealed the unity of the Indian government and opened a new era. The journey was arduous and the advance may have sometimes seemed slow: but the incorporation of many strangely diversified communities and of some three hundred millions of the human race under British guidance and control has proceeded steadfastly and without pant. We survey our labours of the past half century with clear gaze and good conscience

होगी। परन्तु बहुत से अद्भुत भिन्नता रखनेवाली जातियों और लगभग ३० करोड़ मनुष्योंको अंग्रेजी नेतृत्व और शासनमें लाकर एकीकरणका कार्य दृढ़तापूर्वक बिना रुकावटके जारी रहा है। हम गत आधी शताब्दीके अपने परिश्रमोंकी स्वच्छ दृष्टि और सन्तुष्ट अंतःकरणसे पड़ताल करते हैं।"

यही बात उस आधी शताब्दी के लिए भी कही जा सकती है, जिसपर पानीपतकी दूसरी लड़ाई की मुहर १५५६ में लगी और जिसकी समाप्ति १६०५ में मध्यकालीन भारतके परमोज्ज्वल नक्षत्रके अस्त होने के समय हुई। भिन्न भिन्न समुदायोंका एकीकरण और राज्य-व्यवस्थाका स्थिरीकरण दौड़ते हुए मनुष्यके भी दृष्टिपथ से बाहर नहीं जा सकता। शासन-कार्यमें राजा मानसिंह और राजा टोडरमलका भाग तथा इबादत खानेकी गूढ़ चर्चा निर्मल दर्पणके समान देख पड़ती है। वर्तमान शासनपद्धतिकी तत्कालीन प्रणालीसे तुलना करनेपर दोनोंमें बहुत समानता देख पड़ती है। इस समय शासन कार्य अनेक विभागोंमें बँटा है। प्रत्येक विभागके कर्मचारी अलग अलग हैं। वैदेशिक विभाग (Foreign) आन्तरिक विभाग (Home) शिक्षा और स्वच्छता विभाग (Education and Sanitation) उद्योग और व्यापार विभाग (Commerce and Industry), कृषिविभाग (Agriculture), पुरातत्व विभाग (Architecture) और सर्वहित विभाग (public works) इत्यादि अनेक विभागोंमें वर्तमान शासन पद्धति विभक्त है। इन विभागोंमें अंतर भी पार्याप्त है। इतना खुला हुआ अंतर है कि उसकी छानबीनकी अधिक आवश्यकता नहीं है। नीचेसे लेकर ऊपर तक देख जाइये, कोई न कोई

विभाग सभी श्रेणियोंमें देख पड़ेगा। हाँ, जितने ही नीचे दृष्टि डाली जायगी उतना ही अप्रकट रूप यह विभाग पकड़ते जायंगे। ऊपर बढ़नेपर जब भारत सरकारपर दृष्टि जाती है तब शासनका कार्य बड़े व्यक्त रूपमें विभागोंमें बँटा हुआ देख पड़ता है। सेना सम्बन्धी कार्य सैनिक लाटके अधीन, शिक्षा सम्बन्धी कार्य शिक्षा सदस्यके अधीन और आन्तरिक विभाग का कार्य आन्तरिक सदस्य (Home member) की देख रेख-में चलता है। यही हाल अन्य विभागोंका भी है। तथा सबके ऊपर वाइसरायका शासन रहता है। आधुनिक भारत सर-कारमें इतना स्पष्ट विभाग देख पड़ता है। परन्तु अकबरके समयमें विभागोंका विभाजन इतनी व्यक्त रीतिसे नहीं हुआ था। मुग़ल सम्राट्को प्रायः उन्हीं समस्याओंका सामना करना था जिन्हें वर्तमान सरकार सुलभा रही है। भारत उस समय भी कृषि प्रधान देश सदाकी भाँति था। अबभी कृषिमें ही देशका जीवन है। राजकरका प्रधान भाग उस समय भी भूमि से ही आता था। देशमें भिन्न भिन्न धर्मों और समुदायों-का अस्तित्व उस समय भी था। बल्कि एक मुसल्मान सम्राट् के लिये तो हिन्दुस्तानका शासन इस दृष्टिसे अत्यन्त विकट था। देशमें राजद्रोहोंका भय और विदेशसे आक्रमण होनेकी सम्भावना उन दिनों अत्यन्त अधिक रहा करती थी। वास्तव में शासनका कार्य उस समय बहुत कठिन था! यदि उस समय की समस्याओंकी आजकलकी समस्याओंसे तुलना की जाय तो स्थूल रूपसे कोई विशेष अन्तर नहीं देख पड़ेगा। पर सूक्ष्म रीतिसे देखनेपर कुछ मुख्य मुख्य बातोंमें बड़ी भिन्नता थी। यही कारण है कि उस समय शासनके

कुछ अंगोंपर अधिक ध्यान दिया जाता था और आजकल कुछ दूसरे ही अंगों पर। उस समयके शासनमें सैनिकताका भाव प्रधान था। सेनापर जितना ध्यान उस समय देनेकी आवश्यकता थी उतना आजकल नहीं है। यों तो बिना सेनाके शासनका कार्य असाध्य है और गत पाश्चात्य महा-युद्धने संसारको सचेत भी कर दिया है; तथापि आजकल सभ्यताकी मात्रा संसारमें अधिक है। अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त धीरे धीरे प्रवल होते जा रहे हैं। और सम्भव है कोई दिन ऐसा भी आवे जब अमेरिकाके राष्ट्रपति विल्सनका राष्ट्र-सङ्घ (League of nations) विषयक स्वप्न यथार्थतः सत्य निकले। किन्तु अकबरके समयमें यह बात नहीं थी। उस समय तो सेना ही राष्ट्रका सर्वस्व थी। सेनामें ही साम्राज्यका प्राण अधिष्ठित था। लोग कहते हैं कि मुगल साम्राज्यका विनाश औरंगजेबकी धार्मिक नीतिके कारण हुआ, यह किसी परिमाणमें सच भी है। परन्तु यह कहना यही प्रकट करता है कि अकबर की धार्मिक नीति ही साम्राज्यका प्राण थी। वास्तविक बात यह नहीं है। धार्मिक नीतिके ही सदृश सेना और कोश इत्यादि भी बड़े ही महत्वके प्रश्न थे। मुगल साम्राज्यके विनाशका बहुत कुछ कारण सेनाके सङ्ग-ठनमें देख पड़ेगा। सेनाके सङ्गठनका इतना अधिक प्रभाव साम्राज्यके अस्तित्वपर पड़ना ही सिद्ध करता है कि सेना तत्कालीन शासनमें बड़े ही महत्वकी समस्या थी। यही कारण था कि सेनाके संगठनपर इतना अधिक ध्यान सम्राट् अकबर देते रहे। प्रान्तीय शासन भी प्रायः सैनिक अफ़सरों के हाथमें रखा जाता था। सेना ही प्रधान शक्ति (Predominant force) थी।

इसी विभागकी सत्ता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती थी। यदि अकबर-के समयमें शासन कार्य सुव्यक्त (clear-cut) विभागोंमें (departments) बँटा होता तो सेना-विभाग सर्वप्रधान विभाग होता।

सेनाके अतिरिक्त कोशकी वृद्धि और उसके शासनपर तो सभी शासकोंका ध्यान रहता है। भारतके मुसल्मान बादशाहोंमें से बहुतोंने तो इस देशको कोशवृद्धिका साधन मान लिया था। ऐसे शासक अधिक नहीं थे जो कोशको देशकी असली प्रजा-के हितका साधन बनाते। बहुतेरे बादशाहोंको हिन्दू प्रजासे कर मिलना चाहिये था, चाहे यह कर उनके हितमें लगे अथवा उलटे उसी हिन्दू प्रजाके दमनमें लगे। सम्राट् अकबरने कोश-पर बहुत उचित ध्यान दिया। भूमिकर विभागका नूतन और उत्तम संगठन टोडरमलकी सहायतासे करके सम्राट्ने प्रजाका बड़ा हित किया। आईन-ए-अकबरीमें बहुतेरे करोंकी सूची मिलेगी जिन्हें अकबरने बिल्कुल बन्द कर दिया। सम्राट्ने भूमिकरकी वसूलीका भी अच्छा प्रबन्ध किया था। अकबरने स्थानीय अफ़सरोंको यह आदेश दे दिया था कि वह लोग ऐसा यत्न करें, जिससे कृषिकी उन्नति हो। क्योंकि वह समझता था कि कृषि ही भारतीय प्रजाका जीवन है और कृषकोंकी ही सुख समृद्धिपर साम्राज्यकी स्थिरता और सुख-समृद्धि निर्भर है। कृषि तथा भूमिकर विभाग भी बड़े महत्वका विभाग था। अकबर (और विशेषकर राजा टोडरमल) का नाम इस सम्बन्धमें बहुत लिया जाता है। आजकलके भूमिकर विभागकी जड़ अकबरी पद्धति है। यद्यपि समयके साथ अंतर भी भूमि-करके शासनमें बहुत हुआ तो भी आधुनिक पद्धति अकबरी पद्धतिकी ऋणी है।

आजकल सार्वजनिक हितके कार्यों के लिये (Public works) एक अलग ही विभाग है जिससे प्रजाको बड़ा लाभ हो रहा है। परन्तु अकबरके समयमें ऐसे कार्यों के लिए कोई संगठन नहीं था। सार्वजनिक हितके कार्य किये अवश्य जाते थे, पर विभाग की व्यवस्था न थी। व्यक्त विभाग, यदि उस समय कोई थे, तो सेना और भूमिकरके थे। अन्य कार्यों के लिए न तो कोई विभाग ही था और न कोई दृढ़ आयोजन ही किया गया। शिक्षाकी भी यही दशा थी। अबुलफ़ज़लने आदर्श शिक्षाका थोड़ा सा चित्र खींचा है, किंतु पता नहीं कि उन सिद्धान्तोंको कार्य रूपमें सम्यक् परिणत होनेका अवसर मिला या नहीं। इतना तो निश्चय है कि सम्राट्ने शिक्षा विषयक कोई भी दृढ़ या स्थायी आयोजन वृहत् रूपमें नहीं किया था। अथवा यों कहिये कि उस समयकी राजनीतिमें प्रजाकी शिक्षा-का प्रबन्ध करना शासकके लिए आवश्यक नहीं था। उन दिनों इतना ही पर्य्याप्त समझा जाता था कि बादशाह विद्वानों और पवित्र पुस्तकोंके पाठकों अथवा व्यक्तिगत (Private) शिक्षा-लयोंके सञ्चालकोंकी इनाम या मददेमाश इत्यादि द्वारा सहायता कभी कभी करता रहे।

न्याय और पुलिसका उस समय आजकल जैसा प्रबन्ध नहीं था। दोनों समयोंमें महान् अन्तर है। पहले काज़ी और मीर अदलके कार्यों का विवरण दिया जा चुका है। न्यायका प्रधान निर्णायक* सम्राट् था। प्रान्तीय शासकोंको भी अपने अपने प्रान्तोंमें न्याय (Justice) का अधिकार था। बहुत कुछ

---

* जहाँगीरने न्याय-शृङ्खला बनवाई थी।

सन्देह है कि उस समय न्यायके अधिकारियोंमें (सम्राट् और सूबेदार या सिपहसालार इत्यादिको छोड़कर) घूस लेनेकी प्रथा रही हो। परन्तु आजकल न्यायके कर्मचारियोंमें ऐसे दोष प्रायः नहीं सुन पड़ते हैं। हां, पहले ऐसा अवश्य होता था। घूसके इस तरह कम हो जानेका कारण यह है कि शिक्षा और वेतनकी वृद्धिके साथ साथ न्याय कर्त्ताओंमें सत्यशीलता और कर्त्तव्यका ध्यान अधिक आ गया है। अंग्रेज़ोंके शासनके आरम्भिक कालमें ऐसी दशा न थी। १८५८ के बलवे से लेकर १९०८ तकके ५० वर्षों के अंगरेज़ी शासनके परिणामका विवरण स्वरूप एक मेमोरैंडम अक्टूबर १९०६ में सम्राट्की आज्ञासे पार्लियामेंटके सम्मुख उपस्थित किया गया था। उसमें स्पष्ट लिखा है कि*"पहलेके समय के न्याय सम्बन्धी कर्मचारियोंके प्रति इस प्रकारका दोषारोपण अथवा संदेह प्रायः किया जाता था।" मुग़लोंके न्याय विभागमें सम्भव है सत्यशीलता अकबर इत्यादिके समयमें रही हो परन्तु निपट (absolute) सत्यता की आशा करना निरर्थक है। आईन-ए-अकबरीमें राजकर्मचारियोंके प्रति सम्राट् के आदेशोंका विवरण अलग दिया है।† उसमें न्याय करनेकी विधि (Prooedure) का जो विधान किया है उससे पता चलता है कि सम्राट् मीर अदल और काज़ी द्वारा सत्य न्याय कराने-

---

* Memorandum on some of tbe results of Indian administration during the last fifty years of British rule in India पृष्ठ १५-१६।

† ग्लैडविन पृष्ठ २५८

का यत्न करता था न्यायपर विचार करने तथा दण्डकी आज्ञा देनेके लिए अलग अलग (क़ाजी और मीर अदल) कर्मचारी थे। न्यायके इन कर्मचारियोंको शासन सम्बन्धी कार्य नहीं करना पड़ता था। यह न्याय विभागके ही लिए नियुक्त थे। पर शासन सम्बन्धी (Executive) कर्मचारियोंमें से प्रधानको (सिपहसालार इत्यादि) न्याय करनेका पूरा अधिकार था। आजकल भी कहीं कहीं (बरमामें विशेष कर) शासन तथा न्याय दोनों विभागोंका कार्य्य एकमें सम्मिलित है। *"शासन और न्यायका यह ऐक्य (union) पूरबमें अपरिमित कालसे चला आ रहा है और सभ्यताकी किसी श्रेणीमें इससे लाभ भी होते हैं। इसमें विशेष आर्थिक लाभ भी है।" उसी पुस्तकमें फिर मिलेगा कि "जहाँ पर व्यवस्था की रक्षाके निमित्त शासनका ऐक्य आवश्यक है वहाँ वर्तमान पद्धति सम्भवतः चिरकाल तक रहेगी और अन्य स्थानोंपर सम्भवतः आर्थिक कारणोंसे दोनों विभागोंके अलग करनेमें बाधा पड़े*।" इस प्रकार स्थूल दृष्टि से दोनों समयके न्याय विभागोंके संगठनका सिद्धान्त बहुत कुछ समान था। हाँ उस समय न्याय विभागमें आजकलकी श्रेष्ठताका गुण (Efficiency) नहीं था।

पुलिस विभागके संगठन पर सम्राट्का अच्छा ध्यान था। किंतु उसके पुलिस सम्बन्धी सुधारोंमें मौलिकताका सन्देह नहीं करना चाहिये। पिछले एक परिच्छेदमें लिखा जा चुका है कि शेरशाह सूरीका पुलिस सुधार सम्भवतः मौलिक था।

---

* memorandum पृष्ठ १७

स्थानीय दोषोंका उत्तरदायित्व मुक़दमोंके ऊपर होनेका विवरण पहले पहल शेरशाह सूरीके ही सम्बन्धमें देख पड़ता है। अकबरके समयमें पुलिस विभागका आयोजन अच्छा था। फ़ौजदारों और कोतवालोंका कार्य प्रायः आधुनिक पुलिसके कार्यों के समान होता था। राजद्रोहोंका रोकना, सम्राट्के नियमों और आदेशों को कार्य रूपमें परिणत करनेकी चेष्टा करना, घोड़ों और सेनापर विशेष ध्यान देना, लूटका भाग राजधानीमें भेजना और राज-करकी वसूलीमें सहायता करना इत्यादि कार्य्य फ़ौजदारोंको करने पड़ते थे। इनके अधीन कई परगने रहते थे। आमिल-गुज़ार पुलिसके सम्बन्धका कर्मचारी नहीं था, पर उसे भी कुछ कार्य ऐसे करने पड़ते थे जिनका पुलिससे सम्बन्ध था। आमिलगुज़ारका कर्त्तव्य था कि वह चालाक और आज्ञा उलंघन करनेवाले लोगोंका सुधार करे और सुधार असम्भव हो तो उन्हें दण्ड दे। पर विशेषकर आमिलगुज़ारको भूमिकर सम्बन्धी कार्य करने पड़ते थे। अस्तु फ़ौजदारके अतिरिक्त पुलिस विभागमें कोतवाल भी बड़ा अफ़सर था। उसके कार्य, जैसा ऊपर देख आये हैं, आधुनिक कोतवालोंके कार्यों से मिलते जुलते थे। रात्रिकी चौकीपर विशेष ध्यान रखना, सब घरों और चलती सड़कोंका रजिस्टर रखना, नगरको महालोंमें बाँटकर मीरमहालोंके अधीन कर देना, मीरमहालकी मुहरसे उसके महालमें आने जानेवाली वस्तुओंका विवरण लेना; महालों के विषयमें अन्य बातें जानना, मीरमहालके कार्य्योंकी देख-रेख करनेके निमित्त उस महालका एक गुप्तचर नियुक्त करना और एक दूसरा भी गुप्तचर नियुक्त कर देना जो उसे

अविदित रहे और अपरिचित यात्रियों के लिए अलग सरायमें रहनेका प्रवन्ध करना इत्यादि कार्य कोतवालके सिपुर्द रहते थे। कमसे कम नगरोंमें उस समय पुलिस विभागपर आजकलसे कहीं अधिक ध्यान दिया जाता था। इसका कारण यह है कि उस समय आजकलकी सी शान्ति नहीं थीं। पुलिसके विशेष आयोजनकी उस समय आवश्यकता थी।

सेना, भूमिकर, न्याय और पुलिस विभागोंके अतिरिक्त कुछ अन्य विभाग भी थे जिनका प्रबन्ध इनसे बिलकुल अलग था। अकबरने थोड़ा बहुत नौ-सेनाका भी प्रबन्ध किया था। वह मीरबहरके अधीन रहती थी, परंतु यथा सम्भव मीरबहरका कार्य सेनाके ही सम्बन्धका था। विशेष कर नदियोंके पार करनेमें आकस्मिक पुल इत्यादि बनवानेके कार्यमें मीरबहरकी आवश्यकता थी। इसी प्रकार ख़ेमाके लिये अलग ही बहुत से कार्यकर्त्ता रहते थे। यहां तक कि कई मंसबदारों को ख़ेमाके प्रबन्धमें कार्य करना पड़ता था। ख़ेमा का स्थान निर्दिष्ट करना मीर-मंजिलका काम होता था। मुग़लोंका ख़ेमा अत्यन्त मनोहर और विशाल होता था। सैनिक दृष्टिसे इसमें दोषोंका अभाव नहीं था, लेकिन इसकी विशालता और रमणीकता देखकर मुग्ध हो जाना पड़ता था। इस चलती-दिल्लीके निर्माण और प्रबन्धमें बहुत मनुष्य लगे रहते थे। वास्तवमें ख़ेमाको अलग ही एक विभाग मानना चाहिये, इस विभाग पर भी मुग़लोंका कुछ कम ध्यान नहीं था। सम्राटके समयमें समाचार पत्र नहीं थे, सुविस्तृत साम्राज्यके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें जाकर संवाद संग्रह करना प्रायः असम्भव सा था। इसीसे उन्होंने देशकी अवस्था

अभाव और सब प्रकारके समाचार पानेकी लालसासे सम्वाद-विभागका स्थापन किया था। गत अध्यायमें इस विषयपर तुज़के-जहांगीरीका उद्धरण दिया जा चुका है। वस्तुतः वाक्या-नवीसोंके संगठनसे सम्राट्को सब समाचार मिलते थे, जिनसे प्रजाके दुःख दूर करनेकी चेष्टा सम्राट् करता था। टकसालका भी अलग ही विभाग समझना चाहिये। अबुलफ़ज़लने भी इस विषयका अच्छा विवरण आईनमें दिया है। इसका प्रवन्ध एक दारोग़ाके अधीन था और टकसाल-का कार्य करनेके लिए जैसा पहले लिख चुके हैं, वहुत से मनुष्योंकी आवश्यकता होती थी। साम्राज्यके भिन्न भिन्न स्थानोंमें ४२ टकसाल स्थापित की गयी थीं। उनमें सिक्के विशुद्ध धातुके वनते थे। पहले रुपयेका नाम तंका था। एक ग्रन्थकारका अनुमान है कि सम्भव है कि शेरशाह सूरीने उसके मुग्धकर रूपके कारण 'रुपिया' नाम रखा हो। तभी से हिन्दी भाषामें यह नाम प्रचलित है।

मुग़ल दरबारकी शोभा और रमणीकताकी कथा प्रसिद्ध है। विविध प्रकारके पन्ना, नीलम, हीरा, पुखराज, इत्यादि बहुमूल्य रत्नोंसे सम्राट्का रत्नालय परिपूर्ण था। वादको शाह-जहांके समयकी प्रभा देखकर आँखें चकाचौंध हो जाती हैं। पर अकबरके समयमें भी मुग़ल दरबार और रत्नालयकी प्रभा का विवरण पढ़ते ही वनता है। आईनके आरम्भमें ही इस विभाग (रत्नविभाग) की थोड़ी सी बातें अबुलफ़ज़लने लिखी हैं। उसमें विशेषतः रत्नोंकी भिन्न भिन्न श्रेणियोंका विवरण है। इस विभागके लिए एक खज़ांची, एक तिपक्ची, एक दारोग़ा और अनेक जौहरी नियत थे। कोशविभाग प्रधान

कोशाध्यक्षके अधीन था, जिसके साथ एक दारोग़ा और कई एक लेखक नियुक्त थे। प्रान्तोंमें भी कोशाध्यक्ष रहता था तथा प्रत्येक करोडीके साथ एक एक ख़ज़ांची नियत था। प्रान्तोंमें एक लाख दाम इकट्ठा हो जानेपर उसे राजधानीमें हिसावके साथ भेज देनेका नियम सम्राट्ने वना दिया था। पेशकुश, दान, और पुरस्कार इत्यादिके लिए अलग ख़ज़ांची और कर्मचारी नियत थे। कोशविभागका सङ्गठन अच्छा था। इन विभागोंके अतिरिक्त राजभवन (राजकुल) और हरमको भी शासन कार्यका विभाग समझना चाहिये, क्योंकि सम्राट्को इनपर भी ध्यान रखना पड़ता था, किन्तु यहाँपर इनके विशेष विवरणकी आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार शासन कार्यके मुख्य विभागोंका सूक्ष्म वर्णन हो चुकनेपर इस सम्बन्धमें वकील, वज़ीर (दीवान), मीर वख्शी और सदरुस्सदर--इन चार प्रधान कर्मचारियोंका भी उल्लेख करना अनुचित नहीं है, क्योंकि यही चार कर्मचारी सर्वप्रधान थे और इनके अधीन शासन कार्यका वहुत कुछ भाग था। इन चारों के कार्यों को प्रधान (Imperial departments) विभागमें सम्मिलित कर सकते हैं; पर, जैसा पहले लिखा आये हैं, सोलहवीं शताब्दीके भारतीय शासनमें विभागोंकी व्यवस्था व्यक्त रूपसे नहीं हुई थी। उस समय शासनकार्य सुस्पष्ट (clear cut) विभागोंमें आजकलकी तरह नहीं वँटा था। तो भी तत्कालीन शासनपद्धतिकी उत्तमतापर कोई भी सन्देह नहीं किया जा सकता। अतएव लेनपूलके शब्दोंमें इस परिच्छेदको इस प्रकार अंत करना अनुचित न होगा कि "सम्राट् अकवर एक अद्भुत भिन्नता रखनेवाले

सम्राज्यके शासन सम्बन्धी भयावह कठिनाइयोंको हल करनेमें पूर्वीय शासकोंमें सर्वश्रेष्ठ निकलता है और भारी से भारी यूरोपीय बादशाहोंको तुलनाके लिए आह्वान कर सकता है!" अकबरी राज्यव्यवस्था ही इसका जाज्वल्यमान प्रमाण है। कोई गूढ़ शक्ति स्वर्गमें उसके कानों तक यह सन्देश पहुँचा रही है कि "हे सम्राट्! तू अब भूलोकमें नहीं है; पर तेरी अटल कीर्ति दिगन्त व्यापिनी हो रही है!"

८—सेना

सम्राट् अकबरके समयमें दो विभिन्न सभ्यताओंके एकीकरणका भाव प्रबल था। दोनोंके सिद्धान्त युद्धके सम्बन्धमें प्रायः एकसे थे। मुसल्मान काफ़िरों से लड़कर गाज़ीकी उपाधि प्राप्त करना परम धर्म समझता था—जिहाद उसके लिए स्वर्गका खुला द्वार था। हिन्दुओंकी लड़ाकी जातिका भी सिद्धान्त इससे भिन्न न था। उसके विषयमें तो श्रीकृष्णने कहा था कि

"सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ, लभन्ते युद्ध मीदृशम्।"

ऐसी लड़ाई मिलनेपर पीठ दिखलाना और युद्धसे मुख मोड़ना धर्मके विरुद्ध था। युद्धमें मृत्यु और विजय दोनों कल्याणकारी समझे जाते थे। हिन्दू-युद्ध-कल्पना और मुसल्मान-युद्ध-कल्पना दोनोंमें इस विषयमें अधिक अन्तर नहीं है। श्रीकृष्णका "हतो प्राप्तयसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्" वाला सिद्धान्त मुसल्मानोंके सिद्धान्तसे बहुत कुछ

मिलता जुलता है। हाँ, दोनों जातियोंकी युद्ध कल्पनामें एक वड़ा भारी अन्तर प्रत्यक्ष है। मुसल्मान प्राय; इस्लामके प्रचारके लिए तलवार उठाता था। उसके सिद्धान्तमें साम्प्रदायिक कट्टरता कूटकूट कर भरी थी। परन्तु हिन्दूको ऐसा नहीं करना था। उसके धर्ममें अन्य धर्मवालोंको अपनेमें मिलानेका निषेध था। यही कारण था कि हिन्दुओंका युद्ध कल्पनामें धर्म परिवर्तन (Conversion) को स्थान देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। पर अकबरकी समर-नीति और उसकी सेनाके संगठनपर इन दोनों जातियोंकी सैनिकताका प्रभाव नहीं पड़ा। उसके रगोंमें मध्य एशियाई रुधिर का प्रवाह था, अतएव मध्यएशियाकी घूमनेवाली-जातियों-(Wandering Tribes) का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। अकबरके पूर्वजोंकी जातिमें भ्रमणशीलताकी प्रकृति थी। उस जातिकी युद्ध-कल्पना विशेष उन्नत श्रेणीकी न थी। प्राय: जीविका तथा धन और लूट की लिप्साका ध्यान उन्हें अधिक रहता था। मध्यएशियामें ऐसी जातियोंका निवास था जो प्राय: इधर उधर घूमा करती थीं। उनकी इस प्रकृतिका आभास मुग़लोंके खेमों (Camps) में देख पड़ेगा। एक इतिहासज्ञने तो यहाँ तक लिखा है कि मुग़लोंका कभी कभी राजधानी परिवर्तन करना (आगरा, दिल्ली और लाहौर) उनकी मध्यएशियाई प्रकृतिका अप्रत्यक्ष (Indirect) द्योतक है। अस्तु, भारतीय मुग़लों के सेना-सङ्गठन और युद्ध-कल्पनापर हिन्दू मुसल्मान और मध्यएशियाई तीनों प्रभाव पड़े।

पर सम्राट् अकबरकी युद्ध-नीतिमें न तो जिहादको स्थान था और न उसका लक्ष्य धन और लूटका लाभ था। उसका

उद्देश्य था हिन्दुस्तानके भिन्न भिन्न प्रदेशोंको एक प्रधान साम्राज्य की रस्सीमें गूंथना और मुग़ल शासनको दृढ़ता देना। यह उद्देश्य मुसल्मानी जिहाद और मध्यएशियाई बलप्रयोगसे बहुत भिन्न था। अपने मुख्य अभिप्रायको सिद्ध करनेके लिए उसने "हिन्दू राजनीति का

"साम दण्डौ प्रशंसन्ति, नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये"

वाला सिद्धान्त अपनाया था। बहुत कुछ सन्देह होता है कि वह भेद और और दानके उपायों* का भी अवलम्बन करता था। पर इस सम्बन्धके उदाहरणों का अभाव है। माया, उपेक्षा और इन्द्रजालका दोषी तो उसे कभी सिद्ध नहीं किया जा सकता। तथापि वह युद्ध पहले ही नहीं ठान देता था। यदि कोई अन्य उचित उपाय शत्रुको सम्राट्के पक्षमें नहीं ला सकता था तो, संग्राम द्वारा जीतनेका उपाय किया जाता था। अकबर प्रायः "दंडस्त्वगतिका गतिः"का

---

* हिन्दू राजनीतिज्ञोंने शत्रुपर सफलता प्राप्त करनेके चार मार्ग माने हैं, जिन्हें उपाय कहते हैं। वह यह हैं :—

१—साम = मैत्रीकरण या पत्र व्यवहार इत्यादि।

२—दान = घूस आदि।

३—भेद = फूटके बीज बोना।

४—दण्ड = आक्रमण और युद्ध।

कुछ राजनीतिज्ञोंने ७ उपाय माने हैं। शेष तीन यह हैं ५—माया = धोखा। ६—उपेक्षा = चाल चलना, धोखा देना या बहकाना। ७—इन्द्रजाल = एक प्रकारका धोखा या चालाकी।

पक्षपाती था। तो भी जीवन पर्यन्त उसकी तलवार रक्तमें सनी थी। बलवाइयोंका दमन और शत्रुओंकी विजय करनेके लिए सम्राट्को सेनाके संगठनपर ध्यान देना पड़ा। एक बड़ी भारी सेना बिना उचित संगठन (Effective Organisation) के पर्य्याप्त नहीं होती। सैनिकोंके एक बड़े भारी अव्यवस्थित समूहसे लाभके बदले हानि अधिक होती है। संगठनमें बड़े गुणकी आवश्यकता होती है। एक ही प्रकारकी योजना सब स्थितियोंके लिए उपयुक्त नहीं हो सकती। उदाहरणतः मैदानमें हयदल (घोड़ों) की अधिक आवश्यकता पड़ती है और पहाड़ी देशमें पैदलकी। हयदलकी शक्ति हलकी तोपों (Horse Artillery) में होती है, परन्तु पैदलकी बड़ी तोपों (Heavy Artillery) में है। समय समयपर दलोंकी संख्यामें भी अन्तर करना पड़ता है। यूरोपीय सैनिक शक्ति स्थितिके अनुसार भिन्न भिन्न प्रकारके सेनाओंकी उपयुक्तता-का प्रमाण है। यथा जर्मनीकी शक्ति तोपों (Artillery) में, रूसकी घोड़ोंमें और विलायतकी जलसेनामें देखनी चाहिये। अब यहाँपर सम्राट् अकबरकी सैनिक व्यवस्थापर विचार करना है।

अकबर भारी स्थायी सेना (Standing army) नहीं रखता था। ब्लाकमैनका अनुमान था कि सरकारी कोश से सीधे वेतन पानेवाले सैनिकोंकी संख्या २५००० थी। पर मांसरेट (जो उस समय सम्राट्के साथ था) कहता है कि काबुलके आक्रमणके समय (१५८१) अकबर के पास ४५००० हयदल था जिसका वेतन और साज सामान सम्राट् स्वयं देता था। इसके अतिरिक्त ५००० गजसेना और अगणित पैदल थे।

किंतु पैदलोंमें नियमित सिपाहियोंके अतिरिक्त अन्य सभी प्रकारके लोग सम्मिलित थे। डाक्टर स्मिथका कहना है कि १५८१ का यह प्रयत्न विशेष अवस्थामें किया गया जब कि अकबर के जीवन और सिंहासन के लिए बड़ा भारी भय उपस्थित था। स्मिथ कहते हैं कि यह तो प्राय: निश्चय है कि साधारण समयमें सम्राट् इतनी बड़ी सेना रखने का व्यय नहीं उठाता था *। उसकी सेनाका अधिकांश भाग बड़े बड़े सरकारी अफ़सरों और देशी रजवाड़ोंमें बँटा था। आजकलकी तरह उस समय भी साम्राज्यका अधिक भाग उन वंशानुगत राजाओं और सरदारोंके अधिकारमें था जिन्हें आजकलके शब्दोंमें देशी या रक्षित (Native or protected states) राज्य कह सकते हैं। यह लोग अपने राज्योंके आन्तरिक शासन (internal administration) में स्वतन्त्र थे। इन्हें केवल कर देना पड़ता था और आवश्यकता पड़नेपर सैनिक सहायता (military aid) देनी पड़ती थी। यह लोग सम्राट्को अपना शासक मानते थे और कभी कभी दरबारमें आना और भेंट देना इनके लिए आवश्यक था। युद्धोंमें सम्राट्की सहायता करना इनका कर्त्तव्य था। सम्राट्का सितारा जब सर्वोच्च चमक रहा था उस समय ऐसे ऐसे बीस राजा बराबर

---

* १५७३ में जब गुजरातविजयके लिए आशुकार्यताकी आवश्यकता थी, उस समय सम्राट्ने अपने कोशका द्वार खोल दिया था और अपने सरदारोंकी सेनाका साज सामान स्वयं देने लगा था। —स्मिथ पृष्ठ २६१

उपस्थित रहा करते थे। यह लोग प्रायः संग्रामोंमें सम्राट् की सेवा करते थे [1]

लेकिन सम्राट्को सबसे अधिक भरोसा अपने अफ़सरों-की सेनापर था। इन अफ़सरोंको सम्राट् स्वयं नियुक्त करता था। इनको एक नियमित संख्याके भीतर सैनिक और घोड़े भरती करके उनके साज सामानका स्वयं प्रबन्ध करना पड़ता था। गजसेना भी इन्हें भरती करनी पड़ती थी। सम्राट्ने बहुत कुछ सोच विचार कर इस विषयके कुछ नियम स्थिर किये थे। इन नियमोंका उद्देश्य यह था कि सैनिकोंकी निश्चित संख्याके भरती करने में और घोड़ों तथा साज-सामान (Equipment) के प्रबन्धमें अफ़सर सम्राट्को धोखा न दे सकें। इस प्रकारकी भरती की हुई सेनामें हयदल ही विशेष था। पैदल और तोप उतने महत्वके न थे। जो अफ़सर इन सैनिकोंको भरती करता था उसीको यह लोग अपना सरदार मानते थे। इन लोगोंका कोई रेजिमेंट या संगठित दल नहीं था और न इन्हें ड्रिल (संगठित युद्धाभ्यास) करनी पड़ती थी और न वस्त्र (पोशाक) या अस्त्र शस्त्रमें समानता ही रखनेकी आवश्यकता थी। इस सेनाके अफ़सरको मंसबदार कहते थे। वह भरतीका अफ़सर (Recruiting officer) और सेना-नायक (Commander of his force) दोनों होता था। इन सरदारोंकी तैंतीस श्रेणियाँ थीं। इनका

[1] खानदेशका शासक १५९७ में सूपाके युद्धमें सम्राट्की ओर से लड़ रहा था। वहीं उसे अपनी जीवनयात्रा समाप्त करनी पड़ी थी।

श्रेणी विभाग उस संख्याके अनुसार होता था जो यह लोग भरती कर चुकते थे अथवा जितनी भरती हो जानेकी आशा की जाती थी। इसी प्रकार मंसबकी प्रथा अकबरने चलायी (आईन-प्रथम २३७)। यह प्रथा फ़ारसी प्रथाका अनुकरण थी [२]। दोनों देशोंकी मंसब प्रथाओंमें कुछ अंतर भी था, पर सिद्धान्त दोनोंका एक ही था। फ़ारसमें १० से लेकर १२००० तकके अफ़सर होते थे। भारतमें भी १० से १०00 तककी श्रेणी के † मंसबदार थे। मंसब शब्द-का अर्थ है वह स्थान जहाँ पर कोई पदार्थ रखा जाय या निर्माण किया जाय (नसब करदन)। अतएव इसका अर्थ स्थान या सम्मान या कोई पद ग्रहण करनेकी अवस्था भी हो सकता है। बस मंसब शब्दकी जड़ यही है। इस प्रकार मंसबदार शब्दका अर्थ हुआ "पद ग्रहण करनेवाला" चाहे सेना सम्बन्धी अथवा प्रबन्ध सम्बन्धी। मंसबदारोंमें साधा-रण सिपाहियों को छोड़कर प्रायः सभी कर्मचारी सम्मिलित रहते थे। सर्वोच्च मंसब जो किसी प्रजाको (जो सम्राट्के कुलका नहीं था) दिया जाता था ७००० का था। परन्तु बादको मुगलोंके पतनशील दिनोंमें आठ, नव सहस्र तकके मंसब दिये जानेका विवरण मिलता है। राजकुमारोंका मंसब

---

[२]दक्षिणके सुल्तानोंके यहाँ भी इसी प्रकारकी योजना (Organization) थी।

† पिछले एक परिच्छेदमें यह वर्णन किया गया है कि मंसबदार से केवल सैनिक अफ़सर नहीं समझना चाहिये। प्रबंध (Civil) सम्बन्धी कर्मचारी भी मंसब पाते थे।

७००० से ५०००० तक जाता था। और कभी कभी तो इससे भी बढ़ जाता था। आईनमें (ब्लाकमैन २४८-९) दससे दस सहस्र तकके ६६ श्रेणियोंका वर्णन है, पर वास्तविक अस्तित्व केवल तैंतीसका ही जान पड़ता है। अकबरके समयमें बहुत दिनों तक ५०००का मंसब[२] सर्वोच्च पद था। किन्तु बादको सम्राट् ने कुछ लोगोंके मंसबको ७००० का कर दिया। इन कर्मचारियोंकी पदोन्नतिका क्रम भिन्न भिन्न श्रेणियोंके लिए भिन्न भिन्न था। परन्तु सदा इसी क्रमका अनुसरण नहीं होता था। किन्ही किन्ही दशाओं में भेद भी पूरा होता था। हाँ, साधारणतः मुगलोंकी मंसब प्रथामें पदोन्नतिका यह क्रम था:—

२० से ६० तकके मंसबमें प्रति बार १० की वृद्धि होती थी
६० से १०० ,, ,, ,, २० ,, ,,
१०० से ४००,, ,, ,, ५० ,, ,,
४००से१०००,, ,, ,, १०० ,, ,,
१००० से ४०००,, ,, ,, ५०० ,, ,,
४००० से ७०००,, ,, ,, १००० ,, ,,

८००० से १००००,, तककी श्रेणी राजकुलके कुमारोंके लिए सुरक्षित थीं। पहले ७००० भी सुरक्षित रही, किंतु बादको राजा टोडरमल और एक या दो अन्य व्यक्तियोंके लिए ७०००का मंसब स्वीकृत किया गया। ५००० से नीचेके मंसबोंकी तीन श्रेणियाँ होती थीं। श्रेणियोंका विभाग ज़ात और सवारोंकी संख्या

---

[२]कुछ ऐसे भी लोग अकबरके समयमें थे, जिनका मंसब तो छोटा था पर उन्हें महत्वपूर्ण काम सौंपे गये थे।

के अनुसार होता था। ज़ात और सवारमें अन्तर था। "ज़ात" पद उस संख्याका बोधक था जितनी किसी मंसबदारको रखनेका नियम रहता था। इसके साथ साथ कुछ अधिक घोड़ोंके रखनेका अधिकार*५०० से ऊपरके मंसबदारोंको था। इस अधिक संख्याको "सवार" कहते थे। जिसके ज़ात और[२] सवार बराबर होते थे उसे प्रथम श्रेणी, जिसके सवार ज़ातके आधे होते थे उसे द्वितीय श्रेणी और जिसके सवार ज़ातके आधेसे कम अथवा जिसके पास सवार होते ही नहीं थे उसे तृतीय श्रेणीमें रखते थे। ज़ातके साथ सवार पदकी स्वीकृति बड़े सम्मानका विषय समझा जाता था। डाक्टर हार्नका अनुमान है कि 'ज़ात' के लिए स्वीकृत वेतनमें से ही 'सवार' का वेतन मंसबदारोंको देना पड़ता था। परन्तु इर्विन ब्लाकमैन

---

*५०० से नीचेवालोंके भी अधिक घोड़े रहनेके दृष्टान्त मिलते हैं। ४०० ज़ात, ५० सवार; ३०० ज़ात, ३० सवार; १५ ज़ात, ५० सवार; २०० ज़ात, १० सवार; २० सवार; ३०० ज़ात, ८० सवार; और ४०० ज़ात, ४० सवार इत्यादिके प्रमाण मिलते हैं।

[२]कुछ लोगोंका यह भी कहना है कि "सवार" उस संख्या का परिचायक है जो मंसबदारोंको अवश्य रखनी पड़ती थी। "ज़ात" की पूर्ण संख्या कोई मंसबदार नहीं रखता था किन्तु "ज़ात" में से जितनी संख्याका रखना आवश्यक था उसीको प्रोफेसर ब्लाकनमैने "सवार" संज्ञा दी है किन्तु इर्विनकी बात अधिक सत्य मालूम होती है। उनका कहना है कि "सवार" सेना "ज़ात" से बिल्कुल अलग थी।

तथा अपने एक चक्रका संकेत करके कहते हैं कि उन चक्रोंमें दिखलाया हुआ वेतन 'ज़ात' के निमित्त था। इसी वेतनमें से अफ़सरको बारबर्दारी (Transport), घरू नौकर (Household) और कुछ घुड़सवार* रखने पड़ते थे। इर्विनका कहना है कि सवार पदके लिए एक अलग चक्र दिया है और इनका 'ताबीनान[२]' शीर्षकसे वेतन दिया जाता था। इर्विनने गणना करके निश्चित किया है कि एक घोड़ा रखनेवाले व्यक्तिको वार्षिक २००) रुपया या मासिक १६॥=)८ मिलते थे तथा दो तीन घोड़े रखनेवालोंको २७५) रु० वार्षिक या २२॥=)८ मासिक मिलते थे। बर्नियरके कथनानुसार उसके समयमें २५) मासिक वेतन मिलता था। सैनिक अपने ही वेतनमें से घोड़ा और कवच रखता था तथा अपना और घोड़ेका निर्वाह करता था। हयदलमें नौकरी सम्मानास्पद समझी जाती थी और इस दलका एक साधारण सैनिक निरन्तर होनेपर भी प्रायः ऊँचे पदोंपर पहुँच जाता था। ताबीनानका वेतन मंसबदारको दे दिया जाता था और इस वेतन

---

*भरती करनेवाले अफ़सरको अपने भरती किये हुए मनुष्योंके व्यवहारके लिए उत्तरदायी होना पड़ता था। अतएव वह प्रायः अपने ही कुल कुटुम्बके लोगों अथवा अति विश्वस्त पुरुषोंको भरती करता था।

[२]ताबीनान अगर घुड़सवार होते थे तो एक तिहाई मुग़ल, एक तिहाई अफ़गान और एक तिहाई राजपूत रहते थे; और यदि पैदल होते थे तो दो तिहाई धानुष्क और एक तिहाई पलीतेदार (Matchlockmen)।

मेंसे ५ प्रति सैकड़ा उसे अपने लिए रख लेनेका अधिकार था।

वेतन भोगी सैनिकोंके अतिरिक्त मंसवदारोंके पास कुछ आश्रित या दास रहा करते थे, जिन्हें "चेला" कहा जाता था। इन चेलोंका दूसरा कोई आश्रय नहीं रहता था। इनका स्वामी ही इन्हें खिलाता पिलाता था और कपड़े देता था। यह उसीके यहाँ रहते भी थे। क्योंकि उसके खेमेको छोड़कर दूसरा कोई उनका घर न था। प्रायः युद्ध द्वारा प्राप्त बालकों अथवा अकाल पीड़ित माता पिता से मोल लिये हुए बच्चोंको[२] चेला बना लिया जाता था। इनके लालन पालन और युद्धाभ्यास शिक्षा (Training) की व्यवस्था अफ़सरको करनी पड़ती थी। इन अफ़सरोंको अपने चेलों पर ही अधिक विश्वास रहता था, क्योंकि यह अपने स्वामीका साथ देनेको सदा तैयार रहते थे। चेलोंकी प्रथा मुग़ल मंसवदारोंके लिए कोई नई बात न थी। वास्तवमें भारतीय इतिहासका मुसल्मानी पत्र, उलटते ही इसी प्रकारकी प्रथा दृष्टिगोचर होती है। गुलाम बादशाह इसीके सदृश प्रथामें पले थे। इस प्रकार मंसव-दारोंकी सेनाको ज़ात और सवारमें विभक्त होनेके अतिरिक्त वेतन भोगी और आश्रित (चेला) इन विभागोंमें भी बँटी हुई समझना चाहिए। मन्सवदारोंकी सेनाको एक दूसरे आधारसे भी विभक्त कर सकते हैं। मन्सवदारोंके अधीन कुछ ऐसे सैनिक भी रख दिये जाते थे जिनको सरकार स्वयं

---

[२] यह चेले प्रायः जन्मतः हिन्दू होते थे, पर चेला बनने पर मुसलमान बना लिये जाते थे।

भरती भी करती थी और वेतन भी देत थी। इन्हें "दाखिली[२]" कहते थे। अस्तु मन्सवदारोंकी सेनाके विभागोंके समझनेके लिए नीचे का चक्र उपयोगी होगा।
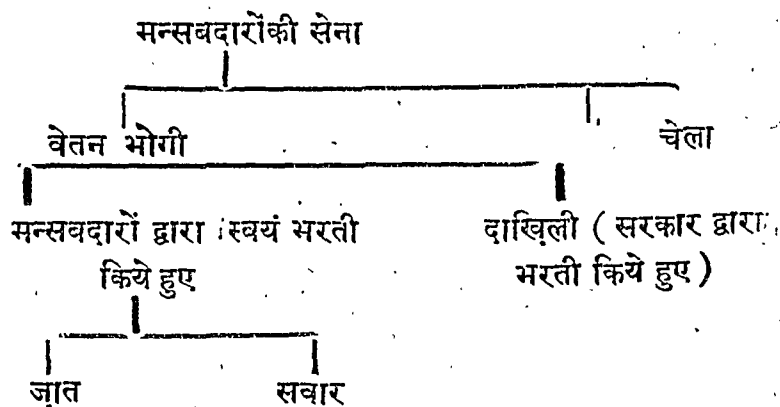
इसके अतिरिक्त स्वयं मन्सबदारोंमें भी संख्याके अतिरिक्त सम्मानास्पद उपाधियोंकी भिन्नता रहती थी यथा
२० से ४०० तकके अफसर[3] केवल "मन्सबदार" कहलाते थे।

---

[२] दाखिली सेनाका विवरण आईन (प्रथम २५४) में है, परन्तु आलमगीरके शासन कालमें यह सेना नहीं थी; कमसे कम दाखिल नाम तो सरकारी विवरणों में नहीं मिलता (देखिये इर्विन पृष्ठ १६०।)

[3]मंसबदारोंकी सैन्य-संख्याको केवल सम्मान सूचक समझना चाहिये। क्योंकि वास्तवमें मंसबदारोंके पास उतनी सेना कभी नहीं रहती थी जितनी उनके पदकी संख्या से विदित होती है।

५०० से २५०० तकके अफ़सर "अमीर" (बहुवचन उमरा) कहलाते थे।

३००० से ७००० तकके अफ़सर "अमीरे आज़म" (बहु-वचन उज्जाम) कहलाते थे।

फिर मंसबदारों का नाम सरकारी सूचीमें दो प्रकार रखा जाता था

(१) "हाज़िरे रिकाब" जो दरबारमें उपस्थित रहते थे। और (२) "तैनात" जो बाहर नियत रहते थे।

पहले मंसबदारोंको जागीरें मिलती थीं और वह निर्दिष्ट संख्यक सेना रखना स्वीकार करते थे। जो जागीरदार वास्तवमें सेना नहीं रखते, वह सेना के परिदर्शनके समय औरोंके घोड़े, वणिक् और श्रमजीवी प्रभृति द्वारा आवश्यक संख्या पूरी कर देते थे। सम्राट्को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने मंसबदारोंके हाथी, घोड़े प्रभृतिकी पीठोंपर चिह्न बनवा दिये और उनको जागीरके बदले वेतन देने-का नियम प्रचलित किया। डाक्टर स्मिथका कहना है कि अफ़सर लोग अपनी शक्ति भर सम्राट् को धोखा देनेका उपाय

---

*सम्राट् ने कुमार सलीमको १००००, कुमार मुरादको ८०००, कुमार दानियालको ७००० और सलीमके पुत्र खुसरो को ५००० सेनाका मंसबदार बनाया था। एक इतिहासकार ने लिखा है कि हिंदू और मुसलमानोंमें राजा मानसिंहको ही सबसे पहले (कुमारोंके अतिरिक्त) सातहज़ारी मंसब-दारीका पद प्राप्त हुआ था।

करते थे। वह अपनी संख्याको पूरी करनेके लिए आपसमें से किसीके आदमियोंको कुछ समय के लिए ले लेते थे या बाज़ारू आलसियोंको लद्दू टट्टुओं पर बैठा कर अभ्यस्त सैनिकोंमें गिना देते थे। इसी दोषको दूर करनेके लिए सम्राट् प्रत्येक मनुष्यका विस्तृत हुलिया लिखा लेनेमें बड़ा ध्यान रखता था। जब कोई अफसर नौकरीमें प्रवेश करता था तब नये मंसबदारका "चेहरा" तैय्यार कर लिया जाता था। उसमें उसके पिताका नाम, जाति, जन्मस्थान और आकृति (रूप रंग, ललाट, आंख और दाढ़ी) का विवरण लिख लिया जाता था। घोड़ोंका भी विस्तृत विवरण रखा जाता था। रंग के अनुसार मुख्यतः २० प्रकारके अश्व होते थे। इनमें से आठका पुनःविभाग होता था जिससे घोड़ोंके सब ५८ विभाग हो जाते थे।

गुजरात विजयके बाद सम्राट् ने[२] 'दाग़' की प्रथा चलायी। यह प्रथा मौलिक न थी। अलाउदीन खिलजी और शेरशाह सूरने भी इसे आवश्यक समझा था। अकबरके शासनमें दाग़के जिन चिन्होंका उपयोग होता था इनका विवरण आईन (प्रथम-१३९, २५५, २५६) में दिया है। आरम्भमें इन्हीं चिन्होंका उपयोग होता था; पर बादको अंकोंकी प्रथासे काम लिया जाने लगा। आलमगीरका दाग़ अकबरके दाग़ से कुछ

---

[२] स्मिथ (पृष्ठ ३६६) साहब कहते हैं कि १५८० वाला बंगालका राजद्रोह कुछ तो इस कारण हुआ कि सम्राट् जागीरें जप्त करने, हुलिया (आकृति विवरण) रखने और घोड़ोंको व्यवस्थित रूपसे दाग़नेपर अधिक ज़ोर देता था।

भिन्न था। आलमगीरके समयमें बीस प्रकारके दाग़ (तमग़ा) होते थे जिनमें से चहार परहा, चकुश, इस्ताद, उफ़्तादह, पकबदो, तेग़, पञ्ज मुर्ग, मीज़ान इत्यादि पन्द्रह दाग़ोंका रूप अब भी पुस्तकोंमें मिलता है। दाग़ घोड़ेकी जंघापर गरम लोहेसे दाग़ा जाता था। दाग़की निर्दयताके बीचमें अनेक लाभ थे। घोड़ोंकी यथार्थता निर्दिष्ट करनेका यह अच्छा उपाय था। सरकारी दाग़ तो मुग़लोंके समयमें होता ही था। उमरा लोग भी अपने ख़ास आदमियोंके घोड़ोंके पहचाननेके लिए एक दूसरा चिह्न लगवा देते थे। प्रायः यह लोग अपने नामका पहला या अन्तिम अक्षर दग़वाते थे। घोड़ोंकी पहचानके लिए दाग़नेकी चाल† अब तक कहीं कहीं रही है। सैनिक दृष्टिसे कमसे कम मुग़लोंके समयमें दाग़-प्रथा बड़ी लाभदायक थी। जान पड़ता है कि दाग़ प्रथाकी जड़ हिन्दुओंकी सांड़ दाग़नेकी प्रथा ही है। सम्भव है कि अलाउद्दीन खिल्जी, शेरशाह सूरी और सम्राट् अकबरने हिन्दुओंकी इस सामाजिक प्रथा[२] का ही अनुकरण अपने सैनिक संगठन (Military organization) में की हो। घोड़ों के लिए प्रत्येक मंसबदारको नालबन्द आहंगर (लोहार) और जर्राह रखने पड़ते थे। मुग़लोंकी सेनामें दाग़ो तशीहः

† रीवाँ स्टेट के घोड़ों पर R. S. का दाग़ अब तक होता था। सम्भव है अब भी होता हो।

[२]सांड़ दागनेकी बात सम्भवतः गरुड़ पुराणमें लिखी है। परन्तु आश्चर्य है कि 'अहिंसा परमोधर्मः' का सिद्धान्त माननेवाली दयालु हिन्दू जातिमें यह निर्दय प्रथा प्रचलित है।

*संक्षिप्त

मंसबकी संख्या	घोड़े	हाथी	भारवाहा पशु	भारवाही गाड़ियाँ
५०००	३४०	५०	१००	१६०
१०००	१०४	३१	२५	४२
५००	३०	१२	२७	
१००	१०	३	७	
२०		—	—	
१०	४	—	—	

एक आवश्यक विषय था। समय समय पर मंसबदारोंके सिपाहियों और घोड़ोंका निरीक्षण होता था। जागीरदारों और और नक़द वेतन पानेवालों, तथा हाजिरेरकाब और तैनातके निरीक्षणके समयोंमें अन्तर होता था निरीक्षण विभागके लिए अमीन, दारोगा और मुशरिफ नियत रहते थे और इस विभागका प्रबन्ध एक बख्शीके अधीन रहता था।

*स्मिथ ने ९४ लिखा है।

+देखिये इर्विन पृष्ठ ८ और स्मिथ पृष्ठ ३६३

चक्र

वेतन रुपयों में			
प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी	
३००००	२९०००	२८०००	अकबरके समयमें मासिक
२५००००	२४२५००	२३५०००	आलमगीर ,, वार्षिक
८२००	८१००	८०००	अकबर ,, मासिक
५००००	४७५००	४५०००	आलमगीर ,, वार्षिक
२५००	२३००	२१००	अकबर ,, मासिक
२००००	१८७५०	१७५००	आलमगीर ,, वार्षिक
७००	६००	५००	अकबर ,, मासिक
५०००	४५००	४०००	आलमगीर ,, वार्षिक
१०००	८७५	७५०	,, ,, ,,
१००	८२½	७५	अकबर ,, मासिक

ऊपर १०४—१०७ पृष्ठ पर दिखलाया जा चुका है कि मंसबदारोंकी प्रायः तीन श्रेणियाँ होती थीं और उनके वेतन भिन्न भिन्न थे। ऊपरके चक्रसे अकबर और आलमगीरके समयकी कुछ श्रेणियोंका वेतन मालूम होगा।

ऊपरके चक्र से पता चलेगा कि अकबरके समयमें आलमगीरके समय से कहीं अधिक वेतन दिया जाता था। इस चक्र से भिन्न भिन्न श्रेणियोंके वेतनोंका अंतर भी ज्ञात होता है। वह इस प्रकार है।

		मंसब		अंतर तीनों श्रेणियों के वेतनोंमें
अकबरका मासिक अंतर	...	५०००	...	१००
आलमगीरका वार्षिक ,,		—	...	७५००
अकबरका मासिक ,,	...	१०००	...	१००
आलमगीरका वार्षिक ,,		—	...	२५००
अकबरका मासिक ,,	...	५००	...	१००
आलमगीरका वार्षिक ,,		—	...	१२५०
अकबरका मासिक ,,	...	१००	...	१००
आलमगीर का वार्षिक ,,		—	...	५००
अकबरका मासिक ,,	...	१०	...	७½ और १७½*
आलमगीरका वार्षिक ,,	...	२०	...	१२५

अस्तु १० से लेकर ५००० तकके मंसबोंमें अकबरकी तीनों श्रेणियोंके मासिक वेतनों में सौ सौ रुपयोंका अंतर नहीं होता था। ऊपरकी संख्याओंसे अंतरों की भिन्नता मालूम हो जाती है। मुग़लोंके समयमें पद और वेतन कुछ लोगोंको तो वैसे ही दिये जाते थे (विला शर्त) और कुछको सूबेदार या फ़ौजदार इत्यादिका कार्य करनेके प्रतिबन्ध पर (मशरूत बख़िदमत)। परंतु वेतन वर्षभर प्रायः कभी नहीं दिया जाता

* पता चलता है कि छोटे छोटे मंसबोंमें तृतीय और द्वितीयमें कम अंतर रहता था तथा द्वितीय और प्रथममें अधिक।

था। कभी कभी तो केवल चार महीने दिया जाता था और कभी कभी कई महीनेका वेतन बकाया भी रह जाता था।

वेतनमें नकद और जागीर दोनों दी जाती थी। विशेष कर पदाति और तोपखानेके सिपाहियों और अफसरों को नकद ही दिया जाता था। जिनको जागीरोंमें वेतन दिया जाता था उन्हें प्रायः दूरस्थ और अर्धविजित प्रदेशोंमें जागीर मिलती थी। केवल वह मंसबदार जो बड़े भारी 'अमीर' होते थे अथवा सम्राट् के विशेष कृपापात्र होते थे उन्हें ही निकटस्थ स्थानोंमें जागीरें मिल सकती थीं। वेतन कभी कभी अग्रिम भी दे दिया जाता था और ऋण भी दिया जाता था पर मिलता बहुत कम था। * इन ऋणों, अग्रिम वेतनों और पुरस्कारोंको "मुसाइत" कहते थे। 'तनख्वाहें इनाम' शब्द भी प्रचलित था। वेतनोंमेंसे† कसूरे दोदामी, खर्चे सिक्का, अय्यामें हिलाली, हिस्सये जिस, खुराके दवामके लिए कुछ कट भी जाता था। तफावते अस्प (घोड़ोंकी कमी), तफावते सिलाह (अस्त्रोंकी) कमी और तफावते तावीनान (सैनिकोंमें

---

* अग्रिम वेतन और ऋण "मुतालिबा" की मदमें, रखा जाता था।

† कसूरे दोदामी =दो दामका अंश।
खर्चे सिक्का=सिक्का ढालनेका व्यय।
अय्या मेहिलाली=चन्द्रमाके वृद्धिके दिन।
हिस्ससाये जिंस= जिंसका हिस्सा।
खुराके दव्वाव=पशुओंके लिये खाद्य।

कनी) के लिए जुर्माना होता था। तथा सेनाके वेतनोंमें ग़ैर-हाज़िरी, बीमारी, रुख़सत, फ़रारी (त्याग), बरतरफ़ी (त्याग पत्र देना), पेंशन और फ़ौत होने (मृत्यु) का भी प्रभाव स्वभावतः पड़ता था।

प्राय: सर्वदा और सभी देशोंमें सम्मान सूचक उपाधियों और विशिष्टताओंकी प्रथा रही है। मुग़ल साम्राज्यमें भी ऐसी विशिष्टताओंकी अधिकता थी। मुग़ल साम्राज्यमें (१) उपाधियाँ, ( ) सम्मान वस्त्र (ख़िलअत), (३) द्रव्य और अन्य पदार्थोंका पुरस्कार, (४) नक्कारा, (५) कूर (या-माही-ओ-मरातिब या पञ्जा) का अधिकार इत्यादि देनेकी प्रथा थी। अस्तु, उपाधियों और पुरस्कारोंके अतिरिक्त निम्नलिखित विशिष्टताओंको भी देनेकी चाल थी। (१) साधारण झंडा ले चलनेका अधिकार, (२) याकपुच्छ झंडेका अधिकार, (३) नक्कारेका प्रयोग और नौबतका अधिकार, (४) माही ओ मरातिबका अधिकार, (५) सुनहरी और मोतीदार पालकी प्रयोग करनेका अधिकार। परन्तु यह सब कुछ सम्राट्के मनकी प्रवृत्तिका खेल था यथा

"ब यक नुक़ते महरम मुजरिम शवद"

अर्थात् एकही विन्दुसे महरम (विश्वस्त व्यक्ति) मुजरिम (दोषी) बन जाता है।

अब सेनाके भिन्न भिन्न विभागोंका वर्णन करनेके पहले उचित होगा कि सेनामें प्रवेश इत्यादिका भी सूक्ष्म वृत्तान्त दे दिया जाय। जब किसी व्यक्तिको सेनामें नौकरी करनेकी इच्छा होती थी तब उसे सबसे पहले एक सहायक ढूँढना पड़ता था। वह यथा सम्भव अपने ही देश अथवा जातिके

सरदारोंमें से मिल जाता था। * मुग़ल मुग़लोंका, फ़ारसी फ़ारसियोंका, अफगान अफ़गानोंका और राजपूत राजपूतोंका अनुचर बनता था। समय समयपर अफ़सर लोग उन देशोंके आदमियोंको जिनसे उनका सम्बन्ध रहता था बहुत से रुपये इत्यादि देकर अपने सैन्यमें भरती होनेका प्रलोभन दिया करते थे। सैनिक सेवाका अभिलाषी व्यक्ति जब सहायक पा जाता था तब उसकी सहायतासे मीरबख्शी तक पहुँचनेकी चेष्टा करता था। क्योंकि मीरबख्शी ही नये आदमियोंको सम्राट् के सामने उपस्थित करता था और बहुत कुछ उसीके कथनानुसार होता भी था। मीरबख्शीके अतिरिक्त अन्य भी कई बख्शी हुआ करते थे, जिनके हाथमें सैनकोंके सम्बन्धका कुछ न कुछ कार्य प्रायः अवश्य रहता था। बख्शी किसी नियत दिनको सम्राट्के सामने नौकरी

---

* मावरुन्नहर सरदार केवल मुग़ल भरती करता था, ईरानी सरदार एक तिहाई मुगल रख सकता था और शेष सैय्यद और शेख भरती करता था। अगर वह अफ़ग़ानों और राजपूतोंको लेना चाहता था तो अपने सम्पूर्ण सैन्यका $\frac{1}{6}$ अफ़ग़ान और $\frac{1}{5}$ राजपूत भरती कर सकता था। सैय्यद या शेख़ सरदार अपनी ही जातिके लोगोंको भरती करते थे या अपने सैन्यके $\frac{1}{6}$ अफ़ग़ान भी रख सकते थे। तथा स्वयम् अफ़ग़ान लोग आधे अफ़ग़ान और आधे मुग़ल और शेखजादे रख सकते थे। राजपूत लोग अपने सम्पूर्ण सैन्यमें राजपूतोंको रखते थे। खुशहाल चन्दके अनुसार मुग़लोंके यहाँ भरतीका इसी प्रकार नियम था।

चाहनेवालोंका लिखित विवरण ('हक़ीक़त') उपस्थित करता था। इस पर्चेके ऊपर सम्राट्की आज्ञा लिखी जाती थी और थोड़े दिन बाद नौकरी चाहनेवालेको स्वयं उपस्थित होना पड़ता था और तब अंतिम आज्ञा जारी होती थी। इसके बाद बख़्शीके दफ़्तरसे एक ('तसदीक़') प्रमाण पत्र निकाला जाता था, जिसपर बख़्शी अपनी आज्ञा (हुक्म) लिखता था। तसदीक़ वाकियानिगारके दफ्तरमें जाती थी। वहाँ उसका विवरण एक प्रतिलिपिके साथ रख लिया जाता था, जिसे 'याद्दाश्त' कहते थे। आईनमें एक और पर्चा ('काग़ज़') का नाम (ब्लाकमैन प्रथम २५८) मिलता है जिसे 'तालिक़ा' कहते थे। इसमें सम्भवतः याद्दाश्तका संक्षिप्त रूप रहता था। यह तालिका नये नौकरके अफ़सरके लिए सरकारी आज्ञा-पत्र समझा जाता था। इस प्रकार सैनिक कर्मचारियोंकी नियुक्तिपर सम्राट् बड़ा व्यवस्थित ध्यान रखता था। लिखा है कि सम्राट् देखकर ही बतला सकता था कि कौन मनुष्य सैनिक है और कौन वणिक्। वह आकृति देखकर प्रकृतिका निर्णय कर सकता था। सैनिक विभागमें प्रवेश करनेके[2] अभिलाषी लोगोंकी सम्राट् स्वयं परीक्षा लेता था—इससे अकबरकी राजनीतिक और सैनिक श्रेष्ठता ज्ञात होती है।

---

२ सम्राट् के समयमें ४१५ मंसबदारोंमें ५७ हिन्दू थे। बदाऊनीने लिखा है कि "बहुत चेष्टा करनेपर भी सम्राट्को हिंदू प्राप्त नहीं हुए हैं। तथापि वह शीघ्र ही सेनाको तथा और सब पदोंके अर्द्धांशको हिन्दुओंसे पूर्ण कर देंगे—इसमें सन्देह नहीं है।" उस समय हिन्दू लोग वर्तमान समय की

अब देखना है कि तत्कालीन सेनामें कितने विभाग होते थे। प्राचीन हिन्दुओंकी सेना प्रायः चतुरंगिणी हुआ करती थी। हाथी, रथ, घोड़े और पैदल मुख्य विभाग थे। मुग़लोंकी सेनामें हयदलका प्राबल्य था। हाथी भी रहते थे और पैदल तो होते ही थे। रथके स्थान पर यदि तोपखानेको रख दिया जाय तो मुग़ल सेना भी एक प्रकारकी चतुरंगिणी हो जायगी। मुग़ल सेनाका रेजिमेंटोंमें विभाग नहीं था। मंसवदारोंकी अधीनतामें रहनेवाली सेनाका सूक्ष्म वर्णन किया जा चुका है। इन मंसबदारों (इनके तावीनान सहित) के अतिरिक्त "अहदी" और "अहशाम" भी होते थे। अहदी शब्दका अर्थ है अकेला, यह किसी सरदारसे सम्बन्ध नहीं करते थे, अतएव तावीगानसे भिन्न थे। सम्राट् ही इनका स्वयं स्वामी था। इनका एक अलग ही सेना नायक रहता था और बख्शी भी इनका अलग था। इसी सेनाके विषयमें[2] एक इतिहासकारने लिखा है कि "सम्राट्ने उच्चश्रेणीके लोगोंकी एक सेनाका सङ्गठन किया था। दरबारके कर्मचारी, चित्रकार, शिल्पशालाओंके अध्यक्ष प्रभृति इस दलमें रखे गये थे। उनमेंसे अनेक ५००) मासिक वेतन पाते थे। उनके ऊपर एक प्रधान अमात्य था और सम्राट् स्वयं उनके सेनापति थे। वर्तमान

तरह राजकार्यके लिए लालायित नहीं थे। दूर देशसे दिल्ली और आगरा पहुँचना भी सहज नहीं था। इस कारण हिन्दुओं की संख्यामें आशानुरूप वृद्धि नहीं हुई।

२ बंकिमचन्द्र लाहिड़ी बी० एल० प्रणीत "सम्राट् अकबर" का (बंगला) हिन्दीमें अनुवाद हो चुका है।

वालंटियर सेना इस सेनाके तुलनीय है।" इन अहदियोंका वेतन स्मिथके अनुसार कभी कभी ५००) मासिकसे भी अधिक होता था पर वेतन केवल ९॥ महीने दिया जाता था। हार्नने अहदी सैन्यको शरीर रक्षक सैन्य (Body guard) के रूपमें माना है। लेकिन इर्विनने "वालाशाहियोंको इस नाम से पुकारा है। वालाशाहियोंमें प्रायः यह लोग रहा करते थे, जो नवयुवकावस्थामें ही (जब सम्राट् केवल राजकुमार रहता था) सम्राट्की सेवा इत्यादि कर चुके थे। वह बड़े विश्वस्त होते थे। यसावलों (सशस्त्र भवन रक्षकों) का भी कार्य वालाशाहियोंसे मिलता जुलता था।

'अहशाम में उत्तर-मुग़लकालके ग्रन्थकारोंने सेनासे सम्बन्ध रखनेवाले उन सभी आदमियोंका वर्णन किया है जो मंसबदार, तावीनान या अहदी न थे। अहशाममें पैदल, तोपखाना, नौकर चाकर, पुलिस और कारीगर इत्यादि सभी सम्मिलित थे। इर्विनने तोपखानेको अधिक महत्वका समझकर एक अलग परिच्छेदमें वर्णन किया है। आईनमें 'पियादगान' शीर्षक एक अध्याय है जो साधारणतः अहशामका ही द्योतक है। इस शीर्षकमें अकबरके १२००० बन्दूकची (Matchlockmen) भी सम्मिलित थे और वास्तवमें इस विभागमें यही असली सैनिक थे। इनके वाद दरवान, भवनरक्षक, पत्र वाहक, गुप्तचर, खड्गी (तलवर वाले आदमी) कुश्ती लड़नेवाले, दास, पालकी वाहक, वढ़ई और जलवाहक इत्यादि सभी इस विभागमें सम्मिलित थे। 'अहशाम' शीर्षक परिच्छेदमें इर्विनने पदाति, नागा, अलीगोल, सिलहपोश, नाजिक, पठावाज़ ढलैत, बीर वालायें, सिहवंदी वरकंदाज़ और वक्सरिया,

बुंदेला, अरब, गोलंदाज़ देगंदाज़, बानदार, भील मेवाती, करनाटकी, काला पियादा, राउत, वरगी मुग़ल, फिरंगी और कारीगर इत्यादिका विवरण दिया है। परन्तु यह सभी विशेषतः अट्ठारहवीं शताब्दीमें अधिक थे। इर्विनका यह विवरण अकबरके समयका नहीं है। पर इसी परिच्छेदमें इर्विनने अकबरके बन्दूकचियोंका वेतन विषयक एक चक्र दिया है जिसे उद्धृत करना उचित होगा।

	प्रथम श्रेणी			द्वितीय श्रेणी			तृतीय श्रेणी			चतुर्थ श्रेणी			पंचम श्रेणी		
मिर्दहा	७।।)			७)			६।।।)			६।।)					
	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ
अन्य लोग	६।)	६)	५।।।)	५।।)	५।)	५)	४।।।)	४।।,	४।)	४)	३।।।)	३।।)	३।)	३)	२।।।)

इस प्रकार मुग़लोंके (मुख्यतः अकबरी) सेनाको सूक्ष्म वर्णनके बाद उस सेना विषयक एक चक्र दे देना अच्छा होगा जिससे यह विषय कुछ अधिक स्पष्ट होजायगा।

सेना

- (१) [1]मंसबदारी सरकारी सेना, सेना जो मंसबदारों के अधीन थी
- (२) मित्रदल अर्थात् रक्षित राज्यों की सेना (इसे भी मंसबदारी सेना कहेंगे)
- (३) अहदी
- पियादगान या अहशाम
  - बन्दूकची तथा सैनिक सिपाही
  - गुमचर इत्यादि
  - दरबान और नौकर चाकर इत्यादि
  - कारीगर इत्यादि

---

[1]मंसबदारोंके अधीन रहनेवाली इन तीनों प्रकारकी सेनाओंके अतिरिक्त अन्य विभागोंके लिए पृष्ठ ७१ का चक्र देखिये। मंसबदार दो प्रकारके थे। एक वह राजा और बादशाह जिन्हें अकबरने जीतकर मंसब दिया था और दूसरे वह जो धीरे धीरे सरकारी नौकरी द्वारा पदोन्नतिको प्राप्त हुए।

किस सेनामें कितना विश्वास रखा जा सकता है यह जाननेके लिए शुक्राचार्यवाला विभाग (सम्मेलन पत्रिका भाग ६ अङ्क ३ में 'प्राचीन भारतमें सैनिक योजना' शीर्षक मेरा लेख देखिये) मुगलोंकी सेना (और अकबरी सेना) के लिए भी ठीक जँचता है। वह चक्र नीचे देकर इस परिच्छेद को समाप्त करेंगे।

सेना
- जो बहुत दिनों तक राजा के अधीन रह चुकी हो। (१)
- जो थोड़े समय तक उसके अधीन रही हो।
  - शूर
    - अभ्यस्त (२)
    - अनभ्यस्त (३)
  - शौर्यहीन
    - जो शत्रु को छोड़ पक्षमें आ गई हो (५)
    - जिसे राजाने बहका कर अपनी ओर कर लिया हो (६)
- मित्रदल की (४)
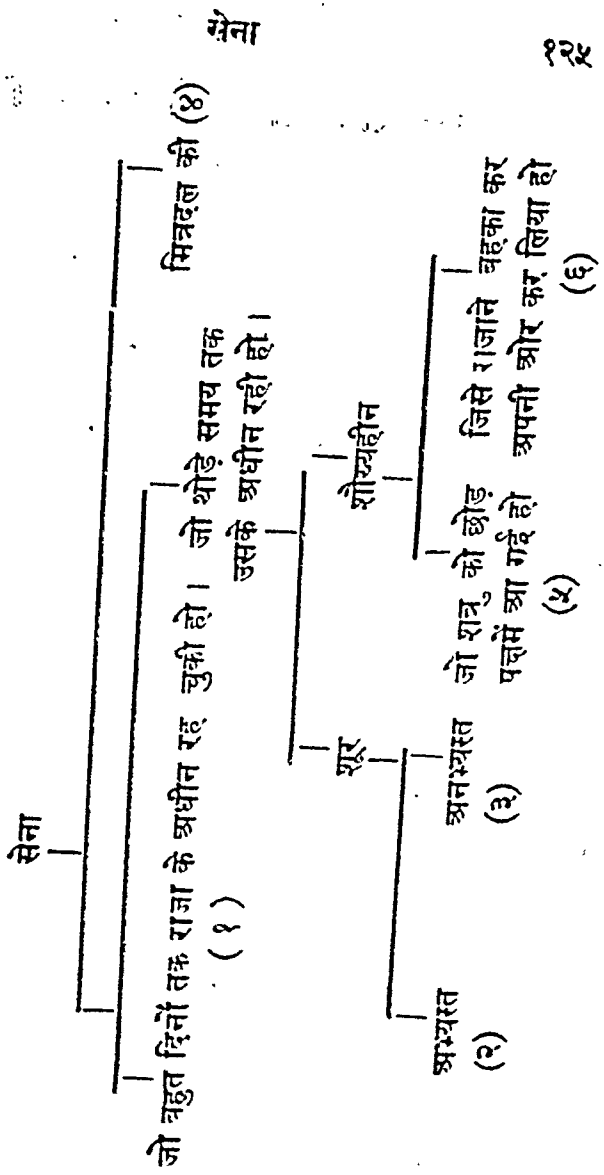
६—सेना सम्बन्धी अन्यान्य बातें

सेनाकी संख्या—प्राचीन हिन्दू सेनाकी संख्या निश्चित करनेमें इतनी कठिनाई नहीं पड़ती जितनी मुग़ल सेनाके विषयमें होती है। इसका कारण यह है कि हिन्दू सेनामें असैनिक दरबान नौकरकी गणना नहीं होती थी। उसमें प्रायः लड़ने योग्य ही लोग रहते थे। उसकी गणना प्रायः अक्षौहिणियोंमें* होती थी। और जहाँ कहीं संख्याका विषय मिलता है (हिन्दू, यूनानी और अन्य देशी विदेशी लेखों द्वारा) वहाँ पूरी + सेनाकी संख्याका निश्चय करना कठिन नहीं है। पर मुग़ल सेनामें सैनिकों और असैनिकोंका ऐसा मिश्रण था कि सेनाकी असली शक्तिका पता लगाना कठिन है। फिर सेनाकी संख्यामें अन्तर भी बराबर होता रहा। डाक्टर हार्न ने मुग़ल सेनाकी संख्या भिन्न भिन्न समयोंके लिए निकाली है; पर उनके अंकोंपर पूरा विश्वास नहीं करना चाहिये। तथापि डाक्टर हार्नकी संख्याओंका संक्षिप्त चक्र दे देना अनुचित न होगा। इस चक्र

---

* अक्षौहिणी=२१८७० गज, २१८७० रथ, ६५६१० हय, १०९३५० पैदल।

+ राजानंदकी सेनामें (मगध) २००००० पैदल, २०००० हय, २००० रथ, ४००० गज; सिकंदरके समयमें पाटलिपुत्र की सेनामें (मेगास्थनीज़के समयमें) ६०००० पैदल, ३०००० हय, ८००० गज; कलिंगकी सेनामें ६०००० पैदल, १०००० हय, ७०० गज थे। शात्रुक्त सेनामें ५०००० पैदल, ४००० हय, ७०० गज; अन्ध्र सेनामें १००००० पैदल, २००० हय, १००० गज थे।

से अकबरी सेनाकी उसके वंशजोंकी सेनासे तुलना करनेमें सहायता मिलेगी।

मुगल सेनाकी अनुमित संख्यायें

शासनकाल	हयदल	बन्दूकची और पैदल	तोप-खाना	प्रमाण
अकबर	१२०००	१२०००	१०००	ब्लाकमैन प्र० २४६
,,	३८४७५८	३८७७५५७	—	*आईने अकबरी
				बादशाह नामा द्वितीय
शाहजहाँ	२०००००	४००००	—	७१५ आईन प्रथम २४४
औरंगजेब	२४००००	१५०००	—	बर्नियर
,,	३०००००	६०००००	—	कैट्रू
मुहम्मदशाह	२०००००	८००००	—	रुस्तमअलीका तारीखे हिंदी

सेना के पशु—सम्राट् अकबरकी सेनाका सब से महत्व-पूर्ण भाग हयदल था। उसको अश्वशालामें ५०००—६००० अत्युत्कृष्ट घोड़े सदैव रहा करते थे। उसने अरब, फारस, तुर्क, काबुल और काशमीर से सर्वोत्कृष्ट घोड़े मँगाये थे। वह एक अत्युत्कृष्ट घोड़ेका मूल्य ५०० स्वर्ण मुद्रा तक प्रदान करता था। उसने आज्ञा दे दी[3] कि कोई घोड़ा भारतवर्ष से बाहर न जाने पावे इसके लिए उसने कोतवाल नियुक्त कर दिये थे। पर सम्राट्की सेनाका

[3] इन संख्याओंमें सेनाके अतिरिक्त प्रान्तोंमें जमीदारोंके सेना सम्बन्धी और नौकर चाकर इत्यादि भी सम्मिलित हैं।

काम केवल सरकारी घोड़ों से नहीं चलता था। जैसा पिछले परिच्छेदमें लिख आये हैं मंसबदारोंको घोड़ोंका भी प्रबन्ध करना पड़ता था। जिन सैनिकोंको यह लोग भरती करते थे उनके घोड़े और साज सामानका सरकारको प्रायः प्रबंध नहीं करना पड़ता था। इसका या तो सैनिक स्वयं प्रबन्ध करता था अथवा मंसबदार देता था। वर्तमान समय में कुछ अश्वारोही सेना सैन्यदलके आगे और दूर-दूर चलकर शत्रुके आकस्मिक आक्रमणकी सम्भावना निवारण करती है और शत्रुका सन्धान पाते ही संवाद देकर पश्चाद्वर्ती सेना को सतर्क करती है। सम्राट् अकबर ने भी अपनी सेनामें यही प्रथा चलायी थी। किसी किसी अभियानमें मुगल सेना विजनवन भूमिका परिष्कार करके उसमें राजपथ निर्माण करती हुई शत्रु के अनुसन्धानमें अग्रसर हुई है। हयदल विषयक कुछ बातोंका विवरण गत परिच्छेदमें दिया जा चुका है (दागप्रथाके लिये देखिये पृष्ट ११३)। इस दलमें कई प्रकारके घोड़े रहते थे। सरकारी अश्वशाला में देश विदेशके सर्वोत्कृष्ट घोड़े रहते ही थे। मंसबदारोंको भी कई प्रकारके घोड़े परिदर्शनके समय दिखलाने पड़ते थे। आईन (प्रथम २३३) में सात प्रकारके अश्वोंका वर्णन किया है (१) अरबी (२) फ़ारसी, (३) मुजन्ना, (४) तुर्की, (५) याबू, (६) ताज़ी, (७) जंगला। मुजन्ना फ़ारसी घोड़ोंसे मिलता जुलता था। याबू सम्भवतः उन्हीं घोड़ोंका नाम था, जिन्हें आजकल काबुली कहते हैं। ताज़ी और जंगली हिन्दुस्तानी घोड़े थे, जिनमें से पहला दूसरे से अच्छा होता था। आईनमें मंसबदारोंके भिन्न भिन्न प्रकारके अश्वोंकी संख्या दी हुई है।

अकबरके समयमें हाथी अत्यंत उपकारी थे। वह बड़ी बड़ी तोपोंको रणक्षेत्रमें ले जाते थे। सैनिकगण बन्दूकें लेकर उनके ऊपर बैठते और शत्रुसंहार करते थे। छोटी छोटी तोपें उनकी पीठोंपरसे गोले बरसाती थीं। वह + जिरहसे मढ़ी हुई सूंड़ोंमें बड़ी बड़ी तलवारें लेकर उनसे विपत्तियोंका विनाश करते थे। सम्राट् मातङ्गोंको तोपध्वनि और अग्निसे विचलित न होने और अस्त्र-संचालन करनेकी शिक्षा देता था। तत्कालीन सेनामें हाथीसे दो लाभ विशेष थे। एक तो क़िलोंके फाटकोंको तोड़नेमें हाथीसे बड़ी सहायता मिलती थी और दूसरे, हाथीपर बैठा हुआ सेनानायक सैनिकोंको आसानीसे दिखलायी पड़ता था। उन दिनों युद्धोंका अंतिम निर्णय नेताके ही भाग्यपर रहता था। यदि वह स्थिर रहा तो सेना भी स्थिर रहती थी और यदि वह गिरा तो सेना भी भाग निकलती थी। इससे सेनानायकको हाथीके ऊँची पीठ पर बैठनेकी आवश्यकता पड़ती थी। परन्तु गजसेनासे हानि भी बहुत होती थी। भारतवर्षका भाग्य निर्णय अनेक बार हाथी ही द्वारा हुआ है। हाथीका प्रयोग बादको सेनाके

+ गज कवचको पाखर कहते थे (आईन प्रथम १२६)। सिर और सूंड़के लिए अलग अलग टुकड़े होते थे। हाथियों-के साज का विस्तारपूर्वक आईन (प्र० १२५-३०) में वर्णन किया गया है। युद्धके दिन हाथीके ऊपर एक अम्बारी रख दी जाती थीं जिससे बैठनेवालेके सिर और कंधोंको छोड़कर सब अंग सुरक्षित रहते थे। अम्बारी और हौदेमें अधिक अंतर नहीं है।

सामान ढोनेके लिए भी होता था। परिदर्शनके लिये तो हाथीका सदा प्रयोग होता था। उस समय (कभी कभी आज कल भी) हाथियोंके+ नाम भी हुआ करते थे। अकबर नामेमें कई नाम दिये हैं। अकबरके एक प्रसिद्ध हाथीका नाम आसमानशिकोह था। जिन हाथियोंपर सम्राट् स्वयं चढ़ता था उन्हें "खास" कहते थे। और दूसरे सब हाथी दस, बीस, या तीसके समूहों (हलकः) में बँटे थे। अकबरके बाद सवारीके सभी हाथियोंको ख़ास और लद्दू हाथियोंको हलकः कहते थे। ५०० से ७००० तकके मंसबदारको अकबरके समयमें एक सवारीका हाथी तथा १००,००० दाम वेतनपर पांच लद्दू हाथी रखने पड़ते थे। यह हाथी भी संभवतः सम्राट्के ही थे और जहाँ तक मालूम होता है इनका चारा सरकारकी ओरसे दिया जाता था। लिखा है कि सम्राट्के घोड़े और हाथी *विविध प्रकार के मणिमुक्ता खचित सोनेके आभूषणोंको परिधान करके सम्राट् को वहन करते थे। उसके घोड़ेकी ज़ीन मणिमुक्ता विखचित सोनेकी बनी हुई थी। वह अश्व अथवा गज पर आरोहण करते ही उसके पालने-

---

+ नादिरशाहके हाथीका नाम 'महासुन्दर' था। दलसिंगार, औरङ्ग गज, फतह गज आदि नाम हाथियोंके होते थे।

*फ़ारसीमें हाथीके गिननेके लिए 'जंज़ीर' शब्दका उपयोग हुआ है। यथा सौ हाथियोंके लिए सौ जंज़ीरे फ़ील या फ़ील-ज़ंजीर १०० लिखा जाता है। इसी प्रकार मोतीके लिए 'दाना' घोड़ेके लिए 'रास', ढलके 'दस्त' और ईंटोंके लिए 'क़ालिब' का प्रयोग होता था।

वालेको पुरस्कार देता था। घोड़े और हाथियोंके अतिरिक्त सम्राट्के पास असंख्य ऊँट और खच्चर थे। सैनिक लोग बन्दूकें लेकर ऊँटों पर सवार होकर शत्रुका विनाश करते थे। साज-सामानके ढोनेमें इनका अधिक उपयोग होता था। अकबर उत्कृष्ट ऊँटका मूल्य १२ स्वर्ण मुद्रा तक देता था। हाथी घोड़े प्रभृतिको निर्दिष्ट आहार नियमित रूपसे मिलता है या नहीं इसको भी वह स्वयम् देखता था। सम्राट्ने इस नियमको अच्छी तरह समझ लिया था कि उत्कृष्ट जीवके संयोगसे अत्युत्कृष्ट जीव पैदा हो सकता है। इस उपायका अवलम्बन करके उसने भारतके घोड़े, खच्चर, ऊँट प्रभृति जानवरोंकी जाति की बड़ी उन्नति की थी।*

रणनौकाएँ

सम्राट्की सेनाके सम्बन्धके पशुओंका वर्णन कर चुकने पर उसकी रणनौकाओंका कुछ वर्णन करना उचित होगा। जिस समय अकबर दिल्लीका शासन कर रहा था उस समय भारतीय समुद्रपर पुर्तगालियोंका एकाधिपत्य था। जो मुसल्मान मक्का जाना चाहते थे उन्हें इनसे अनुमति-पत्र लेना पड़ता था; जिस पर ईसामसीह और मरियमकी मूर्तियाँ अंकित

---

* सेना सम्बन्धी पशुओंके अतिरिक्त सम्राट् ने गौ और कबूतरकी जातिकी भी उन्नति की थी। उस समय गुजरातकी गायें बहुत बढ़िया होती थीं। बङ्गाल और दक्षिणमें भी उत्तम गायें मिलती थीं। एक एक गाय प्रतिदिन २० सेर दूध देती थीं। वह गो जातिकी उन्नतिके लिए सभीको उत्साहित करता था। उसने एक बार ५०००) में दो गायें मोल ली थीं।

रहती थी। मुसलमानोंको इसे लेना ही पड़ता था। अतएव सम्राट्ने पुर्तगालियोंसे प्रतिद्वन्द्विता करनेकी इच्छासे, उनकी रणनौकायें देखकर, उन्हींके अनुकरणसे बड़े बड़े जहाज़ तैयार कराये। समुद्रके तट पर अनेक स्थानोंपर बड़े बड़े अर्णवयान तैयार होने लगे। इलाहाबाद और लाहौरकी बनी हुई नौकायें भी वर्षाकालमें नदीकी सहायतासे समुद्रमें पहुँचने लगीं। प्रत्येक रणनौकामें बारह श्रेणीके कर्मचारी थे। जो नाविक समुद्रके ज्वार भाटेके सम्बन्धमें अभिज्ञ थे, जो जलका थाह जान सकते थे, जिन्हें वायुकी बहनेकी दिशा, समय और कारण ज्ञात था, जो तैरना जानते थे और जो स्वस्थ, परिश्रमी, क्लेशसहिष्णु और दयालु होते थे केवल वही इन जहाज़ों पर नियुक्त किये जाते थे। अध्यक्ष, कप्तान, सारं, किरानी, कर्णधार, प्रधान खलासी और साधारण खलासी आदि बारह श्रेणीके कर्मचारी जहाज़ों पर रहते थे। इनका वेतन भिन्न भिन्न बंदरोंमें भिन्न भिन्न होता था। हुगलीके निकटवर्ती सप्त ग्रामके बंदरका अध्यक्ष ४००), कप्तान २००), प्रधान खलासी १२०), साधारण खलासी ४०) और सैनिक १२) पाता था। प्रत्येक अर्णवयानमें विविध कक्षायें रहती थीं। इन कक्षाओंमें वाणिज्यकी वस्तुयें भी रहती थीं। सम्राट्के समयमें सप्तग्राम खम्भात और लाहाड़ी (वर्तमान कराचीके पास) इत्यादि बहुतसे स्थानोंमें बन्दर थे। यह जहाज़ "पुर्तगाल, मलाका और सुमात्रा द्वीपपुञ्ज और पेगु प्रभृति स्थानोंमें आते जाते थे। सम्राट्ने ऐसे बहुसंख्यक पोत बनवाये थे।" उसने बहुत से बन्दरोंकी उन्नति भी की थी [२] (मीर बहरका विवरण

---

[२] देखिये श्रीयुक्त बङ्किमचन्द्र लाहिड़ीका 'सम्राट् अकबर'

देखिये पृष्ठ ९६) उसके यहाँ एक मीर बहर भी होता था जो नदियोंमें पुल इत्यादि बनवानेका आकस्मिक कार्य भी करता था।

दुर्ग

हिन्दुओंकी राजनीतिक पुस्तकोंमें ६ प्रकारके दुर्गों की गणना की गई है।

यथा—"धनुदुर्गं महीदुर्गं अब्दुर्गं वार्त्तमेवच। [२]
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समावृत्य वसेत्पुरम्॥"

यह प्राचीन सिद्धान्त भारतके मध्यकालीन दुर्गों में भी पाया जाता है। अग्नि पुराणकी यह शिक्षा कि दुर्ग पहाड़ बन, [३] मरुस्थल या मैदानमें बनाने चाहिये" भारतके मध्यकालीन युद्ध विशारदोंको भी मान्य थी÷। अकबरने भी नाना स्थानोंमें, खाइयों से परिवेष्टित दुर्ग बनवाये थे। उनमेंसे अटक, आगरा और इलाहाबादके दुर्ग प्रसिद्ध हैं। ग्वालियर, अजमेर, चित्तौड़, असीरगढ़, सूरत, चुनार, रोहतासगढ़ और पुरानी दिल्लीका दुर्ग इत्यादि उसके अधिकारमें थे। फिज़-

---

[२] हिन्दू दुर्ग सेनाका विवरण "प्राचीन भारतमें सैनिक योजना" शीर्षक मेरे लेखमें मिलेगा जो सम्मेलन पत्रिका भाग ६ अङ्क ३-४ में प्रकाशित हुआ है।

[३] बहुत से दुर्गोंके चतुर्दिक् अगम्य बांसका जङ्गल रहता था। अब तक इस देशके बहुत से ग्रामोंके किनारे किनारे घने बांस मिलते हैं, परंतु धीरे धीरे इनका नाश होता जा रहा है।

÷ इर्विनमें दुर्ग और परिरोध विषयक दोनों परिच्छेद बड़े ही रोचक हैं।

क्लेरेंसने लिखा है कि "भारतीय लोग अपने दुर्गोंकी रक्षामें बड़ी वीरता और साहस दिखलाते हैं। और इस विषयमें उन फ़िरङ्गियों से भिन्न हैं जो यह समझते हैं, कि दीवाल फूट जाने पर आत्मसमर्पण कर देना उचित है। परन्तु यहाँ पर (भारतमें) सभी लोग एकके साथ एक करके लड़ना चाहते हैं और दीवालके फूट जानेपर यह समझते हैं कि अब शत्रुके साथ तलवार और कटारी से लड़नेका अच्छा अवसर आ-गया है।" इर्विन ने साबात शब्दका अर्थ ढूँढ़ने में कई पृष्ठ (३७२--७) लगा दिये हैं और अन्तमें उनका अनुमान है कि अकबरने चित्तौड़में तीन चीजोंका प्रयोग किया था—(१) साबात अर्थात् लम्बी और गहरी खाई, (२) तूरः अर्थात् काम करनेवालोंकी रक्षार्थ संचलनशील ढालें और (३) सीबा अर्थात् दीवालोंके टक्करका एक ऊँचा निर्माण। पर उन दिनोंकी तोपोंसे किलेकी दीवाल फोड़ना कठिन था—प्रायः हाथियोंसे ही फाटकको तुड़वाकर प्रवेश किया जाता था। उन दिनों सीढ़ियोंसे भी चढ़ जानेकी रीतिका अवलम्बन होता था। (नरदुबान) प्रतिरोधवाले परिच्छेद-में इर्विनने दुर्गसेनाका जो चित्र खींचा है उसे पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उस समय जब इस देशके शक्ति वृक्षमें बिल्कुल खोखला ही खोखला था, हिन्दुस्तानी लोग अंग्रेजों द्वारा दुर्गमें प्रतिरोध किये जानेपर निराशताकी दशामें रात-को भाग जाना अच्छा समझते थे पर आत्मसमर्पण करना उन्हें नहीं सूझता था। (इर्विन २८४)। इसीसे समझ सकते कि अकबरके समयमें दुर्गसेनाकी कैसी स्थिति रही होगी। दुर्गसेना आत्मसमर्पण बड़ी कठिनाईसे करती थी। रसदके

अभावसे भूखों मरनेका दुर्गसेनाको अभ्याससा हो गया था। अस्तु कहनेका तात्पर्य यह है कि दुर्गसेना चाहे सम्राट्की रही हो या उसके शत्रुपक्षकी दोनोंमें अद्भुत शौर्य और साहस होता था।

अस्त्रशस्त्र

* निम्न लिखित पांच विभागोंमें समस्त अस्त्र-शस्त्र आ जाते हैं:—

(१) यन्त्रमुक्त, (२) हस्तमुक्त, (३) मुक्तामुक्त, (४) जो फेंके नहीं जाते थे जैसे खड्ग इत्यादि, (५) स्वाभाविक हथियार जैसे घूंसा आदि। मध्यकालीन भारतके भी अस्त्र-शस्त्रोंको इन्हीं पांच भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। सम्राट अकबरने सैकड़ों शिल्पशालाएँ स्थापित की थीं, जिनमें उत्कृष्ट तोप, बन्दूक, बारूद, गोली, बर्छा, तलवार, ज़िरह, ढाल, इत्यादि युद्धोपकरण बनाये जाते थे। सम्राट्की शिल्पशालाओंमें बारह बारह मनका गोला चलानेवाली बड़ी बड़ी तोपें भी निर्मित होती थीं। बहुत से हाथी और सहस्रों बैल एक एक तोपको खींचते थे। उस समय तीस तीस मनका लोहेका गोला बहुत दूर तक फेंकने वाली [२] तोपें भी तैयार होती थीं। बर्नियरने अकबरके

---

* सम्मेलन पत्रिका भाग ६, अंक ४

[२] मेनिस्कीने लिखा है कि तोपोंका आविष्कार पहले पहल चीनमें हुआ। वहींसे तोपविद्या भारतको मिली। उसका कहना है (और उसका दिया हुआ प्रमाण मान्य भी जँचता है) कि तोपका आविष्कार पहले पहल जर्मनीमें नहीं हुआ था, जैसा साधारण लोगोंका विश्वास है। (देखिये (Manusci's Storia de Mogol)

पचास वर्ष बाद लिखा है कि 'भारतसे बढ़िया बन्दूकें यूरोपमें बनती हैं या नहीं–इसमें सन्देह हैं'। सम्राट्ने अपनी प्रतिभाके बलसे बन्दूक़ और तोपके बनवानेमें बड़ी उन्नति की थी। उसके पास एक तोप ऐसी थी जिसके खंड खंड कर दिये जाते थे और युद्धके समय सब खंड बड़ी सरलतासे संयुक्त कर दिये जाते थे। उसने एक यन्त्र ऐसा बनवाया था जिससे सत्रह तोपोंमें एक मुहूर्तमें अग्नि दे दी जाती थी और वह उसकी सहायतासे एक ही साथ आग और गोले बरसाया करती थीं। उसने एक और भी यन्त्र निर्माण कराया था जिससे १६ बन्दूकें एक ही साथ एक ही आदमी द्वारा साफ़ की जा सकती थीं [3]। लेकिन डाक्टर स्मिथका कहना है (अकबर पृ० ३६६) कि इतना अधिक यत्न करनेपर भी वह एक उत्तम और प्रभावशाली तोपखाना [4] रखनेमें सफल नहीं हुआ।' अस्तु, तोप न तो यूरोपका अनुकरण था और न भारतके लिए कोई नवीन पदार्थ था। अकबरने इस विषयमें उन्नति अधिक की थी पर मुसलमानोंके पूर्व भी इसका अभाव नहीं था। चंदने बारहवीं शताब्दीके विषयमें (पृथ्वीराज रायसा २५) लिखा है कि—

---

[3] उसने एक घोड़ा गाड़ी भी तैयार करायी थी। जिससे अन्न कटाईका काम होता था। इन बातोंसे मालूम होता है कि सम्राट्में यन्त्र विद्याकी बड़ी प्रतिभा थी।

[4] इर्विनने मुग़ल तोपखानेका ४७ पृष्ठोंमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

"नृप पग नगर छूटे अराब* ।
कोटह कंगर चढि चढि सिताब ॥
जबूर तोप छूटहि झनंकि ।
दस कोश जाय गोला भनंकि ॥
सिरदार भार बाराह रोह ।
लंभी अभंग बर हनै कोह ॥"

अतएव इर्विनका यह कहना कि तोपकी उन्नति भारतमें यूरोपके आधार पर हुई ठीक नहीं जँचता । भारतने इसे यूरोपसे नहीं लिया वरन् [जैसा मैकरिची महाशयने Gypsies of India में पृ० २०७ पर लिखा है] हिन्दुस्तानी जिप्सियों अर्थात् जाटोंसे सीखकर तोपका प्रयोग यूरोपमें होने लगा । यूरोपने इस विषयमें अद्भुत उन्नति करली है; पर † प्राचीन और मध्यकालीन भारतके लिए तोप अपरिचित न थी । तथापि सम्राट् अकबरके विषयमें भी जिसने तोपोंमें बहुत उन्नति की थी यह किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता कि उसका तोपखाना विशेष उन्नत अथवा प्रभावयुक्त न था ।

---

* अराब एक प्रकारकी बन्दूक थी पर इस शब्दका प्रयोग बन्दूकवाहक गाड़ीके लिए भी हुआ है । नीचेके पद्योंमें 'अराब' बन्दूकके भेद विशेषके ही अर्थमें प्रयुक्त हुआ है । यथा —कड़ कड़ कड़ाकड़ सों अरावे छुटे तट पकनि टापकी (श्रीधर मुरलीधर १३१७वीं पंक्ति) और गोली गोला छुटत अरबे । (लालका छत्र प्रकाश पृ० २६७)

† सम्मेलन पत्रिका वाला लेख देखिये ।

आईन (प्रथम ११३) में तुफ़ंग या बन्दूक़की उन्नतिके लिए अकबरकी बड़ी प्रशंसाकी गई है, परन्तु तो भी कमान और तीरके सामने तुफ़ंगको लोग हीन समझते थे। अकबरके समयमें तेग़ (शमशेर या तलवार) कई तरहका होता था। अन्य अस्त्र शस्त्रोंके भी कई प्रकार हुआ करते थे। शमशेर, धूप, खाण्डा, सिरोही, पट्टा और गुप्ती, इत्यादि तलवारोंके तथा चिरवा, तिलवा और खेरा इत्यादि ढालोंके भेद थे। शशवर, पियाज़ी पुश्तखार और खारे मांही इत्यादि गुर्ज़ों अर्थात् एक प्रकारके गदाओंमें तथा नेज़ा (भाला), बर्छा, सांक, सैथी, सिलारा इत्यादि असनानमें गिनाये जा सकते हैं। कटारी, जमधर, खञ्जर, जमखाक, बांक, नरसिंह माथ और अन्य कई प्रकारके छोटे मोटे शस्त्रोंका प्रयोग अकबरके समयमें होता था। परन्तु चाहे तोप हो या बन्दूक़, चाहे तलवार हो या नेज़ा और चाहे ढाल हो या खञ्जर किसी अस्त्रशस्त्रकी धाक रिसालाये-तीर-ओ-कमानके सामने नहीं जम सकती थी। खंजरसे अच्छी तलवार होती थी, तलवारसे अच्छा बरछा होता था और बरछेसे अच्छा तीर-ओ-कमान होती थी। मुग़ल तीरन्दाज़ अपने *अस्त्रमें बड़े प्रवीण होते थे। जितने समयमें

* अन्य [illegible]त्र-शस्त्रोंके साथ क़िलोंमें कभी कभी मध्यकालीन सम[illegible] लोग हांडी और हुक्केका भी उपयोग अस्त्रोंके तौर पर करते थे यथा:—

उट्टन मारू घनी पड़ाव, सट्टी मुख मोड़े।
हांड़ी हुक्के अग्गी दे, गढ़ वालौं छोड़े॥

सुजान चरित (पञ्चम २४)

बन्दूक़ची दो फ़ायर भी नहीं कर पाता था उतने ही समयमें तीरंदाज़के छः तीर छूट जाते थे। तीरंदाज़ोंको ओकची भी (?) कहते थे। श्रीधर मुरलीधरने ओपची शब्दको भी इसी अर्थमें प्रयुक्त किया है (पिले ओपची, तोपची तोपो घनेरे)। तख़्श, कमाने गुरोहा, गोभन और कमथाह, इत्यादि कई प्रकार के कमान होते थे। इनके चलानेकी भी रीतियां हैं। अस्तु कमान और तीरके प्रयोगमें मुग़लोंकी और अकबरके सैनिकोंकी जितनी प्रशंसा की जाय सब थोड़ी है। जिस समय रणक्षेत्रमें 'अल्लाहो अकबर' और "दीन—दीन" की पुकार मचती थी तथा अकबर सम्राटका "या मुईन" (ऐ मेरे सहायक परमेश्वर ?) शब्द कर्णगोचर होता था उस समय शाही कमानका चलाना देखकर आश्चर्य होता था। बदाऊनी लिखता है कि

कमाने कयानी दर आमद बजह।
यके गुस्त विस्तान् यके गुस्त दह॥

एक सम्राट्की युद्ध यात्राका विवरण एक हिन्दी कविने दिया है? वह सम्राट् अकबरके विषयमें भी ठीक हो सकता है; अतएव उद्धृत करना अनुचित न होगा—

"फजिर शाहंशाह साज्यो, सकल वृन्द गयंद गाज्यो।
वजी नौवते गह गही तब, भई नौवत राबरी अब।
घोर धौंसा धुनि धकारत, "फतेह, फतेह" मानो पुकारत।
हो हू हो करनाई बाजत, शाहंशाहहिं सगुन साजत।
सगुन सों सुरनाई वाजी, सिद्धि राम करीजु साजी।
'झारूँ झाँरूँ' झाँझ झनकात, खनन लागिहि घंट 'खनखनकात॥'
फीलवार निशान झहरात मानहु अगा फतह फहरात'।
आनपत्र अनूप राजत, इन्द्रस्यों प्रभुता विराजत

झालरी मुकुता सुलच्छक, मनहु ताराछत्र सुरच्छक।
आफ़ताव बिहास केनकर, मनहु रच्छक संग दीनिअर।
तोग सुन्दर माहमाही, सगुन कि सुन्दर देत गवाही।"

इत्यादि

इन छन्दोंमें नौवत और निशान (झंडा) इत्यादिका दिग्दर्शन कर दिया है। अब खेमेंमें उतरना है। प्रत्येक सिपाही-के पास सम्भवत: तम्बू रहता था चाहे वह दो लकड़ियों पर एक चादर ही लटका कर बना लिया गया हो। यह डेरे विविध प्रकारके होते थे। यदि रावटी विल्कुल तुच्छ डेरेका काम देती थी तो शाही खेमों और डेरोंकी प्रभा देखकर चकित होना पड़ता है। सम्राट् तथा बड़े बड़े अमीरोंके पास दो दो खेमे हुआ करते थे। एक आगेके स्थानपर भेज दिया जाता था और दूसरा वर्तमान समयमें काममें आता था। इन पूर्व प्रेषित खेमोंको "पेशखेमा कहते थे। सम्राट्के खेमे प्रायः लाल रंगके होते थे और कुछ बड़े बड़े उमरा जैसे वकीले-मुतलक या जमदतुलमुल्कके पतायती (सफ़ेद और लाल धारीदार) खेमे रखनेकी अनुमति मिल गयी थी। दौलत खाना (अर्थात् शाही खेमों) के चतुर्दिक तीन गज़ ऊँचा गुलालवार (अर्थात् एक प्रकारकी लाल जाली) रहता था जिसमें दो द्वार होते थे। इसके बाहर एक खाई रहती थी और खम्भों पर लाल लाल शाही झंडे फहराते थे। सम्राट्के निवास स्थानोंके द्वार पर अथवा उनके चतुर्दिक् रक्खलवार अर्थात् तोपखाना रहता था तथा द्वार पर 'मीर आतश' का निवास स्थान था। सम्राट् अकबर सैनिक अभियानोंमें आशुकारिताके लाभ से परिचित था। और कभी कभी शाही

ख़ेमोंके विस्तृत साज सामानकी परवाह न करके (गुजरात-को सम्राट्का नव दिनमें जाना अपूर्व था) अकबरने अपनी बुद्धिमत्ता और आशुकारिताका परिचय दिया था। तथापि साधारणतः उसके भी अभियानोंमें विस्तृत ख़ेमा साथ साथ चलता था। ख़ेमेके साथ स्त्रियाँ भी जाती थीं। वह सुसज्जित हथिनियों पर जाती थीं और उनके पीछे पीछे उनकी लौंड़ियाँ ऊँटों पर रहती थीं। ख़ेमेके स्त्री समाजकी रक्षाके लिए ५०० आदमी विश्वस्त अफ़सरोंके अधीन नियत थे। कोश हाथियों और ऊँटों पर जाता था तथा और सब सामान गाड़ियों और खच्चरों पर जाता था। * आईनकार लिखता है कि 'एक खुले मैदानमें अंतःपुर (हरम) दीवाने आम और नक्क़ारखाना १५३० गज़की लम्बानमें गाड़ा जाता था। दायें, बायें और पीछे ३६० गज़ खुली भूमि रहती थी जिसमें पहरा देनेवालों-को छोड़कर दूसरा कोई नहीं प्रवेश कर सकता था। इसी भूमिके बीचमें, मध्यभागकी बाईं ओर, १०० गज़पर, मरियम मकानी, गुलबदन बेगम और अन्य पवित्र स्त्रियोंके निवास स्थान तथा राजकुमार दानियालके ख़ेमे रहते थे। दायें ओर राजकुमार सलीम और बायें ओर राजकुमार शाह मुरादका

---

* 'मीरमंज़िल' का विवरण पिछले एक परिच्छेदमें दिया जा चुका है। ख़ेमेका प्रबन्ध करनेके लिए बहुत से यसावल थे जिनके ऊपर 'मीर तुज़्ज़क' नामके अनेक अफ़सर थे। प्रधान मीर तुज़्ज़क ख़ेमेका स्थान और यात्राक्रम इत्यादि भी नियत करता था। उत्त दशामें उसे साधारणतः मीर मंज़िल कहते थे। यह एक भारी अफ़सर था।

निवास था। राजकुमारोंके डेरोंके पीछे दफ़्तर और कारखाने रखे जाते थे और उनके पीछे तीस गज़पर ख़ेमेके चारों किनारोंपर बाजारें लगती थीं। उमरा लोग ख़ेमेके बाहर चतुर्दिक् अपने अपने पदानुसार रहते थे। इतना विस्तृत और सुसज्जित ख़ेमा शान्ति समयके लिए उपयुक्त होता था। युद्धमें मुग़ल ख़ेमे से हानिकी ही सम्भावना रहती थी। ख़ेमेका यह वृहत् आयोजन मुग़ल सैनिक योजनाका सबसे भारी धब्बा था।

सामान वहन करनेके लिए हाथी, ऊँट, टट्टू, बैल, बैल-गाड़ी और कुलियोंका प्रबन्ध सरकारी तौरसे केवल सरकारी ख़ेमों और अन्य सरकारी कार्योंके लिए होता था। हर एक सिपाहीको अपना सारा प्रबन्ध आप करना पड़ता था। रसद-की भी यही दशा थी। सम्राट्के पाकालय से कुछ राजभवन-के सेवकों कुछ सशस्त्र रक्षकों बन्दूक़चियों और कारीगरोंको भोजन मिलता था। सम्राट्के व्ययसे एक ख़ैराती पाकालय भी रहता था जिसे लंगड़ खाना कहते थे। इसी प्रकार सर-दार लोग अपने अपने कृपापात्र सेवकादिका प्रबन्ध करते थे। परन्तु अन्य सभी लोग ख़ेमोंके बाज़ारोंके बनियोंसे प्रतिदिन मोल ले लेकर काम चलाया करते थे। सेनामें बेचने-के लिए वंजारे या बिंजारे लोग अपने बैलोंपर लादकर अनाज लाया करते थे। घोड़ोंके लिए घास बाहर आदमी भेजकर मँगा ली जाती थी। घास या तो टट्टुओं पर आती थी या वह आदमी स्वयं लाता था। परन्तु इनके मार्गमें शत्रु लोग रुकावटें डालनेकी चेष्टा किया करते थे। युद्धमें उत्पी-डन या अत्याचार कर युद्धका ख़र्च संग्रह करना सम्राट्की

नीति न थी। सेनाके अभियानमें अधिवासियोंकी कुछ क्षति न होने पावे—इसकी सम्राट् सदा चेष्टा करता था। सेना किसीका उत्पीडन नहीं कर सकती थी। सम्राट्‌की छावनी (खेमा) जहाँ रहती थी उसका मूल्य सेनाके साथके राज-पुरुषगण तुरन्त कृषकोंको दे देते थे। छावनीके चतुर्दिक् पहरा देनेके लिए आदमी नियुक्त रहते थे, जिससे समीपके खेतोंको हाथी घोड़े इत्यादि द्वारा हानि न पहुँचे। सम्राट् अकबरने अपने राजत्वके सातवें वर्ष में युद्धमें विजित प्रदेशके स्त्री बच्चोंको बंदी करके चिरदासतामें परिणत करने की लोमहर्षण निष्ठुर और गर्हित प्रथाको बन्द कर दिया था। सम्राट् यह नहीं चाहता था कि किसी दीन और निर्दोष व्यक्तिको उसके अथवा उसकी सेना द्वारा कोई हानि पहुँचे। सेना द्वारा खेतोंकी फ़सलको यदि हानि पहुँचती थी तो सरकारी कोशसे उसका मूल्य कृषकोंको दे दिया जाता था अथवा 'पैमाली' के नामसे भूमिकरमें उतनी कमी कर दी जाती थी।

अब अन्तमें सेनाके भिन्न भिन्न विभागोंका सूक्ष्म दिग्दर्शन कर चुकनेपर यह प्रत्यक्ष हो गया होगा कि मुग़ल सेनामें गुणोंके साथ साथ कुछ बड़े भारी दोष भी थे। डाक्टर स्मिथने लिखा है कि "अकबरकी सैनिक योजनामें ही पतन और नाशके बीज थे।" (पृ० ३६८)। इर्विनका भी यही मत है कि साम्राज्यके नाशका प्रधान कारण सैनिक हीनता ही थी। सेना में सैनिकगण अपने अपने प्राणोंकी भी उतनी चिन्ता न करते थे जितनी घोड़ोंकी। वीरोंकी कमी न थी पर संगठनमें दोष था। सैनिकोंको अपना प्रबंध आप करना पड़ता था यह भारी त्रुटि थी। ज्योंही सेना नायकका मस्तक गिरा कि सारी

सेना तितर-बितर हो गयी। इसका कारण यह था कि ठहरनेमें सैनिककी हानि अधिक थी और व्यक्तिगत लाभ कम। कुछ तो व्यक्तिगत कारणसे सैनिकोंमें उत्साहकी कमी पड़ जाती थी और फिर सैनिककी दृष्टि अपने अध्यक्ष या मंसबदारको छोड़कर सम्राट् अथवा राष्ट्रकी ओर जाती ही न थी। वह अपने मंसबदारका ही सैनिक था। सम्राट् और राष्ट्र उसके लिए दूरके विषय थे। मंसबदारका अंत हुआ कि सैनिक प्रायः अपने प्राणों और घोड़ोंकी रक्षाका उपाय चिन्तन करने लगता था। व्यक्तिगत वीरता और साहसका अभाव मुग़ल सेनामें नहीं था। अव्यवस्था (Indiscipline), रसदका कुप्रबन्ध, ख़ेमों का विस्तृत साज, सुखवांछाका स्वभाव और सम्राट् अथवा राष्ट्रके लिए सैनिकोंमें चिन्ताका अभाव—यह सब दोष मुग़ल सैनिक योजनामें विद्यमान थे, जिनके कारण अंतमें मुग़लोंको भी दिल्लीसे हाथ धोना पड़ा। लेकिन इन दोषोंको अकबर बचा भी नहीं सकता था। इन दोषोंसे जो जो हानियाँ सम्भव थीं उनसे साम्राज्यकी रक्षा करनेका स्थायी उपाय वह कर गया था। यदि उन्हीं उपायोंका अवलम्बन औरङ्ग़ज़ेब प्रभृति सम्राट् करते आते, तो वर्तमान इतिहासके पन्ने दूसरे ही रंगमें रँगे होते। पर उसके प्रपौत्रने धार्मिक कारणोंसे उसकी नीतिको तिलाञ्जलि दे दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि उस सम्राज्य-रक्षक उपायको छोड़ते ही सैनिक संगठनके दोषोंने मिलकर अट्ठारहवीं शताब्दी के आरम्भमें ही मुग़ल साम्राज्य को अकर्मण्य और सत्वहीन बना दिया। अकबर सेनाके संगठनके दोषोंसे अपरिचित न था। परन्तु उसे सेनामें सुधार करनेका अवसर ही नहीं मिला। उसने सेनाका ऐसा

संगठन कर ही लिया था, जिसके बलसे वह अपने उद्देश्योंको पूर्ण करनेमें सफल हो सकता था। और सफल हुआ भी। सेनाके संगनठमें दोषोंके रहते हुए भी वह साम्राज्यकी रक्षा और स्थिरताका पूर्ण और स्थायी उपाय कर ही गया था। यदि स्मिथको अकबरकी सैनिक योजनामें पतन और नाशका बीज देख पड़ता है तो इसका भी कारण है। यदि दिल्लीके सिंहासनपर बैठकर सम्राट्का प्रपौत्र 'साम्राज्य-रक्षक उपायोंको दूर करनेकी नाशक नीतिको छोड़कर सेना-संगठनके सुधारनेमें प्रवृत्त होता तो स्वर्गीय प्रपितामहकी सैनिक योजनाके दोष सदाके लिए दूर हो जाते। यदि औरङ्गजेबवाली आधी शताब्दीमें अकबरका फिरसे अवतार हुआ होता तो मुगल राज्य-व्यवस्थाकी एक बड़ी भारी त्रुटि दूर हो जाती। पर ऐसा होना नहीं था। मुगल सेनाके संगठनकी त्रुटियाँ ही अकबरके बनाये हुए विशाल,सुव्यवस्थित और स्थायी साम्राज्य-भवनको गिरानेमें, धार्मिक सहिष्णुता (Religious Toleration) के दृढ़ और पवित्र मसालाके दूर होते ही, समर्थ हुईं।

१०—कोश

हिन्दू राजनीतिमें * राष्ट्रके ७ अङ्ग माने गये हैं, जिन्हें प्रकृति कहते हैं। इन सातोंमें कोश एक मुख्य अङ्ग है यथा—

"स्वाम्य मान्य सुहृत्कोश† राष्ट्र दुर्गबलानिच।"

---

* The state.

† यहाँ पर राष्ट्रका अर्थ है भूमि।

कोश पर राज्यकी स्थिति बहुत कुछ निर्भर रहती है। कोशके ढीला पड़ जानेसे राष्ट्रकी गति भी ढीली पड़ जाती है, क्योंकि कोश राष्ट्रकी उन्नतिका एक प्रधान साधन है। सभी युगों और सभी देशोंके राजाओंको कोशपर ध्यान देना पड़ता है। व्यक्ति और राष्ट्र दोनोंका आर्थिक सिद्धान्त प्रायः एकसा होता है। जिसके हाथमें कोशका शासन रहता है उसीकी अधीनता सबको स्वीकार करनी पड़ती है। वस्तुतः राष्ट्रके जीवनमें आर्थिक स्वाधीनता ही स्वतन्त्रताका वास्तविक आधार है, क्योंकि "सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।" स्वायत्त शासन (Absolute monarchy) में राजा अथवा सम्राट्का ही कोश पर प्रायः अधिकार रहता है। वही कोशका अनियन्त्रित शासन करता है। यदि उसमें पर्याप्त सामर्थ्य हो, तो उसके हाथको कोई रोक नहीं सकता। वजीर और उमरा लोग तो उसकी कृपाके ही फलस्वरूप हैं। भला वह सम्राट्का हाथ कैसे रोक सकते हैं? यद्यपि स्वायत्त शासन (Abslute mona-archy) में भी राजा अथवा सम्राट्को लोकमत अपने हितार्थ मानना ही पड़ता है तथापि उसकी इच्छा ही सर्वत्र बलवती रहती है। सनातन सिद्धान्तोंको एक समर्थ और स्वायत्त राजाके व्यक्तिगत सिद्धान्तोंके पीछे छिप जाना पड़ता है। भारतके मध्यकालीन इतिहासमें बारम्बार यही दशा दृष्टिगोचर होती है। पठानोंके समयमें यदि सुल्तान नासिरुद्दीन राष्ट्रीय सम्पत्तिको अपने व्यक्तिगत कार्योंमें नहीं लगाना चाहता था, तो अलाउद्दीन खिल्जीने विजयोंमें प्राप्त सम्पत्ति (यह सम्पत्ति वास्तवमें राष्ट्रीय सम्पत्ति थी और इसका व्यय सार्वजनिक हितके लिए होना चाहिये था)

द्वारा ही दिल्लीके मार्गमें स्वर्ण लुटाकर सिंहासन प्राप्त किया था। उसी प्रकार सुल्तान मुहम्मद तुगलकने भी विदेशियोंके सम्मान तथा दूरदर्शिता के कार्योंमें राष्ट्रीय सम्पत्तिका अपव्यय किया। यह स्थिति स्पष्ट प्रकट करती है कि कोशका शासन सुल्तान अथवा सम्राट्की ही मायाका खेल था। चाहे जितना वह अपने व्यक्तिगत (private) कार्यों के लिए व्यय कर सकता था और जो कुछ शासन कार्यमें व्यय होता था उसमें भी कोई दृढ़ नियम नहीं था। सुल्तान अथवा सम्राट् अपनी इच्छानुसार धनको भिन्न भिन्न कार्योंमें लगा था। यदि उसकी प्रवृत्ति भवन-निर्म्माण (Buildings) की ओर हुई, तो उसीमें वह बहुत कुछ लगा देता था; यदि विजयकी इच्छा हुई तो सेनामें ही बहुत कुछ व्यय कर डालता था। अभिप्राय यह है कि कोशका स्वायत्त अधिकारी सुल्तान अथवा सम्राट् ही था। यही बात मुगल सम्राटोंके लिए भी अक्षरशः सत्य है। सम्राट् अकबरसे लेकर औरंगजेब तकके कोश सम्बन्धी शासनका अध्ययन करनेसे यह स्पष्ट हो जायगा। सम्राट् ही कोशका अनियंत्रित शासक था। उसके व्यक्तिगत कार्यों में भी इसी कोशके रुपये व्यय किये जाते थे। शासन सम्बन्धी कार्यों में तो इसका उपयोग होना ही चाहिए था। इसपर यदि मुगलोंने विशेष ध्यान दिया, तो यह केवल कर्त्तव्यपालन था। इसे राजकार्यकी कोई विशेषता नहीं कहनी चाहिये। हाँ; शासन कार्यमें भी जिधर सम्राट्की रुचि विशेष हुई, उधर मनमाना व्यय किया जाता था। शाहजहाँके दिव्य भवनोंकी छटा देखकर बड़े बड़े गुणी लोग अवाक् रह जाते हैं। पर उसीका पुत्र औरंगजेब था जो मरनेके पहले अपने

हाथकी सिली हुई टोपियों और कुरानकी प्रतिलिपियोंके मूल्यका हिसाब जोड़कर उसी में से कफ़न और जनाज़ा तैयार करनेको कह गया था। कोशका शासन सम्बन्धी सिद्धान्त सदा एक था—व्यय करनेकी रीति भिन्न भिन्न थी। सभी सम्राट् यह मानते थे कि सरकारी कोश सार्वजनिक पदार्थ है और उसका व्यय प्रजाके हितके लिए ही होना चाहिये। परन्तु यह सिद्धान्त (Theory) मात्र था। वस्तुतः उसी कोशसे सम्राट्का व्यक्तिगत व्यय भी प्रायः चलता था। या यों कहिये कि उस समय सम्राट्की सार्वजनिक और व्यक्तिगत स्थितियोंमें कोई भेद प्रायः नहीं माना जाता था। मुग़ल दरबारकी अद्भुत छटाको अनेक ग्रन्थकारोंने राजनीतिक दृष्टिसे देखा है। उन्हें पूर्वीय सम्राट्के लिए यह छटा आवश्यक सी जान पड़ती है और वास्तवमें आवश्यक थी भी। सम्राट्के भवन, कुटुम्ब और अन्तःपुरका व्यय सार्वजनिक कोशसे चलता था। अस्तु, यही कहना पड़ता है कि उस समय सम्राट्के सार्वजनिक और व्यक्तिगत स्थितिमें कोई अंतर नहीं था और यदि था भी तो बहुत सूक्ष्म। साम्राज्यका कार्य सम्राट्के व्यक्तिगत क्षेत्रसे अलग न था। साम्राज्यका शासन और उसकी रक्षा सम्राट्के व्यक्तित्व में छिपी रहती थी। जिस तरह सम्राट्के व्यक्तित्वमें उसके सार्वजनिक कार्य सम्मिलित रहते थे उसी प्रकार कमसे कम उत्तम सम्राटोंका व्यक्तित्व भी उनके सार्वजनिकत्वमें छिपा रहता था। यही दशा सम्राट अकबरकी थी। वह साम्राज्यके कोशका स्वायत्त अधिकारी और शासक था; अतएव ऊपरकी सभी बातें उसके लिए अक्षरशः सत्य हैं।

सम्राट्के समयमें न बजट (आय व्ययका अनुमान-पत्र) पर आजकलकी भांति बहस होती थी और न नियमित बजट बनता ही था; तथापि व्ययका परिमाण बहुत कुछ निश्चित रहता था। व्ययका निश्चय करना और उसे घटाना बढ़ाना सब कुछ सम्राट्के हाथमें था। सेना उस समयका सबसे आवश्यक अङ्ग थी। इसमें अधिक व्यय होना स्वाभाविक था। परन्तु मुग़ल सेनाका संगठन ऐसा था कि आजकलकी दृष्टिसे वह कुछ सस्ता था। पिछले दो परिच्छेदोंमें सेनाका विवरण दिया जा चुका है जिससे ज्ञात होगा कि तत्कालीन सेनाकी योजना बड़ी बृहत् और पेचदार थी। सेना और सेना सम्बन्धी उपकरणोंमें (अस्त्र-शस्त्र, शिल्पशाला, सैनिक, पशु, खेमा इत्यादि) बहुत व्यय किया जाता था क्योंकि ऐसी ही आवश्यकता थी। परन्तु यदि भरती, रसद, तथा सभी सैनिकोंका पूरा प्रबन्ध सरकारकी ओरसे ही होता, तो सेनाका व्यय अत्यधिक हो जाता। यही दृष्टिमें रखकर लोगोंने कहा है कि मुग़ल सेना सस्ती थी और, वास्तवमें, सैनिक दृष्टि से यह बड़ी भारी त्रुटि थी। सैनिक कर्मचारियोंके अतिरिक्त (अधिकांश कर्मचारी सेनासे ही सम्बन्ध रखते थे) शासन-कार्यमें अन्य भी बहुतेरे कर्मचारी राजभवन, टकसाल, धनागार, न्याय, पुलिस, राजकरकी वसूली और उसका प्रबन्ध इत्यादि शासन सम्बन्धी कार्योंमें नियुक्त थे जिनको सरकारी कोशसे वेतन मिलता था। वेतनोंके विषयमें आईन-ए-अकबरीमें कहीं कहीं लिखा है, पर इस विषयका विवरण नितान्त

अपूर्ण है।[1] कभी कभी किसी किसी कर्मचारीको पुरस्कार भी मिलता था[2], प्रबन्ध सम्बन्धी कार्योंमें (जङ्गी या मुल्की Civil or military) ही अधिक व्यय होता था।

प्रबन्ध सम्बन्धी व्ययके अतिरिक्त राजभवन और हरमका काम भी सरकारी कोशसे ही चलता था। इतना अवश्य था कि हरमके व्ययका हिसाब किताब अलग रहता था। हरमकी बहुतेरी स्त्रियोंका वेतन नियत था। हरमका हिसाब किताब रखनेके लिए अलग कर्मचारी नियत थे। दरबारका व्यय तथा सैकड़ों नौकर चाकर और कारीगरों इत्यादिके रखनेका व्यय सरकारी कोशसे ही चलता था। सम्राट् पुस्तकें भी बड़ा मूल्य देकर मोल लेता था, यह पुस्तकें भी विशेष कर उसके निजी काममें आती थीं। उसके पुस्तकालयमें अच्छी अच्छी पुस्तकोंका अच्छा संग्रह था। सम्राट् गुणियों और विद्वानों-का सम्मान भी अधिक करता था। उन्हें वजीफा अथवा मद-देमाश द्वारा सरकारी सम्पत्ति अथवा कोशसे सहायता दी जाती थी। भवन निर्माण (building) के कार्य भी सम्राट्ने किये ही थे। उसने कुछ क़िले बनवाये थे और फ़तहपुर सीकरी-की दिव्य प्रभाको जन्म दिया था। इसके अतिरिक्त अन्य भी निर्माणके कार्य हुए थे। एक बार अकाल पीड़ितोंकी सहायता का भी आयोजन किया गया था। प्रजाके हितके अनेक काम

---

[1] वेतनके सम्बन्धकी कुछ बातें पिछले परिच्छेदों द्वारा मालूम हो सकती हैं।

[2] जागीरें भी थोड़ी बहुत अकबरके समयमें थीं पर जागीर प्रथाको सम्राट्ने बहुत कुछ बन्द सा कर दिया था।

उसने किये थे। इस प्रकार सरकारी कोशसे सेना,* शासन कार्य, गुणियों और विद्वानोंकी संरक्षकता, राजभवन, हरम और दरबार, पुस्तकालय, धर्म और निर्माण, तथा प्रजाहित-चिन्तन, इत्यादिके कार्योंमें व्यय होता था। परन्तु किसी किसी निर्माण कार्यके करनेके लिए सम्राट्‌ने विशेष कर (special taxation) भी वसूल किया था। सम्राट्‌ने कोशमें रुपया जमा भी बहुत कर रखा था। उसके मरने पर कोशमें अच्छा धन बचा था जो उसके पुत्र सम्राट् जहाँगीरके अधिकारमें आया।

होई साहबने अपनी† Memoirs of Delhi and Faizabad vol I) पुस्तकमें शाहजहाँके व्ययका अनुमान-पत्र दिया है। उसमें ताजमहल, मयूरासन (तख्ताऊस), राजभवन तथा संगमरमरकी मसजिद्के निर्माणका व्यय नहीं सम्मिलित है और न कोशमें बटोरा हुआ धन तथा सेना का वेतन ही सम्मिलित है। इन व्ययोंको छोड़कर शाहजहाँके अन्य व्यय इस प्रकार प्रकट किये जा सकते हैं :—

राजकुमारों और बड़े बड़े उमराओंको पुरस्कार १४०००००००)
सार्वजनिक इमारतें तथा अन्य सार्वजनिक काम २५००००००)
अकबराबादमें (ताज, मसजिद और राजभवनोंके
अतिरिक्त) ११००००००)

---

* सेनामें सेनाके सम्बंधकी सभी बातें (पशुशाला, शिल्प-शाला, रणनौका, खेमा, कारीगर इत्यादि) सम्मिलित थीं।

† Memoirs of Delhi and Faizabad यह एक फ़ारसी इतिहासका अंग्रेज़ी अनुवाद है।

शाहजहानावादकी इमारतें क़िला, नहर	५००००००)
जामा मसजिद	१००००००)
लाहौरकी वाटिकायें और नहरका निर्माण	५००००००)
कावुल और अन्य स्थानों की इमारतें	४००००००)
	१६८५०००००)

इस सूचीमें व्ययका जो अनुमान-पत्र दिया है उससे सम्राट् अकबरके व्ययका निर्णय करना असम्भव है। इसमें ताज और मयूरासन इत्यादिको छोड़ दिया है; अतएव अनुमान यह किया जा सकता है कि सम्राट् अकबरका भी व्यय सेना, हरम तथा कर्मचारियोंके वेतनोंके अतिरिक्त सत्रह करोड़के ही लगभग रहा होगा, परन्तु इस अनुमानकी सत्यतामें बहुत कुछ सन्देह है। सम्राट् अकबरके व्ययका अनुमान-पत्र निर्णयात्मक रूपसे बनाना कठिन है। आईन-ए-अकबरीसे वेतनों इत्यादिका कुछ पता चलता है पर वह भी अपूर्ण है। सम्राट्के शासनके ३९ वें वर्षमें आईन-ए-अकबरीके अनुसार सम्राट् के घर अर्थात् कुटुम्ब (household) में ही * ३०९१८६०९५ दाम व्यय होता था। इसके अतिरिक्त भवनके बहुत से कर्मचारियोंको सैनिक वृत्ति मिलती थी।

सम्राट्के बारह धनागार थे। तीन में नक़द मुद्रा और एकमें बहुमूल्य मणिमुक्ता, एकमें सोना और एकमें सोने और मणिमुक्ता निर्म्मित वस्तु इत्यादि रहते थे। वहाँ जो असंख्य मणिमुक्ता और हीरे इत्यादि रहते थे, वह सब बड़ी हिफ़ाज़त से रखे जाते थे। धनागारोंसे जागीरदार और सेनापति

* ७७२६६५२॥।≈) रुपये।

ऋण पाते थे। लिखित आदेशके बिना राजकोशसे कोई रुपया नहीं पाता था। यहाँपर यह ध्यान रखना चाहिये कि सम्राट्के कोशमें रुपयोंकी ही आय नहीं थी। भूमिकर द्वारा कृषकोंसे अन्न भी मिलता था, क्योंकि कृषक लोग अपने सुभीतेके अनुसार रुपया अथवा अन्न द्वारा राजकर चुकता करते थे। अतएव सम्राट्ने प्रति ज़िलेमें राजकीय अन्न कोठार भी स्थापित किये थे। जिस भूमिमें अन्न उत्पन्न होता था उसमेंसे प्रति बीघे पीछे दस सेर अन्न लेकर यह कोठार भरे जाते थे। वहींसे दरिद्र कृषकगण बीज लेते थे और दुर्भिक्षके समयमें बहुत थोड़े मूल्यपर अन्न बेचा जाता था। यहीं से राज्यके दरिद्राश्रमोंमें भी अन्न जाता था। राजकीय पशुओंको भी यहींसे आहार मिलता था। ऊपर लिखे हुए बारह धनागारोंके अतिरिक्त प्रत्येक दफ्तरके लिए (जिनकी संख्या सौ के लगभग थी) अलग धनागार रहते थे। प्राप्त और दीयमान (receipts and disbursements) द्रव्योंका दैनिक,मासिक,त्रैमासिक और वार्षिक ब्यौरा रखा जाता था। अबुलफज़ल कहता है कि सम्राट्की आज्ञासे एक विश्वस्त पुरुष दरगहाममें कुछ सोना चाँदी तैयार रखता था जिससे आवश्यकतामें पड़े हुए लोगोंकी आवश्यकतायें शीघ्र पूर्ण कर दी जाती थीं। भवनमें भी एक करोड़ दाम सदा तैयार रहता था, जिसमेंसे एक एक सहस्र अलग अलग थैलेमें रखा रहता था। साम्राज्यके भिन्न भिन्न विभागोंमें भी प्रत्येक आमिलके साथ खजांची रहता था और सबके ऊपर एक प्रधान कोशाध्यक्ष होता था जिसे सहायता देनेके लिए एक दारोगा और अनेक लेखक रहते थे। प्रान्तीय धनागारोंमें एक निश्चित परिमाणसे अधिक द्रव्य नहीं रखा जा सकता था। यह

नियम था कि * दो लाख दाम एकत्रित हो जानेपर सब रुपये प्रधान राजकीय धनागारमें भेज दिये जायँ। प्रान्तीय धनागार सिपहसालारके निवास-स्थानके पास ही रहता था। उसकी रक्षाका अच्छा प्रबंध किया जाता था। खजानची दीवानकी स्वीकृतिके विना किसीको कुछ दे नहीं सकता था और न कुछ व्यय कर सकता था। दीवान ही साम्राज्य अथवा प्रान्तका प्रधान अर्थ-सचिव था। उस समयमें अर्थ सम्बन्धी धोखों (Frauds) से वचनेके बड़े कठोर नियम बने थे। कोई कोई वेईमान ही ऐसे होते रहे होंगे जो जानपर खेल जाते थे तथा सरकारी रुपयेका दुरुपयोग कर देते थे। किंतु नियम ऐसे कठोर थे कि कोई ऐसा साहस नहीं करता था। घूस तो कोई कोई लोग लेते ही रहे होंगे—इसमें सन्देह नहीं है। किंतु उन दिनों जैसे और सब त्रुटियाँ और न्यूनतायें थीं वैसे ही एक ऐसी उत्तम और श्रेष्ठ प्रथा थी कि जिसका आजकलकी व्यवस्थामें स्वप्नमें देखना भी कठिन है। छोटेसे छोटा आदमी अपनी अपील सीधे सम्राट् तक कर सकता था। कानूनमें उसके लिए कोई वाधा न थी और विशेषता तो यह थी कि यदि दरबारमें नहीं भेंट हो सकती थी तो वह जहाँ ही सम्राट्को आखेट भ्रमण अथवा अन्य किसी कार्यमें लगा हुआ देख पाता था वहाँ ही अवसर पाकर वे रोक-टोक अपना निवेदन सुना सकता था। इस प्रकार कठोर दण्डका भय तथा सम्राट्के कान तक जासूसों अथवा निवेदकों द्वारा समाचार पहुँच जानेका भय कर्मचारियोंको रिशवत लेने अथवा जाल-

* ग्लैडविन, पृष्ठ २६५।

माज़ी करनेसे रोकता था। अस्तु सम्राट् अकबरके समयमें कोषका शासन बहुत दृढ़ और व्यवस्थित था। सम्राट् ही कोषका नियन्ता था—उसीका उसपर पूरा अधिकार था। उसीकी आज्ञानुसार व्यय होता था और उसीके चलाये नियमोंके अनुसार सब कार्य होता था तथा कर्मचारियोंको (चाहे वह राजधानीके हों अथवा प्रान्तोंके) अर्थदोषका अवसर नहीं मिलता था। उस समय भी कोशका प्रबंध (ज़िलोंसे लेकर साम्राज्य तकका) इतना पेंचदार था कि उसकी दृढ़ सुव्यवस्थाके कारण सामान्यतः कोई अर्थ सम्बंधी दोष कर ही नहीं सकता था। कोशके शासन तथा सम्राट्के व्ययोंका अति सूक्ष्म दिग्दर्शन हो चुका। अब संक्षेपमें सम्राट्के आयपर विचार करना है।

भूमिकर सदाकी भांति उस समय भी आयका प्रधान मार्ग था। अबुलफ़ज़ल ने लिखा है कि "दिल्ली, आगरा इलाहाबाद, अयोध्या, अजमेर, मालवा, अहमदाबाद, काबुल (काश्मीर इसके अंतर्गत है), लाहौर, मुल्तान, बिहार, एवं बंगाल (उड़ीसा उसके अंतर्गत है)—इन बारह सूबों से नौ करोड़से कुछ अधिक रुपया आता था।" उसीने फिर लिखा है कि "सूबा बंगाल और उड़ीसाका राजकर प्रायः एक करोड़ रुपया है।" स्टुअर्ट साहबके अनुसार १८११-२ में अंग्रेज़ोंने बंगाल और उड़ीसासे दो करोड़ दो लाख रुपया राजकर ५० लाख रुपया नमक और अफीमका वसूल क्या है। आजकल अकबरके समयसे कई एक कर बढ़ गये हैं। एडवर्ड टामसने मुगल सम्राटोंके आयका हिसाब लगाया है। उनका मत है कि अकबरके [illegible]

आय मिलाकर ३२०००००० पौंड थी। यह अनुमान निज़ामुद्दीन अहमदके अनुसार किया गया है। उसने लिखा है कि इस समय अर्थात् १००२हिजरी (१५९३ ई०) में हिन्दुस्तान से ६४०००००००० टांका मुरादी करमें मिलता है। वीस* टांका मुरादीका मूल्य चाँदीके टांका अर्थात् एक रुपयेके बराबर मानना चाहिये। अतएव ६४०००००००० मुरादी टांकाका ३२०००००००० रौप्य टांका अर्थात् ३२००००००पौंड हुआ। सम्राट् के पन्द्रह सूबोंका राजकर टामस साहबने अपनी पुस्तकमें आईन से उद्धृत किया है। उसका रुपयोंमें हिसाव लगाकर टामस साहब (पृष्ठ १२-३ Revenue Resources of the Mughal Empire इस प्रकार व्योरा देते हैं:—इलाहाबाद ५३१०६५७), आगरा १३६५६२५७), अवध ५०४३९५४) अजमेर ७१५३४४६), अहमदाबाद (गुजरात) का राजकर १०९२००५७) और बन्दरका कर ४०६५), बिहार ५५४७६८५) बंगाल १४९६१४८२), दिल्ली १५०४०३८८), काबुल ८०७१०२४), लाहौर १३९८६४६०), मुल्तान ९६००७६४), मालवा ६०१७३७६), बरार १७३७६११७), खानदेश ७५६३२३७), और † ठट्टा १६५६२८४), रुपये। सबका जोड़ १४१९०९५७६) हुआ।

सम्राट्ने, पान, नील, ईख इत्यादिपर भी कर स्थापन किया था। नौकापर नदी पार करनेके लिए प्रति घोड़ा, गाय

---

* इस सम्बंधमें लेनपूलकी पाद टिप्पणी देखिये:—औरंगजेब, पृ० १२८

† अहमदनगरका नहीं लिखा है।

इत्यादिके लिए ८ कौड़ी और प्रति दस मनुष्योंके लिए एक पैसा देना पड़ता था। जो कुछ आय होती थी उसका तृतीयांश अथवा अर्धभाग राजकोशमें आता था, शेष नौका चलानेवालोंको मिलता था। इसके अतिरिक्त विवाह * कर भी था। मंसबदार लोग अवस्थानुसार चार रुपयोंसे दस मुहरों तक प्रति विवाह देते थे। धनाढ्योंको चार रुपया, मध्य श्रेणीवालोंको एक रुपया और साधारण स्थितिके लोगोंको दो पैसे प्रति विवाह देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त काबुल कन्धार और फ़ारससे जो अश्व-व्यापारी भारतमें आते थे उनसे भी कर लिया जाता था। अश्व कर के विषयमें अबुलफ़ज़ल (Gladwin पृ० १४२) लिखता है कि विदेशी मुजनिस या ताज़ीका ३) प्रति अश्व, तुर्की या कन्धारी ताजीका २½ रुपये और काबुली या हिन्दुस्तानी ताजीका २ रुपया अश्वकर प्रति घोड़ेका होता था। इस प्रकारके नियमित करोंके अतिरिक्त भेंट (presents), ज़प्ती और विजय की लूटसे भी अच्छी आय होती थी। एक प्रसिद्ध ग्रन्थकारका यह लिखना कि भेंटकी प्रथा नूरजहाँके समयमें आरंभ हुई नितांत निर्मूल है। अकबरके समयमें भी भेंट † सम्राटको दी जाती थीं हाँ, इतना अवश्य था कि बादके मुग़ल-कालके समान उसके समयमें भेंटोंकी इतनी अति नहीं हुई थी। ज़प्तियोंसे भी साम्राज्य (State) की खासी आय हो जाया

* श्रीबंकिमचन्द्र लाहिड़ीका "सम्राट् अकबर" देखिये।

† भेंट-प्रथा पठान कालमें भी प्रचलित थी। हिन्दू राजाओंके यहाँ भी इसका अभाव न था।

करती थी। विजयकी लूटके लिए फौजदारोंको यह ताकीद कर दी गयी थी कि पंचमांश राजकोशमें भेज दिया करें तथा विभाग करने पर जो कुछ बच रहता था वह भी राजकोशमें ही जाता था (Gladwin पृष्ठ २५७)। आयके इन सब मार्गोंका अध्ययन करते समय यह भी नहीं भूलना चाहिये कि प्रत्येक प्रान्तकी सेनाके लिए हय-दल और पैदल-सैन्य भी निश्चित संख्याके अनुसार देना पड़ता था। यदि उसको भी हिसाब लगाकर राजकर तथा अन्य करोंके आयमें जोड़ा जाय तो साम्राज्यकी आय बहुत बढ़ जाती है। टामस साहबका अनुमान है कि देशको जो यह सैन्य साम्राज्यके लिए प्रस्तुत करना पड़ता था उनका व्यय कमसे कम १ करोड़से तो अवश्य ही अधिक होना चाहिये।

जिस प्रकार सम्राट् कोशकी वृद्धिका ध्यान रखता था उसी प्रकार प्रजाके हितपर भी उसका ध्यान रहता था। अनेक कष्टप्रद करोंको उसने बन्द कर दिया था। वह किसी अभियानमें विश्रामके लिए किसीके घर यदि उतरता था तो वह अपनी भूमिके करसे सदैवके लिए मुक्त कर दिया जाता था। सुल्तान फीरोजशाहने अकबरसे लगभग दो शताब्दी पूर्व जज़िया इत्यादिमें अधिक कड़ाई की थी परन्तु अनेक करोंको बन्द भी कर दिया था। किन्तु यह कर सम्भवतः फिर उगाहे जाने लगे थे, क्योंकि अकबरके बन्द किये हुए करोंमें उनकी भी गणना की गयी है। नीचे* अकबरके बन्द किये हुए अथवा कम किये

---

* सम्राट्ने कुछ करोंकी शरहको कम भी किया था तथा कुछको अधिक कर दिया था।

हुए करोंकी सूची देना अनुपयुक्त न होगा। (Blochman I I, ६६; और Gladwin I I ३४८)। (१)*जज़िया (बिल्कुल बंद कर दिया था) (२) मीरबहरी, (३) कर (तीर्थयात्रा इत्यादिका), (४) गौशुमारी, (५) सर दरख़्ती, (६) पेशकश, (७) फरुक़-ओ अक़सामेपेशा, (८) दारोगगान, (९) तहसीलदारी, (१०) फ़ोतादारी, (११) सलामी, (१२) वजह किराया, (१३) ख़रीता, (१४) सर्राफ़ी। तथा नीचे लिखे हासिल बाज़ार कर (१५) नक्खास, (१६) सन, (१७) कंबल, (१८) रोग़न, (१९) अधूड़ी, (२०) कैथाली, (२१) बज़ानी, (२२) कस्साबी, (२३) दब्बागी, (२४) क़िमारबाज़ी, (२५) कतलासाज़ी, (२६) राहदारी, (२७) पाग, (२८) दूदी, (२९) रस्म खाना, (३०) निसकी, (३१) बलकटी, (३२) पटी नमद, (३३) चूनाकारी, (३४) ख़स्मारी, (३५) दलाली, (३६) माहीगीरी, (३७) हासिल दरखेआल, (३८) सायरजिहात इत्यादि‡। इस तालिकासे मालूम हो जायगा कि सम्राट कोषकी केवल वृद्धि ही नहीं चाहता था। उसे भारतीय राजनीति और प्रजाहित चिन्तनमें भी सफलता प्राप्त करनी थी। यही कारण था कि उसने प्रजाके हृदय को कष्ट देनेवाले करोंको बन्द कर दिया था तो भी राजकोषकी आय बहुत अधिक थी। सम्राट्के समयमें कोशकी उन्नति अच्छी रही। सम्राट्की क्षमता स्वयं अधिक थी। और उसके कर्मचारी भी (टोडरमल सरीखे) योग्यसे योग्य मिलते

---

* जज़ियाका पुनरुद्धार आलमगीरने किया था।

‡ लेनपूलका कहना है कि अकबरने पचाससे अधिक करोंको बन्द किया था।

गये। पर साम्राज्यके आय और व्ययके साथ साथ जब कोश-के शासन विषयक प्रश्न उपस्थित होता है तो अंतमें यही कहना पड़ता है कि सब कुछ एक योग्य, प्रजाहित चिन्तक, और राजनीति निपुण, स्वायत्त सम्राट्की मर्जीका फल था।

११—भूमिकर विभाग

वर्नियरका यह कहना कि भारतवर्षमें+ उस समय "भूमिका व्यक्तिगत अधिकार" (Right of private property) नहीं था, ठीक नहीं जँचता। आईन-ए अकवरीके-अध्ययनसे यह कल्पना निर्मूल मालूम होती है। अबुलफ़ज़लके विवरणसे कहीं यह पता नहीं चलता कि भूमि राष्ट्रीय सम्पत्ति state ownership of the soil) थी। सम्राट्को उपजका एक अंश-मात्र लेनेका अधिकार था। यही हिन्दू राजनीति थी। और * कुरानका भी यही मत है। यह ठीक है कि जो सम्राट् अपनी प्रजाकी जान ले सकता था वह उसका माल तो ले हीं सकता था। पर यह कथन केवल इतना ही प्रकट करता है कि मध्यकालीन भारतमें स्वायत्त शासन (Absolute monarchy) था। कृषकको भूमिका स्वामी (Owner of the soil)

+ सत्रहवीं शताब्दीके मध्यकालमें वर्नियर भारतमें आया था।

* कुरानके अनुसार शासकको विजित देशसे पञ्चमांश लेनेका अधिकार था, चाहे वह भूमिका पाँचवाँ भाग ले ले अथवा उपजका।

मानना ही भूमिकरका मूल आधार था। सम्राट् अकबरकी राज्य-व्यवस्था पर विचार करनेवालोंने भूमिकर विभागपर विशेष ध्यान दिया है। कीनका मत है (देखिये Sketch of the History of Hindustan पृष्ठ १६०-२ और The Turks पृष्ठ ७६) कि भारतके मुसल्मान बादशाहोंमें शेरशाहने ही पहले पहल सोचा कि कृषिके व्यय (Expenses of cultivation or gross produce) अर्थात् कुल उपज तथा राष्ट्रीय मांग अर्थात करके बीचमें कुछ निश्चित परिमाणकी उपज छोड़ देनेसे कितना लाभ हो सकता है। इस परिमाणका निर्धारण तथा इसका निर्धारण कि उसका लाभ किसे उठाना चाहिये उस प्रथाका आधार हुआ जो अब भी इस देशके अधिकांश भागोंमें वन्दोवस्त' के नामसे प्रचलित है। परन्तु शेरशाह और अकबरके वन्दोवस्त तथा आजकलके वन्दोवस्तके सिद्धान्तोंमें यह अन्तर है कि उस समय कृषियोग्य भूमिकी उत्पादन शक्ति देखकर कर लगाया जाता था; किन्तु आजकल आनेवाले लगभग तीस वर्षोंके उपज और लाभकी सम्भावनाओंपर भी विचार कर लिया जाता है। तो भी तत्कालीन अकबरी वन्दोवस्त और भूमिकरके सिद्धान्त ही वर्तमान पद्धतिके आधार हैं। थोड़े बहुत परिवर्तनोंके साथ अब भी वही नीति वर्त्ती जा रही है। सम्राट् अकबरके सम्बन्धमें राजा-टोडरमलका नाम सर्वदा लिया जायगा। अकबरके उत्तराधिकारियोंने समयानुसार उसके चलाये हुए वन्दोबस्तके सम्बन्धमें कुछ हेर फेर भी किया, किन्तु टोडरमलके मूल तत्वोंमें क्या साधारण नियमोंमें भी अधिक भेद नहीं होने पाया। लेनपूलका कहना है कि मध्यकालीन इतिहासका कोई

भी व्यक्ति भारतमें आजतक टोडरमलकी ख्यातिको नहीं पहुँचा। और इसका कारण यह है कि अकबरके अनेक सुधारों में से उस महान् अर्थवित (टोडरमल) का * भूमिकर संगठन ही प्रजाको सबसे अधिक लाभदायक हुआ। भारतमें भूमिकर सदासे आयका प्रधान मार्ग रहा; पर सम्राट् अकबरके समयमें अनेक कर बन्द कर दिये गये थे, जिससे इस विभाग पर अधिक बोझ पड़ना स्वाभाविक था। टोडरमलके बन्दोबस्तका लक्ष्य यह था कि भूमिकरसे शासन कार्यके लिए पर्याप्त धन मिला करे और यह कृषकोंको बोझ भी न मालूम हो। विल्टन ओल्डहमके अनुसार स्मिथ साहब आईन-ए-अकबरीका प्रमाण देकर लिखते हैं कि सम्राट्का भूमिकर संगठन रैय्यतवाड़ी था और कृषक लोग भूमिके निश्चित वार्षिक करको चुकता करनेके उत्तरदायी थे (स्मिथः अकबर ३७५-६ और ओल्डहम Memoir of theGhazipur district 1, ८२) आमिलगुजारका यह कर्तव्य था कि वह कृषकोंको नियत समयोंपर स्वयं कर लानेको प्रोत्साहित करे, जिससे बीचके छोटे छोटे कर्मचारियोंको अर्थदोषके अवसर न मिलें। वितिक्ची या तिपक्ची (मुनीम) का यह कर्तव्य था कि वह पैमाइशके समाप्त हो जानेपर प्रत्येक कृषकका तथा पूरे ग्रामका

---

*सम्राट् अकबरके सम्बन्धमें The journal of the United Provinces Historical Society (जून १६१६) में मोरलैंडकी कृषि सम्बन्धी अंकों statistics की आलोचना विषयक लेख तथा 'स्वार्थ' फाल्गुन १६७६ में मुगल सम्राटोंका शासन विषयक लेख पठनीय हैं।

भूमिकर निश्चित करे। मुखिया या चौधरीके साथ भूमिकरका कुछ निश्चय नहीं किया जाता था। वह केवल कृपिकोंका प्रतिनिधि स्वरूप था। उनसे वह नियुक्त समयपर कर लेता या दिलवाता था और कार्यके अनुसार भूमिकरमेंसे उसे भी कुछ मिल जाता था। अभिप्राय यह है कि सम्राट् भूमिकर सीधा रैय्यत (कृपक) से लेता था। उस समयका बन्दोबस्त आजकलके रैय्यतवाड़ीसे अधिक मिलता जुलता है।

सम्राट्के भूमिकर सम्बन्धी सुधारोंकी गाथा शासनके पन्द्रहवें वर्षसे (१५७०-७१) निश्चयात्मक रूपमें आरम्भ होती है। स्थानीय कानूनगोओंसे अनुमान-पत्र तैय्यार कराये गये थे, जिसका राजधानीमें दस प्रधान कानूनगोओंने निरीक्षण किया और मुजफ्फर खाँ तरबती ने टोडरमलकी सहायतासे उन्हीं अनुमानपत्रोंके आधारपर भूमिकरका निर्धारण किया। इसके पहले भूमिकर प्रायः अनुमानसे ही लगाया जाता था तथा भिन्न भिन्न स्थानोंके विषयमें जानकारी रखनेवाले अफसरोंकी सहायता बहुत कम या कभी नहीं ली जाती थी। अकबरके भूमिकर सम्बन्धी सुधारोंकी यह पहली सीढ़ी थी। दूसरी सीढ़ी गुजरातके बन्दोबस्तको कहनी चाहिये। १५७३-४ में छः महीने तक टोडरमल नवीन प्रान्तके भूमिकर निर्धारणमें लगे रहे। भूमिको व्यवस्थित रूपसे नाप करके उसके भिन्न भिन्न विभाग किये गये और क्षेत्रफल तथा उपजके अनुसार कर लगाया गया। जो भूमि कृपिके लिए उपयुक्त नहीं थी वहाँ या तो खेतोंके कट जानेपर अन्नका विभाग कर लिया जाता था अथवा बिना कटे खेत को ही बांट लेते थे। स्मिथ साहब कहते हैं कि गुजरातका भूमिकर सम्राट्के समयमें पहलेसे कुछ कम

था और यद्यपि नक़दको अच्छा समझा जाता था तथापि कृषि-कोंको नकद या गल्ला अपने सुभीतेके अनुसार देनेका अधिकार था। यह बन्दोबस्त दस वर्षके लिए हुआ था, साथ ही साथ उसमें कुछ और भी सुधार हुए थे। यह गुजरातका बन्दोबस्त सम्राट्के भूमिकर सुधारका दूसरा सोपान था। तीसरे सोपान तक आनेपर एक नयी ही बात देख पड़ती है। पटनासे लौटनेपर १५७५-६ में सम्राट्को थोड़ा सा अवकाश मिला। इस बीचमें उसने शासन सम्बन्धी कई सुधार किये। सम्राट्ने बङ्गाल, बिहार और गुजरातको छोड़कर तत्कालीन साम्राज्यके अन्य भागोंको एक नये ही आधार पर विभक्त किया। एक करोड़ टांका (लगभग २५०,०००,) जितने भूभागसे करमें आता था उतनेको एक एक करोड़ी या आमिलके अधीन कर दिया। उपर्युक्त तीन बड़े बड़े सूबों तथा वादके जीते हुए प्रान्तों को छोड़कर शेष साम्राज्य १८२ आमिलों या करोड़ियोंमें बँटा था। अबुलफ़ज़लने इस प्रथा की प्रसशा की है, परन्तु बदाऊनी के विवरणसे इसके प्रतिकूल बातें प्रकट होती हैं। जो हो, यह प्रथा अधिक दिनों तक न चली। सम्राट्को इसका त्याग कर देना पड़ा। किंतु भूमिकरके अफ़सरोंका 'आमिल गुजार' नाम अधिक दिनों तक चलता रहा। आईनमें जो अंक (Statistics) दिये गये हैं उनका करोड़ी प्रथासे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह अंक १५७९-८० में नियत किये हुए सूबा विभागके अनुसार ही (सूबा, सरकार, परगना) दिये गये हैं। करोड़ी प्रथाका अन्त और साम्राज्यका सूबों, सरकारों, महालों या परगनों और दस्तूरोंमें विभाजन शासनके सुभीतेके लिए किया गया था। यह विभाग भूमिकर की ही दृष्टिसे नहीं किया गया था तथापि

इस सम्बंधमें इन विभागोंका करोड़ी प्रथाके असफल हो जानेसे बड़ा महत्व था। अतएव इसे सम्राट् के भूमिकर सुधारकी चौथी सीढ़ी कहनी चाहिये।

बन्दोबस्त और भूमिकरके सम्बन्धकी अन्य बातोंका वर्णन करनेके पूर्व एक बात ध्यानमें रखना आवश्यक है। इस विषयके जितने नियम थे वह प्रायः खालसामें ही प्रयुक्त होते थे। जागीर इत्यादिमें इन्हीं नियमोंका ठीक ठीक पालन होना असम्भव था; क्योंकि जागीरके कर पर व्यक्ति विशेषका अधिकार रहता था। सम्राट्को जागीरदारोंसे लाभ कुछ होता ही था; पर उनका भूमिकर राष्ट्रीय कोशमें नहीं आता था। यह जागीरें स्थायी रूपसे किसीके हाथमें नहीं रहती थीं। सम्राट्को उन्हें ज़ब्त कर लेनेका सदा अधिकार था। टोडरमलके सामने जागीरोंके ज़ब्तीका भी कार्य था। उसने जागीरोंको खालसामें सम्मिलित करनेका बड़ा यत्न किया। तो भी अनेक जागीरदारोंने अपनी जागीरोंको बचा लिया। किन्तु ज्यों ज्यों उनका देहान्त होता गया उनमेंसे बहुतोंकी जागीरें खालसामें सम्मिलित होती गयीं। जिस प्रकार उमराओंको जागीरें मिलती थीं, उसी प्रकार विद्वानों और सैय्यदों इत्यादिको मद-देमाश या ऐमाकी भूमि दी जाती थी। इस प्रथामें अनेक दोष थे। अतएव इन भूमियोंको खालसामें सम्मिलित कर लेना अकबरके बड़े बड़े सुधारोंमें गिना जाता है। ऐमाओंकी ज़ब्ती पर बदाऊनीने* अपनी पुस्तकमें बहुत नाक भौं सिकोड़ी है।

---

*बदाऊनी द्वितीय २०७। केनेडीकी पुस्तकमें भी यह विषय अवलोकन करना चाहिये (The History of the great Moghuls I ३०४-६)

किन्तु उसकी लिखी बातोंमें तथ्यका अभाव नहीं है। वह लिखता है कि यदि इन ऐमादारोंके पास किसी भारी अमीरकी शिफ़ारिश अथवा घूस देनेकी सामर्थ्य न हुई, तो इनका पूरा सत्यानाश हो जाता था। सारांश यह है कि जागीरों और ऐमाओंको ख़ालसामें सम्मिलित करनेकी नीतिका कड़ा अनुसरण होता था।

बन्दोबस्तका नियम सम्राट् अकबरके लिए मौलिक न था। किसी न किसी रूपमें यह पहले भी था। भूमिकर निश्चित करने के लिए पैमाइश पहले भी होती थी। अलाउद्दीन खिल्जी और शेरशाह सूरीके विषयमें स्पष्ट शब्दोंमें पैमाइश अर्थात् मापका विवरण मिलता है। सम्राट् अकबरके लिए यह कोई नया सिद्धान्त नहीं था। किन्तु बन्दोबस्तकी सुव्यवस्थाके लिए पैमाइशके सिद्धान्तोंमें भी उसने अच्छा सुधार किया। 'अबुल-फ़ज़लने हिन्दुस्तान एवं कुछ अन्य देशोंके गज़ोंकी लम्बान इत्यादिके विषयमें लिखा है। पहले भारतमें भिन्न भिन्न प्रकारके गज़ (देखिये, ब्लाकमैन, द्वि० ६१) प्रचलित थे सम्राट्के शासनकालमें भी इकतीस वर्षों तक दो तरहके गज़ोंका प्रयोग होता था। अकबरशाही गज़ (४६ अंगुल) से कपड़े नापे जाते थे और इस्कन्दरी गज़ कृषिकी भूमि और मकानोंके नापनेके काममें आता था। सम्राट्ने कई प्रकारके गज़ोंके प्रयोगमें असुविधा और धोखे की सम्भावना देखकर सब कार्यों के लिए ४१ अंगुलका इलाही गज़ निश्चित किया। गज़के अतिरिक्त पटुवेका तनाव भी नापनेके काममें पहले आता था। इसमें यह दोष था कि भीगने अथवा सूखनेपर यह छोटा बड़ा हो जाता था, जिससे कभी कभी कृषकको अधिक कर देना पड़ जाता था और कभी राष्ट्रीय कर की हानि होती

थी। सम्राट्ने उन्नीसवें वर्षमें लोहेकी जंजीरोंसे संयुक्त बांसोंकी जरीब बनवायी, जिससे पैमाइशमें बड़ा सुभीता होता था। जरीबका ही बीघा होता था। एक बीघेमें ३६०० वर्गगज भूमि आती थी; बीघेका विभाग विस्वा, विस्वांश, तस्वांस, तपवांश और अंस्वांशमें होता था। किन्तु पैमाइशमें विस्वांशसे नीचे नहीं जाते थे। ६ विस्वांश तकका भूमि कर नहीं लिया जाता था। पर दस विस्वांशको एक विस्वेके बराबर समझ लेते थे। (एक विस्वेमें २० विस्वांश होते थे)। अकबरी बंदोबस्तमें भूमिकी पैमाइश इसी प्रकार गज, जरीब और बीघोंमें होती थी।

गज, तनाव (जरीब) और बीघाका निर्धारण हो चुकने-पर भूमिको उपजके अनुसार विभक्त किया गया था। चार प्रकारकी भूमि मानी गयी थी।

(१) पोलज भूमि जिसमें बारह महीने खेती होती थी।

(२) परौटी जो सालमें कुछ दिन अपनी उर्वरशक्तिपूर्ण करनेके लिए बिना खेती पड़ी रहती थी।

(३) चचार जो तीन चार वर्ष तक बिना जोती पड़ी रही हो।

(४) बंजर जो पांच या अधिक वर्षों तक न जोती बोयी गयी हो।

पैमाइश करके इन्हीं चारों विभागोंमें भूमिको विभक्त कर देते थे और फिर कर नियत किया जाता था। कर निर्धारणमें भूमिकी उर्वरशक्तिका तो ध्यान रखा ही जाता था भिन्न भिन्न प्रकारके अनाजोंके लिए भी करमें भिन्नता होती थी। प्रजा अनाज अथवा उसके मूल्य द्वारा राजकर दे सकती थी।

किन्तु तरबूज, अजवाइन, प्याज, तरकारियाँ, नील, पोस्ता, पान, हल्दी, सिंघाड़ा, सन या पटुआ, कचालू, बादरंग, गाजर, मूली, करेला, ककूर, तेंदू और ईख इत्यादिका कर नक़द में ही लिया जाता था। फिर खेतोंकी उपजको फ़सलके अनुसार असाढ़ी और सावनी* में विभक्त करते थे। दोनोंसे भिन्न भिन्न परिमाणमें कर लिया जाता था। यह कर तीन प्रकारकी पोलज भूमि (उत्तम, मध्यम, निकृष्ट) के उपजका औसत लगाकर निश्चित किया जाता था। औसतका तृतीयांश राजकरमें जाता था। अगले पृष्ठपर दी हुई सारणियोंसे दोनों फ़स्लोंकी उपज और करका कुछ परिचय मिल जायगा। [देखिये पृष्ठ १६९-७०]

भूमिकर केवल बोयी हुई भूमिका लिया जाता था। आमिल गुज़ारोंको यह आदेश था कि वह प्रति वर्ष कृषिके मार्गमें सुविधा करनेकी चेष्टा करें और कर केवल उतनी ही भूमिका लें जितनी जोती वोयी जाती हो। 'परौटी' भूमिका कर उतने ही समयका लिया जाता था जितने समय तक उसमें फ़स्ल होती थी। उतने समयके लिए परौटीका कर पोलजके समान ही लिया जाता था। जब अतिवृष्टि या बाढ़ इत्यादिके कारण भूमि तीन चार वर्षों तक विना जुती पड़ी रह जाती थी तो उसे चचार कहते थे। चेचारसे प्रथम वर्ष उपज साधारणतः $\frac{५}{१५}$ अर्थात् $\frac{१}{३}$ पांचवे वर्ष एवं आगेके वर्षोंमें लिया जाता था और फिर इसकी गणना 'पोलज' में होने लगती

* असाढ़ी और सावनीका रबी और खरीफ़के ही अर्थमें सम्भवतः आईन में प्रयोग हुआ है।

प्रति बीघा पोलज भूमिकी उपज—असाढ़ी

अनाज	उत्तम	मध्यम	निकृष्ट	तीनों का औसत	कर औसत का तृतीयांश)
गेहूँ	१८ मन	१२ मन	८ मन ३५ सेर	१२ मन ३८$\frac{1}{4}$ सेर	४ मन १२$\frac{3}{4}$ सेर
मसूर	८ मन १० सेर	६ मन २० सेर	४ मन २५ सेर	६ मन १८$\frac{1}{3}$ सेर	[1] २ मन ६ सेर
जौ	१८ मन	१२ मन २० सेर	८ मन १५ सेर	१२ मन ३८$\frac{1}{4}$ सेर	४ मन १२$\frac{1}{2}$ सेर
अलसी	६ मन २० सेर	५ मन १० सेर	३ मन ३० सेर	५ मन ७ सेर	१ मन २६ सेर
[2] [illegible] या चना	१० मन २० सेर	८ मन २० सेर	५ मन ५ सेर	८ मन १$\frac{1}{2}$ सेर	२ मन २७$\frac{1}{2}$ सेर
मटर	१३ मन	१० मन २० सेर	८ मन २५ सेर	१० मन २३ सेर	३ मन २३ सेर
तूर धान	२४ मन	१८ मन	१४ मन १० सेर	१८ मन ३० सेर	६ मन १० सेर

[1] भिन्न संख्या पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। कृषकको निश्चित कर नक़द या अन्नके रूपमें ही देना होता था।

[2] यह तालिका आईन-ए-अकबरी की तालिकाओंको संक्षिप्त करके लिखी गयी है। पूरी तालिकाओंको स्थानाभावके कारण नहीं दे सकते।

प्रति बीघा पोलज भूमिकी उपज—सावनी

अनाज	उत्तम	मध्यम	निकृष्ट	औसत तीनों का	कर (औसत का तृतीयांश
गुड़	१३ मन	१० मन २० सेर	७ मन २० सेर	१० मन १३½ सेर	३ मन १८ सेर
रूई	१० मन	७ मन २० सेर	५ मन	७ मन २० सेर	२ मन २० सेर
शालीमुशक्किन	२४ मन	१८ मन	१४ मन १० सेर	१८ मन ३० सेर	६ मन १० सेर
मामूलीधान	१७ मन	१२ मन २० सेर	९ मन १५ सेर	१२ मन ३८½ सेर	४ मन १३ सेर
मूंग	१० मन २० सेर	७ मन २० सेर	५ मन १० सेर	७ मन ३० सेर	२ मन २३½ सेर
उर्द	” ”	” ”	” ”	” ”	” ”
ज्वार	१३ मन	१० मन २० सेर	७ मन २० सेर	१० मन १३½ सेर	३ मन १८ सेर
सांवा	१० मन २० सेर	८ मन १० सेर	५ मन ५ सेर	८ मन १ ५/६ सेर	२ मन २७½ सेर
कोदों	१७ मन	१२ मन २० सेर	९ मन १५ सेर	१२ मन ३८½ सेर	४ मन १२½ सेर
मेंडुवा	११ मन २० सेर	९ मन	६ मन २० सेर	९ मन	३ मन

थी। इसी प्रकार बंजर भूमिसे * प्रथम वर्ष एक या दो सेर प्रति बीघा, द्वितीय वर्ष ५ सेर, तृतीय वर्ष उपजका छठा भाग, चतुर्थ वर्ष चतुर्थांश सहित एक दाम और पांचवें वर्ष से पोलजके समान कर लिया जाता था। अर्थात् किसी भी प्रकारकी भूमि हो पाँचवें वर्ष पोलजमें उसकी गणना होने लगती थी। तब कर उगाहनेमें केवल फस्लका भेद रह जाता था। अर्थात् जितने समय तक खेतमें फस्ल रहती थी उतनेके लिए पोलजके समान कर लिया जाता था। अबुलफजल ने बंजर भूमिके असाढ़ी और सावनी करका पञ्चवार्षिक चक्र दिया है। पहले उसीके अनुसार कर लिया जाता था। पर बादको सम्राट्ने उपर्युक्त हिसाबसे ही कर लेनेका नियम कर दिया, जिससे प्रजाका बड़ा लाभ हुआ। पहिलेके पञ्चवार्षिक चक्रमें अबुलफ़जलने गेहूँ, जौ, मसूर, अर्जन, अलसी, मूंग, ज्वार, कोदो, सांवा आदिके अतिवृष्टि और बाढ़के समयके करोंका उल्लेख किया है। चार वर्षोंतक नियम बद्ध वृद्धि की जाती थी और पांचवें वर्षसे पोलजके बराबर कर लिया जाने लगता था।

अकबरके राजत्वकालमें बहुत से बुद्धिमान कर्मचारी समय समयपर भिन्न भिन्न पदार्थों के मूल्योंका विवरण रखते थे और उन्हीं विवरणोंके आधार पर बलपूर्वक अनाजोंका मूल्य निश्चित किया जाता था। पूर्व वर्णनानुसार प्रत्येक बीघा पोल-जका कर नियत किया गया। बड़े बलपूर्वक हठेसे पौधोंमें

---

* बन्जरके इस करके हिसाबसे कभी कभी अन्याय भी होता था। कहीं कहीं की (जंगल और [illegible]) भूमिके [illegible] हो जाने पर भी बन्जरके ही हिसाब से कर लिया जाता था।

वर्ष तकके भूमिकर सम्बन्धी अंकोंको एकत्रित किया गया था। अबुलफ़ज़लने आगरा, इलाहाबाद, अवध, दिल्ली, लाहौर * मुलतान और मालवा इन सूबोंके भिन्न भिन्न अनाजोंके असाढ़ी और सावनी करोंका वार्षिक विवरण इन १९ वर्षोंका दिया है। सम्राज्यकी वृद्धिके साथ साथ धीरे धीरे प्रतिवर्षके प्रचलित मूल्योंका पता लगाना कठिन हो गया। अतएव करको नक़द रुपमें निश्चित करनेमें देरी तो प्रायः हो ही जाया करती थी। कृषक लोग करकी अधिकताके कारण और जागीरदार लोग बकाया (अवशिष्ट कर) के कारण असन्तुष्ट थे। सम्राट्ने इन त्रुटियोंको दूर करनेके लिए दश वार्षिक बन्दोबस्त चलाया। १५ वें से २४वें वर्ष तकके एकत्रित कर-को जोड़कर दससे भाग दिया गया और जो औसत आया वही वार्षिक भूमिकर नियत हुआ। २०वें से २४वें वर्ष तकके एकत्रित करोंका हिसाब बहुत ठीक ठीक लगाया गया था, परन्तु उसके पहिलेके पांच वर्षोंका हिसाब विश्वस्त पुरुषोंके निर्धारणानुसार मान लिया गया था। प्रति वर्षकी सर्वोत्तम फस्लको ग्रहण किया था और उसीके अनुसार भूमिकर नियत किया था। इस दश वार्षिक बन्दोबस्तमें जो कर नियत हुआ वही पांच वर्ष बाद स्थायी कर दिया गया था। यद्यपि सम्राट्-को इसे घटाने बढ़ानेका अधिकार सदा था ही, तो भी वास्तव-में वह लगभग दवामी बन्दोबस्त (Permanent Settlement) की भांति था। टामस और नोअर इत्यादिका कहना है कि

---

* मुल्तानका सम्पूर्ण एवं अन्य किसी किसी सूबे के कुछ कुछ अनाजोंका कर केवल दस वर्षका दिया है।

यह बन्दोबस्त ठीक न था, क्योंकि भारत जैसे देशमें जहां विशेष शीत, गरमी अथवा वर्षा होनेसे खेतको हानिकी सम्भावना थी। वहाँ ऐसा बन्दोबस्त कृषकोंको कष्टदायक अवश्य हुआ होगा। इसमें कुछ तथ्य भी है। पर इतना ध्यानमें रखना चाहिये कि इस परिपाटीके पहलेके दस वर्षोंकी वसूलीका ही औसत लगाकर यह भूमिकर निश्चित किया गया था और इन वर्षोंकी फसल, जहाँ तक पता चलता है, सामान्य श्रेणीकी थी। इससे सम्भव है कि इस परिपाटी द्वारा कृषकोंको कोई भी हानि न पहुँची हो। इसके अतिरिक्त सम्राट्की आज्ञा थी कि दैनिक आपत्तियोंकी सूचना * उसको बराबर मिला करे। इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि आवश्यकतानुसार वह भूमिकर छोड़ दिया करता था। परन्तु अबुलफज़लने माफीका एक ही दो बार उल्लेख किया है। अकबरका एक तिहाई भूमिकर, औरोंसे अधिक था। पर उसने, जैसा ऊपर लिख आये हैं, अनेक करोंको बन्द भी कर दिया था। भूमिकर विभागके इन सुधारोंसे उसने मुसलमानों और हिन्दुओंको एक श्रेणीमें कर दिया था। अकबरके इन सुधारोंसे मुसलमान और हिन्दुओंके दीयमान करोंमें कोई अन्तर नहीं रह गया था। यह इस्लाम के कानूनके नितान्त प्रतिकूल था।

अकबरका दश वार्षिक बन्दोबस्त उपर्युक्त रीतिके अनुसार हुआ। इस बन्दोबस्तके पूर्वके भूमिकरका नकशा आईनमें १९ वर्षोंके लिए विस्तृत रूपमें दिया है। आगेके पृष्ठके संक्षिप्त

---

*तुज़के जहाँगीरीमें भी जहाँगीरने अपने वाक़या नवीस-के भेजे हुए समाचारका वर्णन किया है। उससे इस नियम की पुष्टि होती है।

नकशेमें आईनके बड़े नकशेका अत्यन्त सूक्ष्म परिचय मिलेगा। यद्यपि उस नकशेको विस्तारपूर्वक यहां उद्धृत करना असम्भव है तो भी थोड़ा सा उद्धरण करना आवश्यक प्रतीत होता है। आईनके अंकोंमें परीक्षा करने पर निश्चित व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है (देखिये पृष्ठ १७५-७६)।

आगरेकी दोनों फस्लोंके विषयमें जो अंक उद्धृत किये गये हैं उन्हींके अनुसार इलाहाबाद, अवध, दिल्ली, लाहौर, मुल्तान और मालवाके सूबोंसे भी थोड़ा बहुत अंतरके साथ (अंतर प्रायः अवश्य ही रहता था) कर उगाहा जाता था। उनका विस्तृत विवरण आईनमें देखने योग्य है। दश वार्षिक बन्दोबस्त (आईन १५) का वर्णन करके ब्लाकमैनने इलाहाबाद, अवध, आगरा, अजमेर, दिल्ली, लाहौर, मालवा और मुल्तानके भिन्न भिन्न विभागोंका कर दोनों फेस्लोंके विभिन्न अनाजोंके अनुसार दिया है। इन चक्रोंकी परीक्षा करके १९ वर्षवाले चक्रोंसे तुलना करने पर कोई विशेष अन्तर नहीं देख पड़ता। आईन-ए-अकबरीके अंकोंसे प्रकट होता है कि उस समयका भूमिकर संगठन आधुनिक पद्धतिकी तुलनामें अत्यंत पेंचदार था। आज कलकी पद्धतिके आधार पर विचारनेसे यह समझमें नहीं आता कि सम्राट् अकबरकी पेचीदा पद्धतिका प्रबंध किस प्रकार होता था, पर इतना तो असन्दिग्ध जान पड़ता है कि यह भिन्न भिन्न अनाजों और फ़सलों इत्यादिके अनुसार निर्धारित पद्धति वैज्ञानिक कड़ाईसे (perfect exactness) नहीं प्रयुक्त होती थी। देखनेमें यह पद्धति इतनी पेचदार जँचती है, परन्तु इसमें असाध्यताका लेश नहीं था। तुलनात्मक दृष्टिसे यह पद्धति भी सौन्दर्यके साथ व्यवहृत होती थी। वास्तव-

प्रान्त	फ़स्ल	अनाज	प्रति बीघा पोलजका कर दामोंमें				
			छठावर्ष	१०वां वर्ष	१५वां वर्ष	१९वां वर्ष	२४वां वर्ष
आगरा	असाढ़ी	गेहूँ	९०	५०से ६०तक	३८ से ४८ तक	३२ से ५० तक	५२ से ११६ तक
		जौ	८०	३८ ५०	२१-२८	२०-४०	४६-६०
		पोस्ता	१६०	१४०	१३०	१००-१३०	१००-१३०
		अलसी	...	६०-८०	२४-३०	२४-२८	२४-४२
		मसूर	६०	३२-५०	१५-२४½	१५-२३	२५-५०
		मटर	...	...	१५-४२	१७-२८	३२½-५६
		कुरधान	६०	५०-६०	३६-४८	३२-४२	५०-७०
		अजवाइन	८०	८०	७०	७०	७२-७४

प्रान्त	फस्ल	अनाज	प्रति बीघा पोलजका कर ऽ दामोंमें				
			६ठा वर्ष	१०वां वर्ष	१५वां वर्ष	१६वां वर्ष	२४वां वर्ष
आगरा	सावनी	ईख *	...	१८०-२००	१५०-२००	१६०-२००	८०-२००
		धान	७०	५२-६०	३६-४५	३४-५०	४६-४८
		रुई	१२०	११०	६०	७०-६०	४४ ६०
		ज्वार	५०	४०-४८	२६-३०	२२-३४	३४-५३
		नील	१४०	१४०	१२४-१३२	१३६-१४०	१३६-१४०
		पटुआ या सन	८०	८०	७०-७६	६०-७६	६०-८४
		हल्दी	...	...	१००	१००	१००
		कचालू	...	...	७०	५४-७०	६०

* यह अंक पौढा ईखके हैं। साधारण ईखका कर इससे कम होता था।

ऽ श्रीयुक्त दत्त महाशयका कहना है कि निश्चित कर जितना था उससे कहीं न्यून परिमाणमें मुगलोंके समयमें कर वसूल किया जाता था।

में यह प्रणाली उस समयके लिए ठीक भी थी। आजकल भी उसीके मूलतत्वोंका अनुसरण भूमिकरके संगठनमें किया जाता है। किन्तु दोनों समयोंमें महान् अंतर है। आधुनिक प्रणालीमें उससे अधिक सीधापन है। अंतर दोनोंमें यह है कि आजकल प्रायः मिट्टी के विभिन्न भेदों और भावी आयकी सम्भावनाके आधारपर कर नियत किया जाता है किन्तु अकबरके समयमें उत्पादनशक्ति और भिन्न भिन्न अनाजोंके भेदोंके अनुसार कर लगाया जाता था।

सम्राट्ने कर वसूल करनेके लिए बहुत से कर्मचारी नियुक्त किये थे। यह प्रायः तीन प्रकारके थे:—(१) कर वसूल करनेवाले; (२)*बन्दोबस्तके कागजात रखनेवाले और वसूल करनेवाले कर्मचारियोंके निरीक्षक; तथा (३) रुपया और हिसाब रखनेवाले। अब नीचे भूमिकर सम्बन्धी कुछ कर्मचारियोंका वर्णन दिया जायगा। (१) प्रत्येक ग्रामका मुखिया या चौधरी कर वसूल करनेमें सहायता करता था। ग्राममें कुछ भूमि मुखियाके लिए कृषक लोग अलग कर देते थे, पर बादको सरकारकी ओरसे भी कुछ माल गुजारीमेंसे उसको मिलने लगा। कृषकोंको अधिकार था कि वह कर स्वयं आमिलगुजारके यहाँ जमा कर आवें और इसके लिए उन्हें उत्तेजित भी किया जाता था। (२)+पटवारी मुखियासे बिलकुल स्वतंत्र था। वह

*सम्राट् के बन्दोबस्तका जब आरम्भ हुआ था उस समय पैमाइश राजधानीके समीपसे आरम्भ हुई थी।

+पटवारीका काम प्रायः आधुनिक पटवारीके ही समान होता था।

ग्रामका कागज़ पत्र रखता था और प्रत्येक कृषककी भूमि एवं करका व्यौरेवार विवरण रखता था। उसे कृषक और सरकार दोनोंसे वेतनमें भूमि या रुपया मिलता था। कई गावोंका एक ज़ैल* होता था। (३) कर वसूल करनेका काम तहसीलदारको सौंपा गया था (४) थानेदारका कार्य वहुत कुछ पुलिसके सम्बन्धका था। किंतु उसे भी पैमाइश इत्यादिमें सहायता पहुँचानी पड़ती थी। चार थानेदारोंका दैनिक भत्ता (मासिक वेतनके अतिरिक्त पैमाइशके समयका आईनमें लिखा है। वहीं वितिक्ची और नापनेवालोंका भी भत्ता लिखा है। यह भत्ता (आटा; तेल, चावल तरकारियोंका मूल्य) सम्भवतः भोजनादिके लिए दिया जाता था। (५) दारोग़ा ग्राम सम्बन्धी कागज पत्रोंकी जांच करता था और अपने ज़ैलका हिसाव रखता था। आजकल प्रायः थानेदारको ही दारोग़ा कहते हैं। पर उस समय यह दो भिन्न कर्मचारी थे। दारोग़ा कई प्रकारके भी होते थे। मालगुज़ारीके सम्वन्धी कार्योंसे लेकर शासनके प्रवंध सम्बन्धी अन्य कार्योंके लिए भी वड़े वड़े दारोग़ा हुआ करते थे। (६) आमिलगुज़ारका पद वड़ा भारी था। यह वड़े महत्वका पद था। परगने भरकी कृषि और भूमिकर वसूलीका काम इसीके सिपुर्द थे। आज-कलके शब्दोंमें आमिल गुज़ारको कलक्टर कह सकते हैं। आमिल गुज़ारको यह आदेश था कि "तुम लोगोंको सव कामों में सत्यवादी और उत्साहशील होना चाहिये। ऐसा वासस्थान और सुभीता रखना चाहिये कि सभी तुम्हारे पास आकर

---

* आधुनिक "तपा" ज़ैलका ही रूपान्तर सा है।

अपना वक्तव्य कह सकें। ऐसी चेष्टा करनी चाहिये जिससे देशमें मूल्यवान् द्रव्य पैदा हो सकें। जो लोग उन कार्यों में परिश्रम करें, उनके उत्साहित करनेके लिए उनको राजकरमें से कुछ भाग छोड़ देना चाहिये। इस बातकी ओर दृष्टि रखनी चाहिये कि पड़ी हुई भूमि कृषित होवे, और कृषित भूमि पड़ती न रहे। दरिद्र किसानोंको राजकोशसे सहायता देनी चाहिये और उसको क्रम क्रमसे वसूल करना चाहिये। ग्राम मण्डल अथवा कर्मचारीका भरोसा न करके स्वयं न्याय सङ्गत रूपसे भूमिको नाप कर, कर देनेवाले किसानोंसे स्वयं मिलकर उनके मुखसे उनकी आपत्तियोंको सुनकर सहृदयताके साथ कर संग्रह करो। ऐसा नियम मत बनाओ कि राजकरमें † रुपया ही लिया जायगा। असमयमें राज कर मत लो। राज करके

---

† ग़ल्लेमें कर चार प्रकार लिया जाता था। प्रथम; कनकूट फ़स्लके समयमें ही निरीक्षण करके खेतको विभक्त कर देते थे। इस कार्यके निपुण लोगोंका कहना था कि इस प्रकार भी कर बिल्कुल ठीक ठीक नियत किया जा सकता था। यदि कुछ सन्देह होता था तो उत्तम मध्यम और निकृष्ट तीनों तरहकी कुछ फ़स्लकी उपजको तौलकर सम्पूर्ण करका अनुमानतः विभाग कर लेते थे। द्वितीय; बटाई (या भावली) इसमें फ़स्ल कट जाने पर अनाज खलियानोंमें निश्चयानुसार बँटा लिया जाता था। तृतीय; खेत बटाई: इसमें बोनेके बाद ही खेतको बँटा लेते थे। चतुर्थ; लांग बटाई: फ़स्लको काट चुकने पर बोझोंमें बांध देते थे और उन बोझोंको ही निश्चयानुसार बँटा लिया जाता था।

अतिरिक्त उपहार स्वरूप कुछ मत लो। लोगोंकी अवस्था क्या है, बाजारकी दर क्या है, खजानेमें कितना जमा है, दरिद्रोंकी अवस्था कैसी है इत्यादि विषयोंकी प्रति मास रिपोर्ट करते रहो। सबसे बड़ी बात यह है कि प्रति वर्ष कृषकोंकी अवस्था उन्नत होती रहे; इसका ध्यान रखो; उनको सन्तुष्ट करनेका यत्न करते रहो, उनके बंधु होकर रहो। याद रखो, कि कृषकोंका उपकारसाधन ईश्वरकी तुष्टिका उपाय है *। ” आमिल गुजारकी सहायताके लिए जैलमें दारोगा, तहसीलदार इत्यादि थे ही। परगनेमें भी उसकी सहायताके लिए कई कर्मचारी रहते थे। (७) शिकदार कृषकों और तहसीलदारोंसे रुपया लेकर सरकारी कोशमें जमा करता था। (८) कारकुन या वितिक्ची (लिपिक्ची या मुनीम) कानूनगोसे दस सालवाला नकशा बनवाता था। किसानोंकी जमाबंदी, गावोंकी चौहद्दी, बजर तथा उपजाऊ भूमिका ब्यौरा, थानेदार मुंसिफ और कृषकोंकी सूची इत्यादिका लेखा वह रखता था। कारकुनको पटवारी और मुकद्दम अथवा चौधरी से मालगुजारीके नकशे और रसीदें लेनी पड़ती थीं। आय व्ययकी वही रखना, भिन्न भिन्न खेतोंमें बोये जानेवाले अनाजोंको लिखना और महीनेके अंतमें थैलियोंमें बंदकरके ‡ जमींदारकी मुहरसे सदर खजानेमें रुपया भेजना इसका कर्त्तव्य था। (९) फ़ोतादार या कोशा-

---

* वह परगनेका न्यायाधीश भी था। फौजदारी अभियोगोंमें फौजदारके प्रति उत्तरदायी था, और मालके मुक़दमोंमें उसका निरीक्षण कर्त्ता दीवान था।

‡ आमिलगुजार अथवा ज़मींदारमें अंतर नहीं समझना चाहिये।

ध्यक्ष मालगुजारी के रुपये रखता था और बही काटता था पर इसे दीवानके आज्ञापत्र बिना व्यय करनेका अधिकार नहीं था। (१०) कानूंगो बिलकुल स्वतंत्र था। वह स्वतंत्र रूपमें सम्राट् के पास परगनेकी रिपोर्ट भेजता था। ज़मींदार इत्यादि-के कार्योंका वह एक प्रकारसे निरीक्षक सा था। (११) कानूंगोके निरीक्षणके लिए अमीन होता था। (१२) यद्यपि फौजदार पुलिसका अफ़सर था तो भी उसे आज्ञा भंग करने-वाले व्यक्तियोंका दमन करके राजकर वसूल करनेमें प्रायः सहायता पहुँचानी पड़ती थी। अस्तु सम्राट् अकबरके समयमें भूमिकर सम्बन्धी कर्मचारियोंका अच्छा संगठन था और वह बहुत कुछ आधुनिक पद्धतिके समान था।

भूमिकर विभागके सम्पूर्ण सङ्गठन और उसके कर्म-चारियोंके सूक्ष्म वर्णनके बाद यह प्रश्न होता है कि कुल मिलाकर सम्राट्का राजकर था कितना? अबुलफ़ज़लने आईनमें इसका ब्यौरा दिया है। पर उसके तफ़सील-वारकी विवेचना करना कठिन है। इस विषयके पारंगत * विद्वानोंने कुछ कुछ विवेचना की है, पर इस क्षेत्रमें विशेष कार्य प्रायः कोरा ही पड़ा है। तथापि नीचेके नक़शोंसे सम्राट्के राजकरका कुछ परिचय अवश्य मिल जायगा (देखिये नक़शा ८) यह कर अकबरके बाद धीरे धीरे बढ़ता गया। यहां तक कि जो

---

* टामस (Rev. Resources), होई (Memoirs of Delhi) और लेनपूल (औरंगज़ेब) ने सूक्ष्म रीतिसे मुग़लोंके राज-करका विवरण और विवेचन किया है। इस विषयकी पूर्ण रीतिसे परीक्षा ऐसे ही [illegible] [illegible] [illegible] होनी [illegible]।

राजकर १५६४ में १८, ६४०,००० पौंड (अबुलफ़ज़ल) औः १६०५ में १९,६३०,००० पौंड (डि लायेट) था वह शाहजहाँवे शासनके अंतिम दिनोंमें (१६५५) ३००८०००० पौंड औः आलमगीरके समयमें ४३५५०००० पौंड १६९७ में (मैनक्सी) हो गया। इस करवृद्धिका एक प्रधान कारण यह था वि साम्राज्य आलमगीरके समय तक पहलेसे अधिक वृद्धिको प्राप्त कर चुका था। किन्तु उसके बाद विशाल मुग़ल साम्राज्य-के टुकड़े टुकड़े हो गये और एक बार फिर पन्द्रहवीं शताब्दी-की स्थितिका चित्र अट्ठारहवीं शताब्दीके भारतवर्षके सामने उपस्थित हो गया। धीरे धीरे सम्राट् अकबर की स्थापितकी राज्यश्रीका अन्त हो गया, पर उसकी राज्यव्यवस्थाके मूल तत्वोंका अंत नहीं हुआ। उसीके आधारपर वर्तमान शासन-प्रणाली भी निर्मित हुई है। सम्राट् अकबरके भूमिकर-सङ्गठनके सिद्धान्तोंमें वर्त्तमान प्रणालीने भी कोई विशेष अन्तर नहीं किया है। यहाँ तक कि आधुनिक कर्मचारियोंके कार्य इत्यादिके मूल सिद्धान्त भी बहुत कुछ अकबरी आधार पर हैं। यद्यपि सम्राटके पहले भी भूमिकरका संगठन अविदित नहीं था तथापि भारत के मध्यकालीन भू-कर विभागमें अकबरने विशेष और स्थायी सुव्यवस्थाको स्थान दिया। उसकी पूर्ण विवेचनाके लिए बहुत खोजकी आवश्यकता है। अतएव हम इतना ही लिखकर इस परिच्छेदको समाप्त करते हैं।

१२--सार्वजनिक हित चिन्तन

अकबरके समकालीन महाकवि तुलसीदासने लिखा है कि

'जासु राज प्रिय प्रजा 'दुखारी।
सो नृप अवशि नरक अधिकारी' ॥

सम्राट्ने भी अपने राजत्वका ऐसा ही आदर्श रखा था। उसे प्रजाके उपकार साधनमें ईश्वरकी तुष्टिका उपाय देख पड़ता था। अकबरका कहना था कि राजाका दिव्य अंश न्यया और सुशासनमें ही है। हिन्दू राजनीतिका प्राचीन सिद्धान्त था कि जो राजा प्रजाके मङ्गल साधनका उपाय नहीं करता वह सिंहासनके योग्य नहीं है। इस नीतिसे विचार करनेपर मानना होगा कि अकबर सिंहासनके उपयुक्त ही नहीं था, वरन् उसने सिंहासनको अलंकृत किया था। एक प्रसिद्ध इतिहासकारने सम्राट्के विषयमें इस प्रकार लिखा है कि "अकबर-जीवनकी निकुञ्जमें प्रजाके मङ्गल-साधन रूप सुन्दर फूल वृन्त वृन्तमें खिले थे। उसमें से सुगन्धि निकलती थी, मधुपकुल मधुर गुञ्जन करते थे, विहंगगण सुललित स्वरसे दिशायें पूर्ण करते थे। कौन इसकी सुगन्ध, सौन्दर्य और माधुर्य पर मुग्ध नहीं होगा?" भाषा यहाँ पर अलङ्कारिक है पर इसमें अतिशयोक्ति कुछ भी नहीं है। उसने प्रजाके मङ्गल साधनके लिए कोई बात उठा नहीं रखी। उसे पूरी सफलता नहीं हुई यह ठीक है। परन्तु इसका कारण अन्यत्र ढूँढना चाहिए। सम्राट्ने प्रजाका दारिद्र्य दूर करनेका सङ्कल्प किया था पर उसे सफलता न हुई। सम्राट् स्वयं कहता है कि "मैंने दारिद्र्यके प्रति विधानके लिए बहुत से उपाय बहुत से व्यक्तियोंके

हाथोंमें अर्पण किये थे; किन्तु, हाय, उन लोगोंके अर्थ लोभके कारण मेरे महत् उद्देश्य सिद्ध न हुए।" सिपहसालारको आदेश था कि वह प्रजाकी सुख समृद्धिका सदा ध्यान रखे। कोतवालको यह आज्ञा दी गयी थी कि वह अपने यहांके नागरिकों से पारस्परिक सहायता और एक दूसरेके सुख दुःखमें सहयोगका प्रतिबन्ध कराले; एवं प्रत्येक नागरिकके आय-व्यय पर दृष्टि रखे। बाजारकी दरको संयत रखनेकी चेष्टा करना और सोने चाँदीके सिक्कोंका मूल्य स्थिर रखनेका यत्न करना उसका कर्तव्य था। दीन प्रजाके हितकी ही दृष्टिसे कोतवालको आदेश रहता था कि सेर और गजके मानमें भिन्नता न होने पावे; एवं धनाढ्य लोग आवश्यकतासे अधिक पदार्थ मोल न लेने पावें, क्योंकि इससे धनहीन प्रजाकी हानि थी। आलसियोंको काममें लगानेका भी उसे आदेश था। देश और प्रजाकी आर्थिक उन्नतिपर सम्राट् का बड़ा ध्यान रहता था। सम्राट् के आमिलगुजार ऐसी चेष्टा करते थे जिससे देश में मूल्यवान् द्रव्य पैदा हों। जो लोग उन कार्यों में यत्नशील होते थे उनको उत्साहित करने के लिए राजकरमें से कुछ भाग छोड़ दिया जाता था। किसानोंको तकावीके रूपमें सहायता भी दी जाती थी। पड़ती भूमिको कृषि योग्य बनानेका यत्न होता था और ऐसी चेष्टा की जाती थी कि जिससे कृषि योग्य भूमि पड़ती न रहने पावे। यदि कोई किसान किसी बहानेसे अपने सामर्थ्य भर खेती करनेसे हिचकता था तो उसके बहानेको नहीं माना जाता था; प्रत्युत यही उद्योग होता था कि समर्थ कृषकोंसे अधिकाधिक खेती करायी जाय। कृषिके मार्ग में सुविधा रखनेके लिये सम्राट् ने आमिलोंको आदेश कर दिया था।

सम्राट्ने दूरवर्ती तुर्क और फ़ारस देशसे बड़े यत्नसे और बहुत व्यय करके विचक्षण कृषकोंको भारतमें बुलाया था और उनके द्वारा यहाँ अंगूर इत्यादि भाँति भाँतिके मधुर फलोंकी खेती करायी थी। पञ्जावमें आमोंकी वाटिकाएँ लगवा कर बहुत उन्नति की गयी थी। और भूमिकी उन्नतिके लिए बहुत से जलाशय, नहर और कुएँ बनवाये गये थे। अबुलफ़ज़लने लिखा है कि "भारतवर्ष बहुत विस्तृत महादेश है तो भी सब प्रदेश कर्षित होता है। दो मील पथ चलनेपर जन पूर्ण नगरी, ऐश्वर्यशाली मुहल्ले, निर्मल जल, आनन्ददायक श्यामल शस्यक्षेत्र और मनोहर सड़कें मुग्ध कर लेती हैं।" इसमें कुछ अतिशयोक्तिका आभास देख पड़ता है पर तथ्यका अभाव नहीं है। सारांश यह है कि अकबर भारतवर्षमें कृषिकी उन्नतिका बराबर उद्योग करता था। जिस प्रदेशमें विजन वन भूमि थी अथवा जो भूमि बहुत दिनोंसे पड़ती पड़ी हुई थी उसको सम्राट्ने इस प्रकारसे राजकीय व्ययसे एवं कृषकोंको प्रोत्साहित करके कृषियोग्य कर दिया। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उसे इस कार्यमें पूरी सफलता हुई।

उस समय भी प्रजा दरिद्र थी। और इस दरिद्रताका परिणाम यह होता था कि एक वर्षकी ही अनावृष्टिसे प्रजाको अकालका पूरा अनुभव होने लगता था। अकबरके शासनकालमें १५५६, (उत्तरी भारतमें), १५७३-४ (गुजरातमें), * १५८३ या १५८४ (?) १५९५-९८ (हिन्दुस्तान भरमें)

* १५८३ या १५८४ का अकाल कड़ा नहीं था। केवल मंहगी पड़ी थी।

ईसवीमें अकाल पड़े थे। सन् १६३० के अकालके विषयमें एक इतिहासकारने लिखा है कि कुत्तेका मांस बकरेके गोश्त-के स्थानपर बिकता था और बिकाऊ आटेमें हड्डियाँ चूर्ण करके छोड़ दी जाती थीं। यह सम्भव है अकबरके समयमें भी ऐसा हुआ हो क्योंकि १५९५-९६ के अकालके* विषयमें तो लिखा है कि आदमी आदमीको खा डालता था। सड़कें भी मुर्दे पड़े रहनेसे बड़ी भयावह हो गयी थीं। सम्राट्ने उस अकालमें अकाल पीड़ितोंकी सहायताका प्रबन्ध किया और यह काम शेख फ़रीद बुख़ारी (बादको जिसे मुर्तजा खां कहने लगे) की अधीनतामें होने लगा। पिछले एक परिच्छेदमें कह आये हैं कि सम्राट् ने अन्न-कोठारोंका आयोजन किया था। इन अन्न कोठारोंसे बड़ा लाभ होता था। अकालोंके समयमें तो इन अन्न कोठारों द्वारा सैकड़ोंके जीवन बच जाते थे। अकाल सहायताकी जिस प्रथाका सम्राट् ने अनुसरण किया उसका पालन बादके मुग़ल सम्राट् भी करते थे। शाहजहांके विषय-में लिखा है कि १६३० में अकाल पीड़ितोंकी सहायताके लिए अनेक भोजनालय और दानालय (दान करनेके लिए) स्थापित कर दिये थे, एवं इसके अतिरिक्त प्रति सोमवारको ५००० रुपये बुरहानपुरमें बांटे जाते थे जो २० बारके मिलकर एक लाख रुपये हो जाते हैं। अहमदाबादमें भी ५००० रुपये बाँटनेकी आज्ञा थी। राजकर भी ७० लाख रुपयों तक छोड़ दिया था। अस्तु, मुग़ल सम्राटोंकी नीति अकाल सहायताकी ओर प्रवृत्त थी। सम्राट् अकबरके विषयमें लिखा है कि उसने भोजन

---

* १६३० के विषयमें भी यही बात लिखी है।

चाँटनेका अच्छा प्रवन्ध किया पर अकालकी कठोरताको अच्छी तरह दूर न कर सका। श्रीयुत चार्ल्स मैकमिनने अपनी पुस्तकमें (Famine truths, halftruths, untruths) अंग्रेज़ोंसे पहलेके समयको भीषण सिद्ध करनेकी चेष्टा की है, किन्तु वह पुस्तक स्वयं भीषणताके दोषसे पूर्ण है और उसके प्रत्येक पृष्ठसे यही टपकता है कि ग्रन्थकारने पुस्तककी रचना पक्ष-पातकी दृष्टिसे की है। उन्होंने श्रीयुत दत्त महाशयकी इन वातोंका अपूर्ण और एकपाक्षिक (Onesided) प्रमाणोंके आधार पर खण्डन करनेका प्रयत्न किया है। किन्तु दत्त महाशयकी बातें पूर्णतः सत्य मालूम होती हैं। श्रीयुत दत्तने लिखा है कि अंगरेज़ोंके पहले अकालोंकी न तो इतनी अधिकता ही थी और न कठोरता ही। दत्त महाशयका यह कहना बिल्कुल ठीक है कि मुग़ल सम्राटोंने कृषिको फलवती बनाया। इसके पर्य्याप्त प्रमाण मिलते हैं। सारांश यह है कि सम्राट् अकबर और उसके कुछ वंशजोंका भी ध्यान कृषिकी उन्नति और प्रजाकी सहायता एवं रक्षाकी ओर विशेष था। दुर्भिक्षों-के समयमें चारों ओर बहुत से कर्मचारी और धन भेजकर प्रजाकी सहायताकी जाती थी। राजकरमेंसे भी बहुत सा छोड़ दिया जाता था। एवं खेतीके जलप्लावित होनेपर किसानोंको उस वर्ष का कर छोड़कर और और वर्षोंमें धीरे धीरे उसको वसूल करते थे। सम्राट्ने अनेक स्थानोंपर दरिद्राश्रम स्थापित किये थे, जहाँ दीन दुखियोंको अन्न [1]

---

[1] फ़तेहपुर सीकरीमें हिन्दुओंके लिए 'धर्मपुर,' मुसल-मानोंके लिये 'खैरपुर' और हिन्दू योगियोंके लिये 'योगीपुर'

मिलता था। सम्राट् जब दरबारमें बैठता था अथवा राजपथ पर निकलता था उस समय दरिद्र मनुष्योंमें धन वितरण किया जाता था, एवं फ़तेहपुर सीकरीकी अर्थ-पोखरी (अनूप तालाब) से बिना किसी भेदके रुपये बँटते थे। सम्राट्का शरीर, सौर-जन्मदिवस (अबनका पहला दिन) एवं रजबकी पाँचवीं तारीखको, विविध बहुमूल्य रत्नों और पदार्थोंके साथ तौला जाता था (ग्लैड्विन पृष्ठ १८५-६)। अबुलफ़ज़लने लिखा है कि दीन प्रजाको लाभ पहुँचानेका यह एक मार्ग था; क्योंकि यह सब रत्न और पदार्थ बाँट दिये जाते थे। 'साल-गिरह' की इस धूममें बहुत से पशुपक्षियोंका भी दान किया जाता था; एवं विविध पशुपक्षियोंको सदाके लिए मुक्त कर दिया जाता था। तुलादानकी यह प्रथा मुग़लोंके लिए मौलिक न थी। हिन्दुओंमें भी बल्लालसेनके 'दान सागर' और चन्द्र-शेखरके 'विवाद रत्नाकर' में तुलादानका विवरण मिलता है।

इस प्रकारकी उन्नति, अकालपीड़ितोंकी सहायता और दीन प्रजाका दुःख निवारण सदा अकबरके ध्यानमें रहता था। उसने रोगियोंकी चिकित्साका भी कुछ प्रबन्ध किया था; पर इस विषयमें किसी विस्तृत आयोजनका पता नहीं चलता। वह कभी कभी अपने कर्मचारियोंकी मरहम पट्टी अपने हाथों-से करता था। युद्धमें आहत और बन्दी किये हुए विद्रोहियोंकी * भी चिकित्सा करानेका उसने प्रबन्ध किया था। सम्राट्ने

नामक आश्रम खुले थे, जिनमें सैकड़ों मनुष्य प्रतिदिन आते और राज्यके व्ययसे आहार पाते थे।

* श्री० बंकिमचन्द्र लाहिड़ीका 'सम्राट अकबर'।

शिक्षा पर भी ध्यान रखा था, किन्तु राज्यकी ओरसे प्रजाके शिक्षाकी कोई विशेष योजना नहीं थी। आईनमें अबुलफजल-ने लिखा है हिन्दुस्तानमें शिक्षालयोंकी विशेषता है। शिक्षा-पद्धतिमें सम्राट्ने कुछ सुधार भी किया। सम्राट्के चलाये हुए नियमोंसे विद्यालयों पर " नया प्रकाश " और मद्-रसों पर "चमकीली ज्योति" का विकास हुआ। आरम्भिक शिक्षामें वर्णमाला और संयुक्ताक्षर सीखना और नीतिके वाक्योंका अध्ययन करना सम्मिलित था। अध्यापकको नित्य प्रति बालकोंके अक्षर ज्ञान, शब्दार्थ, पद्यशिक्षा और उद्धरणी-पर विशेष ध्यान देनेका नियम था। आरम्भिक शिक्षाके अतिरिक्त बालकोंको नीति अङ्कगणित, कृषि, मान विद्या, ज्यामिति, ज्योतिष, वैद्यक,* अर्थशास्त्र, शासनकला, तर्कविद्या, इतिहास एवं तात्रिपायी, रियाजी और इलाहीके अध्ययनका विधान था। इन विद्याओंको क्रम क्रमसे पढ़नेका नियम था। संस्कृत विद्यार्थियोंको व्याकरण, न्याय और पातञ्जलि पढ़ना पड़ता था। सम्राट्के शिक्षा विषयक सुधार भी बदाऊनीको अच्छे नहीं लगे। उसने लिखा है कि "सम्राट् के समयमें अरबी भाषाका अनुशीलन तथा मुहम्मदी आईन, आचार पद्धति और कुरानका पाठ दोषावह; एवं दर्शन, चिकित्सा, गणित, काव्य, उपन्यास और ज्योतिष पढ़ना अत्यावश्यक समझा जाता था।" बदाऊनीके इस लेखसे अबुलफ़ज़लके विवरणकी पुष्टि होती है। बदाऊनीके असन्तोषका कारण यही था कि उसके संकुचित हृदय में सम्राट् के उदार

---

* इसे आधुनिक अर्थशास्त्र से भिन्न समझना चाहिये।

विचारोंको सहन करनेकी सामर्थ्य नहीं थी। स्त्री शिक्षा पर भी सम्राट्का कुछ ध्यान था। हरम के आयव्ययका हिसाब अवला कर्मचारिणियाँ रखती थीं। स्मिथ साहबको + तत्का-लीन शिक्षोन्नतिमें बहुत कुछ शङ्का है, लेकिन अबुलफ़ज़ल और बदाऊनीके वाक्योंके सामने स्मिथकी काल्पनिक शङ्का नितान्त निरर्थक है।

अकबरने शिल्पकी भी अच्छी उन्नति की थी। किन्तु जहां तक पता चलता है दरबारके प्रयोजनमें आनेवाले पदार्थों पर ही विशेष ध्यान दिया जाता था। दरी बनानेके लिए कई स्थानोंपर शिल्पशालाएं थीं। सम्राट्ने फ़ारस, मंगोलिया और यूरोपसे उनके बनानेके उपकरण मंगाये थे। सरकारी शिल्प शालाओंमें ऐसी सुन्दर दारियाँ तोपें और वन्दूकें बनती थीं कि उन्हें देखकर विदेशी यात्रियोंको विस्मय होता था। आगरा और फ़तेहपुर सीकरीमें बहुत बढ़िया क़ालीन इत्यादि बनते थे। पाटन (गुज़रात), बुरहानपुर (खानदेश) और बनारसमें सूती कपड़े बनते थे, एवं ढाका जिलेमें सोनार गांवके सूती वस्त्र तो सर्वोत्तम होते थे। सम्राट् काश-मीरमें दुसाले बनानेके कार्यको विशेष रूपसे प्रोत्साहित करता था लाहौरमें भी काशमीरी दुशालोंकी एक सहस्रसे अधिक * शिल्पशालाएं थीं। वहां एक विशेष प्रकारका दुशाला बनता था, जिसमें रेशम और ऊन दोनों मिले रहते थे। सम्राट् ने

+सम्राट्के समय में ही उर्दू भाषाका जन्म हुआ। राजा टोडरमल उर्दू के जन्मदाता कहे जाते हैं।

* सम्राट्ने चित्रकारीकी भी अच्छी उन्नति की थी। इसका विवरण आगे मिलेगा।

भारतमें रेशम और पशमीनेके वस्त्र बनानेके कामको भी बहुत उन्नतिको पहुँचाया था। मुग़ल दरबारके ही कारण सैकड़ों कारीगरोंकी जीविका चलती थी। यथा साध्य शिल्पकलाको प्रोत्साहित करनेका यत्न किया जाता था। साधारण घरेलू कारीगरियां तो सदाकी भांति उस समय भी प्रचलित थीं। व्यापार और वाणिज्यकी उन्नतिमें भी सम्राट् सयत्न रहता था। सन् १५८५ ईस्वीमें जब फ़िच (Fitch) नमक, हींग, अफ़ीम, सीसा, क़ालीन एवं विविध पदार्थोंसे लदी हुई १८० नौकाओंके साथ आगरेसे सात गांवको नदीके मार्गसे जा रहा था तो उसने मार्गमें इस देशकी कारीगरी और वाणिज्यको देखा था। पटनामें रुई, सूती कपड़ा, चीनी और अफीम इत्यादि तथा बंगालके टांडा नगरमें सूती कपड़ोंका व्यापार अच्छा था। इसी प्रकार "टेरी" ने देखा कि 'मुग़ल सम्राज्यमें विविध प्रकारकी सन्दूकें क़लमदान क़ालीन एवं अन्य अनेक प्रकार के पदार्थ मिलते थे।' अकबरने विदेशी वणिकोंको भारतमें* आनेको उत्साहित किया था। वह उनके साथ बहुत सौजन्य प्रदर्शित करके अत्यधिक मूल्य देकर सामान खरीदता था। उसका कहना था कि "यदि ऐसा न करें तो यह लोग भारतमें न आवेंगे और भारतीयोंको उन वस्तुओंके प्रस्तुत करनेके उपाय सीखनेका भी अवसर न मिलेगा।" व्यापार पर कर और चुङ्गियां भी अधिक न थीं। परन्तु तत्कालीन अर्थ शास्त्रके सिद्धान्तानुसार बाहर चांदी ले जानेका निषेध था। राजकर-के साथ आईनकारने गुजरातके[२] 'बन्दर' करका भी उल्लेख

* जहाँगीरने भी

[२] समुद्रका घाट

किया है जो अधिक नहीं है। सम्राट् इस तरहसे वाणिज्यकी वृद्धिका उपाय करता था। लोगोंका कहना है कि वह स्वयं व्यापार करता था। इस देशसे नील और सूती कपड़ा, ऊन बहुत बाहर जाता था। चीनसे चीना और वेनिससे शीशा भी यहाँ बहुत आता था। यूरोप, अफ्रीका, फारस, अरब, चीन, जापान और भारत महासागरके द्वीपपुञ्जसे व्यापार होता था। भारत-वासी भी दूर देशोंमें जाकर वाणिज्य करते थे। इस प्रकार प्रजाके दुःख निवारणके साथ साथ कृषि, शिक्षा, शिल्प और वाणिज्यपर भी सम्राट्का ध्यान था।

सम्राट्ने कला कौशलको बहुत उत्साहित किया, एवं निर्माणके कार्य्योंमें उसने उन्नति भी अच्छी की। फतेहपुर सीकरी इत्यादिके दिव्य भवनों और भिन्न भिन्न स्थानोंके अकबरी दुर्गों एवं अन्य निर्माणोंके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। सम्राट्ने कितनी ही नगरियाँ निर्माण करायीं कितने ही राजपथ प्रस्तुत कराये और कितनी ही पान्थ-शालाओंकी प्रतिष्ठा हुई। अनेक नहरें और जलाशय उसने खुदवाये; एवं अनेक प्रासादों, अट्टालिकाओं उद्यानों एवं अन्य निर्माणोंसे साम्राज्यको अलंकृत किया। इन सबके अति-रिक्त 'डाक' पर भी उसका ध्यान था। उसने देशभरमें डाक का प्रबन्ध किया। पांच पांच कोस, पर दो घोड़े और हरकारे नियुक्त किये, जिसे हिन्दीमें 'डाक चौकी' कहते थे। इनसे दर-बारसे ले जाने एवं बाहरसे डाक ले आनेका काम लिया जाता था। डाक हरकारे २४ घण्टेमें ५० कोस दौड़ जाते थे; एवं आगरेसे अहमदाबादको पांच दिनमें चिट्ठी पहुँचती थी। (स्मिथका कहना है कि यह वेग आधुनिक तेज़ीसे भी अधिक

है) विशेष समाचारोंको शीघ्र पहुँचानेके निमित्त घोड़ोंका उपयोग होता था। फ़रिश्ता कहता है कि चार सहस्र हरकारे सदा नियुक्त रहते थे, जिनमेंसे कुछ तो विशेष विशेष अवसरों-पर (जहां डाक नहीं थी) ७०० कोस दस दिनमें पहुँचाते थे (ब्रिग्स कहता है कि घोड़ों द्वारा १४०० मील १० दिनमें जाते थे)। लेकिन इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता कि इस डाकका उपयोग प्रजाके द्वारा भी कभी किया जाता था। जहां तक मालूम होता है इस डाक-चौकीका प्रयोग सदा सर-कारके ही कामोंके लिए होता था। अब अन्तमें केवल यही प्रकट करना है कि सम्राट्का ध्यान "सार्वजनिक हितचिन्तन" की ओर अधिक था। सम्भव है आजकलकी दृष्टिसे उस समय-के सार्वजनिक कार्योंमें कुछ त्रुटियां (और किन्हीं किन्हीं बातोंमें अत्यधिक यथा उस समय यात्राके उपकरण एवं डाक इत्यादिका प्रबंध प्रजाके लिए विशेष न था) रही हों, किन्तु इतना तो अवश्य है कि कुछ आवश्यक बातोंमें भारत तीन शताब्दी पहले अत्युत्तम स्थितिमें था; एवं सम्राट् अकबरका ध्यान प्रजाकी भलाईमें सदा निरत था।

१३—राजधानी और दरबार

एक इतिहासकारने लिखा है कि मुग़ल सम्राटोंकी राजधानियोंके इतनी जल्दी जल्दी परिवर्तित होते रहनेका कारण यह भी था कि वह लोग मध्य एशियाकी घुम्मकड़ जातिके वंशज थे। मुग़ल राजधानी दिल्ली, आगरा और लाहौरके

केन्द्रोमें घूमा करती थी। एवं मुगल सम्राटोंका बहुत समय तो खेमोंमें बीतता था। इन सम्राटोंकी छावनी इतनी दिव्य और प्रभामय होती थी कि उसका विवरण पढ़कर विस्मय होता है। मुग़ल छावनीको इतिहासकारोंने यथार्थतः "रमता दिल्ली" नाम दिया है। अकबरकी राजधानी भी सदा एक स्थानपर न थी। उसके समयमें साम्राज्यका मुख्य केन्द्र भिन्न भिन्न अवसरोंपर दिल्ली, आगरा, फ़तहपुर सीकरी और लाहौरमें रहा। दिल्लीमें राजधानी बहुत कम कालके लिए रही, पर जहाँ तक ज्ञात होता है आगरेपर ही सम्राट्की विशेष ममता थी। आगरेके समीप सीकरी*को सम्राट्ने फ़तहपुर नाम रखकर १५७३ में अपनी राजधानी बनाया। पुनः १५८५ में राजधानी को मुहम्मद हाकिम मिर्ज़ा (अकबरका भाई और काबुलका सूबेदार) की मृत्यु एवं अन्य आवश्यक कारणोंसे पश्चिमोत्तरमें ले जाना पड़ा। लाहौर लगभग तेरह वर्ष तक (१५८५-१५९८) साम्राज्यका केन्द्र

---

* सूरदासने अकबरके बुलाने पर कहा था 'कहा मोकों सीकरी सों काम'।

† अकबरने शासनकी बागडोर १५६० में अपने हाथमें ली थी। तबसे १३ वर्षके बाद लगभग तेरह साल तक फतहपुर सीकरीमें और पुनः तेरह वर्ष तक लाहौरमें राजधानी रही। फिर आगरा राजधानी हुई और सात वर्ष बाद सम्राट्का देहान्त हो गया। ज्ञात होता है कि राजधानीके स्थानका परिवर्तन भी निश्चित समयके बाद निश्चित व्यवस्थाके अनुसार होता था।

रहा। उसके बाद सम्राट्की जीवनयात्राके अन्तिम दिनों में *
आगरेमें ही राजधानी रही और वहीं ईस्वी १६०५ की १७ वीं
अक्टूबरको अकबरका देहान्त हुआ। बर्नियरने अपनी भारत-
यात्राके वृत्तान्तमें दिल्ली और आगरेका अच्छा चित्र खींचा
है। भग्नप्रायः फतहपुर सीकरीसे उसे कोई काम नहीं था और
लाहौर (१६६५) उसके समयमें अपनी पहली प्रभाको बहुत
कुछ खो चुका था, क्योंकि लगभग दो तीन दशाब्दोंसे साम्राज्य
की राजधानी वहाँसे बिल्कुल उठ गई थी; एवं जिस दिल्ली-
का बर्नियरने वृत्तान्त, लिखा है उसका निर्माण अकबरके
बाद उसके पौत्र द्वारा हुआ था। उसने दिल्लीके गढ़, मकानों,
सड़कों, हाटों और भवनों एवं मंसबदारों और सम्राट्के
निवासादिके विवरणके साथ व्यापार इत्यादिके विषयमें
भी लिखा है। आगरा भी बहुत बातोंमें दिल्लीके समान था,
परन्तु बर्नियर लिखता है कि "हिन्दुस्तानके सम्राटों का प्रायः
निवासस्थान होनेके कारण अकबरके समयमें क्षेत्रफल,
उमराओं और राजाओंके प्रासादोंकी अधिकता, लोगोंके
पत्थर और ईटोंके बढ़िया निजी गृहोंकी अधिकता, एवं
कारवान सरायोंकी संख्या और सुविधामें दिल्ली से भी
आगरा जिसे अकबरने निर्मित करके अकबराबाद नाम दिया
था बढ़ कर है।...........यहाँ दिल्लीकी समथल और चौड़ी

*इसी बीच कुमार सलीमने अपने पिताके विरुद्ध राजद्रोह करके
इलाहाबादमें अपनी राजधानी बनाकर स्वयं सम्राट् बननेके निमित्त
सिक्के भी अपने नामसे ढाले थे, पर पिताने पुत्र पर प्रायः प्रेमसे ही
विजय प्राप्त कर ली।

सड़कोंकी कमी है..........पर उमराओं और राजाओंके भवनों एवं व्यापारियोंके पाषाण गृहोंके वीच वीचमें उद्यानों और वृक्षोंकी हरीतिमा देख कर नेत्रोंको अपार आनन्द प्राप्त होता है।" आगरेमें वर्नियरके समयमें डच लोगोंकी एक फैक्टरी और जेसुइट ईसाइयोंका गिरजाघर विद्यमान था। जेसुइट ईसाइयोंको अकबरने निमन्त्रित किया था। वह वहाँ रहते और पच्चीस तीस ईसाई कुटुम्बोंको पढ़ाया करते थे। सम्राट् उन्हें वार्षिक सहायता देते थे और उन्होंने दिल्ली एवं लाहौरमें गिरजाघर बनानेकी भी आज्ञा उन्हें दे दी थी। आगरे* के दुर्ग, राजभवन एवं अन्य सरकारी गृह दिल्लीसे अधिक भिन्न न थे। किन्तु इतिहासकारोंने सबसे बढ़कर फ़तहपुर सीकरीकी करुण कथा पर समवेदना प्रकट की है। सम्राट्-ने बड़ी श्रद्धाके साथ सीकरीका निर्माण किया, पर तेरह चौदह वर्ष बाद ही उस प्रेम और भक्तिमय नगरको त्याग देना पड़ा। अकबरके देहावसानके पांच वर्ष बाद विलियम फिञ्चने उसको हीन और विजन स्थितिमें पाया। तबसे सीकरी सदा निर्जन और परित्यक्त हीनावस्थामें रही है। फिर किसी सम्राट्ने फ़तहपुरको अपनी राजधानी नहीं बनाया। सीकरी-का सात मीलका घेरा, सातों बाह्य फाटक, इसके विचित्र भवन और राजप्रासाद और फ़कीर सलीम चिश्तीकी मस-जिद एवं निर्मल संगमरमरका आश्रम, सब कुछ अब तक विद्यमान है। तुर्की सुल्तानाका भवन, फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़्ल

---

*आगरे के दो परम भव्य मन्दिर—अकबरका समाधि-मन्दिर और ताजमहल अकबरके बादके बने हैं।

के गृह एवं सम्राट्के * ख्वाबगाह और † इबादत ख़ाने (कुछ लोग कहते हैं कि आजकल जिसे 'दीवाने ख़ास' कहते हैं वही पुराना इबादत खाना था) की अतुल प्रभा और विचित्र सुकोमल छविके साथ साथ पञ्चमहल (एक प्रकारका बौद्ध बिहार) एवं प्रसिद्ध बीरबलके भवन और मरियमकी कोठीके भित्तिचित्रोंका अवलोकन करके नेत्रोंके सामने चञ्चल कालके पर्देमें साढ़े तीन शताब्दी पूर्वके भारतवर्षका विशाल स्वप्न उपस्थित हो जाता है। सीकरी ! तेरे वक्षःस्थल पर विविध चित्र चित्रण और विचित्र कलाओंके अद्भुत सम्मिलनको देख कर तेरे निर्म्माताके विचित्र एवं विविध धर्मानुयायियोंको एक राष्ट्रीय मालामें गुन्थन करने हारे अन्तःकरणका प्रत्यक्ष बोध होता है ! अब सीकरीके राजप्रासाद तीन शताब्दियोंसे सूने पड़े हैं; पर सीकरीके अनन्य प्रेमी सम्राट्की राज्यव्यवस्था पर जितना ही प्रकाश पड़ता जाता है उतनी ही उसकी भूरि भूरि प्रशंसा होती है। अतएव अब सम्राट्की राजधानीका विशेष विवरण न देकर सूक्ष्मतः अकबरी दरबारका भी दिग्दर्शन करना चाहिये।

मुख्य दरबारका वर्णन करनेके पहले हरमका भी संकेत कर देना उचित होगा; क्योंकि राजकीय हरम मुग़ल राजधानी और दरबारका एक महत्वपूर्ण अङ्ग था। हरमका घेरा इतना बड़ा था कि पाँच सहस्रसे अधिक स्त्रियाँ उसके भीतर अलग अलग कमरोंमें रहती थीं। यह स्त्रियाँ कई समूहोंमें

---

* सम्राट् का शयनागार।

† धार्मिक विवादालय।

विभक्त थीं और प्रत्येक समूहके लिए अलग अलग स्त्री दारोग़ा रहती थी और सम्पूर्ण हरमकी एक अलग अधिष्ठात्री होती थी। हरमका प्रबन्ध अच्छी तरह होता था। हरमके भीतरी भागमें स्त्रियाँ रक्षाके लिए नियुक्त थीं और राजकीय कमरोंके पास विश्वस्त सेविकाएँ रक्षा कार्यके लिए रहती थीं। फाटकके बाहर हरमके हिजड़े और फिर कुछ दूर पर राजपूत लोग नियत रहते थे। उनके बाद दरवाज़ोंपर द्वारपाल होते थे तथा सबके बाहर चारों किनारोंपर उमरा, अहदी एवं अन्यान्य सैनिकगण अपनी अपनी श्रेणीके अनुसार नियत थे। जब कभी उमराओंकी स्त्रियाँ वा अन्य पवित्राचरणकी स्त्रियाँ हरममें जाना चाहती थीं तो उन्हें पहले हरमके अफसरोंसे आज्ञा लेनी पड़ती थी। कुछ कुलीन स्त्रियोंको अन्तःपुरमें एक मास तक रहनेकी आज्ञा थी। सम्राट् हरमके प्रबंध पर स्वयं ध्यान रखता था। राजभवनमें रात्रिके समय अद्भुत रोशनी होती थी पर चाँदनीमें रोशनीकी कम आवश्यकता पड़ती थी और अँधेरी रातमें अधिक। इसके लिए भी नियम बँधे थे। दौलत ख़ाने (सम्राट्का निवास-स्थान) के सामने सम्राट्ने चालीस गज़ ऊँचे स्तम्भ पर "आकाश दिया" लटका दिया था, जिससे सिपाहियों इत्यादिको रातको अपने कार्यपर जानेमें बड़ी सुविधा होती थी। औरङ्ग (सिंहासन), छत्र, शैवान (या आफ़ताबगीर) और कौकबा—यह चार विविध रत्न खचित राज चिन्हों के प्रयोग करनेका अधिकार केवल सम्राट् को ही था। अलम, छत्रतोक़, तुमनतोक़ और झण्डा दूसरे प्रकारके राज चिन्ह थे। समाट्के नक्क़ारख़ानेमें कुवरगाह दमामा, नक्क़ारा दुहुल, करनाई, सुरना, नफ़ीर, सींग और सञ्जका प्रयोग होता

था। पहले रात्रिके आरम्भ और अन्त होनेके चार घड़ी पहलेसे नक्क़ारखाने में वाद्यध्वनि होती थी, पर बादको आधी रात एवं सूर्योदयके एक घड़ी पूर्व वाद्यध्वनि की जाने लगी। सूर्योदयके एक घड़ी पूर्व सुरना बजता था, जिससे लोग जाग जाते थे। कुछ ठहरकर सूर्य्योदयके एक घड़ी बाद क्रम क्रमसे विभिन्न वाद्य ध्वनियां आरम्भ होती थीं। फिर [1] मुर्सली इत्यादि सात प्रकारके स्वरोंका उद्गार करके सम्राट्को बधाइयां दी जाती थीं और सुन्दर वाक्यों तथा कविताओंका गान होता था। तब सुरनाध्वनिके बाद नक्कारख़ानेके स्फुरणका अन्त होता था। यही राज दरबारकी दैनिक प्रथा थी।

आईनकारने सम्राट् के समय यापनकी रीतिका उल्लेख करते हुए लिखा है कि रात्रिके प्रथम भागमें सम्राट् दार्शनिकों और सूफियोंसे गवेषणा करता था। इन गवेषणाओंमें ज्ञानका अच्छा प्रसार होता था। ऐसे अवसरोंपर इतिहासकार भी उपस्थित रहते थे। अकबर साम्राज्य का कार्य भी रातको करता था, एवं प्रातःकाल होनेके कुछ पूर्व गायकोंके मधुर गानको सुनकर एकांतमें गम्भीरता पूर्वक ध्यान करता था। इसके बाद सभी श्रेणियोंके लोग * कूर्निश करते थे और फिर हरमकी स्त्रियां सम्राट्को प्रणाम आदि करती थीं। इस बीचमें और भी अनेक कार्य्य होते थे; फिर सम्राट् आराम करने चले जाते थे। चौबीस घण्टोंमें सम्राट्

---

[1] सम्राट् संगीत एवं वाद्यका अच्छा पण्डित था। व उसने इस विषय में कुछ आविष्कार भी किया था।

* कूर्निशका विवरण आगे मिलेगा।

को प्रजा दो बार देख सकती थी। प्रथम प्रातर्ध्यानके बाद सम्राट् "झरोखे"से सबको देख पड़ते थे। सभी श्रेणीके लोग उपस्थित होकर बिना किसी बाधाके सम्राट्को देख सकते थे। इसे "दर्शन" कहते थे। दूसरी बार वह ९ बजे प्रातःकाल अथवा कभी कभी सायंकाल या रात्रिको "दौलतखाने" में उपस्थित होते थे, जहां सभी लोग जा सकते थे। वह प्रायः दौलतखानेकी खिड़की पर भी राज्यका कार्य करते थे। वहाँ बिना किसी बाधाके प्रार्थनापत्र आते थे और सम्राट् उनपर विचार करते थे। वहाँ कर्मचारियोंको कार्योंका भी निर्देश किया जाता था, एवं निष्पक्ष तथा समान न्यायका विधान होता था। दरबारकी सूचना ढोल पीटकर दी जाती थी, जिसे सुनकर राजकुलके लोग तथा उमरा एवं अन्य लोग तुरन्त आते और कूर्निश करके अपने अपने स्थानोंपर खड़े रहते थे। प्रसिद्ध विद्वान् लोग तथा चतुर कलाविद उपस्थित होते थे। दारोगा और वितिकची लोग अपनी आवश्यकताओं को कहते और न्यायकर्त्ता लोग अपने विवरण उपस्थित करते थे। इतने समय तक चतुर खड्गधारी (Gladiators) पहलवान, तथा गायक और गायिकायें उपस्थित रहती थीं। जादूगर इत्यादि भी अपनी चातुरी दिखलानेको उत्सुक रहते थे।

दरबारमें तीन प्रकारसे सम्राट्के प्रति प्रणाम सत्कार करनेकी प्रथा थी—कूर्निश, तसलीम और सिजदा। किन्तु 'सिजदा' के कारण कुछ लोग असन्तुष्ट थे, अतएव सम्राट् ने सभी श्रेणीके लोगों को "दरबारे आम" में सिजदा करनेका निषेध कर दिया। लेकिन निज सम्मिलनके अवसरोंपर सम्राट्से बैठने

की आज्ञा मिलनेपर लोग सिजदा करते थे। कूर्निशमें दाहिनी हथेलीको ललाटपर रखकर सिरको आगेकी ओर झुकाते थे। तसलीमका नियम इस प्रकार था। दाहिने हाथके पृष्ठ भागको भूमिपर रखकर धीरे धीरे उठाते थे; तब शरीरके बिल्कुल सीधा हो जानेपर अपनी हथेलीको शिरस्त्राणपर रखते थे। सम्राट्के सन्मुख उपस्थित किये जाने पर, अवकाश लेनेपर, अथवा मंसब, जागीर, खिलअत (सम्मान वस्त्र) हाथी या घोड़ा पानेपर तीन तसलीम करने का नियम था; किन्तु अन्य सभी अवसरोंपर, जब वेतन मिलता था या भेंट दी जाती थी, तो केवल एक तसलीम करनेकी प्रथा थी। सिजदा हिन्दुओंके साष्टांगके समान होता था किन्तु सिजदाकी प्रथा 'दरबारे-आम'में बन्द कर दी गयी। जब सम्राट् सिंहासनपर आसीन होता था तब सभी लोग कूर्निश करके अपने अपने स्थानपर खड़े रहते थे। ज्येष्ठ कुमार सिंहासन से एकसे चार गज़की दूरी पर खड़े होनेकी स्थितिमें अथवा दो से आठ गज़की दूरी पर बैठनेकी स्थितिमें रहता था। दूसरा कुमार एक या डेढ़ गज़से छः गज़की दूरीपर खड़ा होनेके समय अथवा बैठनेके समय तीनसे बारह गज़की दूरी पर रहता था। इसी प्रकार तीसरा भी खड़ा होता या बैठता था, पर कभी कभी वह दूसरे कुमारके बराबरीपर अथवा और भी निकट रहता था। लेकिन सम्राट् छोटे कुमारोंको प्रेमके साथ प्रायः समीप रखता था। इसके बाद सर्वोच्च श्रेणीके लोग (प्रायः दीन इलाहीके अनुयायी) तीनसे पन्द्रह गज़की दूरी पर खड़े होते या पांचसे बीस गज़की दूरीपर बैठते थे। इसके बाद उच्च श्रेणीके उमरा लोग साढ़े तीन

गज़की दूरीसे एवं अन्य उमरागण सिंहासनसे दस या १२½ गज़की दूरीपर स्थित होते थे। अन्य सब लोग * 'यसल'में रहते थे; एवं सैबानग्राही (पंखा दो एक सेवक सबसे निकट रहते थे। सिंहासनका सामना प्रायः खाली रहता था तथा दरबारके एक किनारे उमरा एवं राज कर्मचारीगण और दूसरे किनारे पर कुर, मुल्ला और उलमा इत्यादि रहते थे।

कभी कभी विशेष कार्योंके लिए भी दरबार होता था। कभी कभी किसी नियत तिथिको "अञ्जुमन-इ-दादो-दिहिश" होता था। इन अवसरोंपर प्रजा विविध निवेदन करती थी और निवेदन स्वीकार भी होते थे। नयी भरतीका भी यही समय था। भरती करनेवाले कर्मचारी अथवा बड़े बड़े अमीर रँगरूटोंको सम्राट्के सामने उपस्थित करते थे और पुराने कर्मचारियोंके वेतनवृद्धि इत्यादिपर भी विचार होता था। सम्राट्ने गजदल, हयदल एवं ऊँटों, गौओं और खच्चरोंके निरीक्षणका भी नियम बाँधा था। हाथियों और घोड़ोंके निरीक्षणपर अधिक ध्यान दिया जाता था। कुछ घोड़े तो सदा दरबारके सामने उपस्थित रहा करते थे। सम्राट् निरीक्षणके नियमोंमें सुधार भी किया करते थे। आईनकारने लिखा है कि "पहले सभी निरीक्षण उपयुक्त रीतिसे होते थे, परन्तु अब घोड़ोंका रविवारको; ऊंट, गाय, खच्चरोंका सोमवारको; सिपाहियोंका मंगलवारको निरीक्षण किया जाता है। बुधवारको कोश- सम्बन्धी और गुरुवारको न्याय सम्बन्धी कार्य होता है। शुक्रवारका दिन हरममें बीतता है और शनिवारको हाथियोंका

---

* यसल किनारों (wings) को कहते हैं।

निरीक्षण होता है। सम्राट्[1] पशु युद्ध (मृग युद्ध इत्यादि) इत्यादिका भी आयोजन करता था। वह हर प्रकार से मनुष्योंके इकट्ठा होनेकी [2] सुविधा देता था जिसमें लाभ भी था। यही सब विशेषताएं मुग़ल दरबारमें देख पड़ती हैं। मुग़ल राजधानी और दरबारमें राजकीय गम्भीर कार्यों के सञ्चालनके साथ साथ चकाचौंधकारी रत्नोंकी प्रभा, सशस्त्र और सुसज्जित दरबारियोंके एकत्र होनेकी अतुल छटा एवं राजकीय प्रतापका प्रदर्शन इस देशकी दीन प्रजाको तो मुग्ध किये ही था, विदेशियोंके नेत्र [3] भी मुग़ल दरबारको देख कर चौंधिया जाते थे। पर यह सब निरर्थक नहीं था। इसमें भी राजनीतिक श्रेय था। अतएव अबुलफ़ज़लके शब्दों द्वारा इस परिच्छेदको यहीं समाप्त करते हैं। आईनकर लिखता है कि "साम्रट् ने अपने प्रयत्नसे दरबारको अभिलाषापूर्ण झगड़ोंकी भूमिसे परिवर्तित करके एक उच्च संसारके दिव्य मन्दिरमें परिणत कर दिया है और मनुष्योंके अहंकार और ममत्वको ईश्वरकी आराधनाकी ओर लगा दिया है"। धन्य है, दरबारमें भी उस क्षमताशील हाथकी प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है!

---

[1] सम्राट् के यहाँ पांच छः-हजार हाथी, १२ हजार अश्व, १ हजार ऊंट, लगभग १ हजार यूज़ (शिकारी तेंदुए) थे—(फ़रिश्ता)

[2] अलाउद्दीन खिल्जीसे तुलना कीजिये। वह मनुष्योंके इकट्ठा होनेके मार्गमें रुकावटें डालता था।

[3] बर्नियरने दरबारका अच्छा विवरण दिया है।

१४—दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध

सम्राट्की भीतरी (Domestic) राज्य व्यवस्थाके मुख्य मुख्य अङ्गोंका अनुसन्धान हो चुका। अब उसकी धार्मिक नीति, गुणोंकी संरक्षकता, एवं उसकी राज्यव्यवस्थाके परिणाम इत्यादि पर विचार करना है। परन्तु इन बातोंकी विवेचना करनेके पूर्व सम्राट् की बहिरङ्ग नीतिपर भी विचार करना आवश्यक है। आजकल ज्यों ज्यों यन्त्रविद्या और विज्ञानकी उन्नति हो रहा है त्यों त्यों संसारका प्रत्येक राष्ट्र अन्य राष्ट्रोंके अधिकाधिक सम्पर्कमें आता जा रहा है। प्रेस, रेल, तार और जलयान इत्यादि द्वारा संसारका अन्तरराष्ट्रीय व्यवहार बड़ी उन्नतिं पर पहुँच चुका है तथा अकाशयानोंके प्रसारसे और भी अधिक अन्तरराष्ट्रीय व्यवसाय (Intercourse)होनेकी सम्भावना है। परन्तु अकबरके समयमें अन्तरराष्ट्रीय राजनीति इतनी बढ़ी-चढ़ी अवस्थामें न थी। सम्राट् की ख्याति देश देशान्तरमें पहुँच चुकी थी। पर अन्तरराष्ट्रीय व्यवहारोंकी तत्कालीन अवस्थाका इसी एक बातसे पता चल जाता है कि आङ्गल देश (England) की रानी एलिज़ावेथको इसका भी बोध न था कि अकबर केवल गुजरातका बादशाह था अथवा सम्पूर्ण हिन्दुस्तानका। ‌‌❀ १५८३ में जब न्यूबेरी, लीडेज, स्टोरी और फ़िच भारतको चले थे तो रानी एलिज़बेथने अकबरके लिए एक पत्र दिया था। उस पत्रमें श्रीमतीने सम्राट् को 'खम्भातका बादशाह' (King of Cambay) लिखा था।

❀ भारतमें पहला अंग्रेज अकबरके ही समयमें १५७९ में आया था।

उसने नम्रता पूर्वक लिखा था कि सम्राट् उसकी इन प्रजाओं-के साथ सद्व्यवहार करे और इसके लिए प्रत्युपकार करने-का भी उसने बचन दिया था। विलियम लीडेज़ने अकबरके यहाँ नौकरी भी करली थी एवं फ़िचने अपनी यात्राका कुछ वृत्तान्त भी लिखा है। फिर १२ फ़रवरी १५९९ को लन्दनसे चलकर सीरिया और फ़ारस होते हुए मिल्डेन हाल नामक अंग्रेज़ विलायतकी रानीका पत्र लेकर चार पांच वर्ष बाद मुग़ल दरबारमें पहुँचा। उसने सम्राट्को २९ अच्छे अच्छे अश्व भेट किये; अमात्योंके सम्मुख अपने आनेका प्रयोजन कहनेकी आज्ञा मिलनेपर उसने जवाब दिया कि "विलायतकी रानी सम्राट्की मित्रता चाहती है, एवं श्रीमान्के साम्राज्य-में पुर्तगालियोंके समान व्यापारके अधिकार चाहती है।" उसने सम्राट्से यह भी निवेदन किया कि यदि उसके साम्राज्य-के समुद्र तटोंपर अंग्रेज लोग पुर्तगालियोंके जहाज़ या बन्दर ग्रहण कर लें तो वह बुरा न मानें। मिल्डेन हालके यह प्रतिज्ञा करने पर कि विलायतकी रानी अकबरके यहाँ दूत और भेंट दोनों भेजेगी, सम्राट्ने उसकी प्रार्थनाओंको स्वीकार किया। पर आर्म (Orme) का कहना है कि उसे 'फ़र्मान' अकबरकी मृत्युके बाद जहाँगीरसे मिला; क्योंकि सम्राट् बीच-में ही महाप्रस्थान कर गए। इन प्रार्थनाओंको स्वीकार करने-में सम्राट्का प्रत्यक्ष अभिप्राय यही था कि विलायत जैसे दूर देशसे[1] दूत और भेंटका आना सम्राट्के गौरवको और भी

---

[1] क्योंकि दूत और भेंटका आना अधीनता करनेके बरा-बर समझा जाता था।

बढ़ा देगा। अंग्रेजोंका अकबरसे केवल उपर्युक्त सूक्ष्म सम्बन्ध था। पर सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि अकबरके ही समयमें सन् १६०० की अन्तिम तारीखको रानी एलिज़बेथ ने[1] "पूर्वी हिन्दसे व्यवसाय करने वाले लन्दनके सौदागरों-के अध्यक्ष और कम्पनी" को अधिकार पत्र (Charter) दिया। इस प्रकार प्रसिद्ध ईस्ट इण्डिया कम्पनीका जन्म हुआ जो मुग़लों और मरहठोंके बाद इस देशकी भाग्य-निर्म्मात्री हुई।

अकबरके ही समयमें हालैंडवालोंकी भी "यूनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी" (The United East India Company of the Netherlands) का १६०२ में जन्म हुआ परन्तु अकबरके जीवन कालमें सम्राज्यसे उनका कोई भी सम्बन्ध न था। किन्तु पुर्तगालियोंके विषयमें यह बात न थी। उन लोगोंका व्यव-साय अकबरके पहले ही उन्नतिको पहुँच चुका था। धीरे धीरे समुद्र तटपर पुर्तगालियोंका दबदबा जम गया था और वह लोग पर्य्याप्त तटस्थ भूमिके शासक थे। सम्राट्के सिंहासनासीन होनेके केवल दस वर्ष पूर्व वह गुजरातके सुल्तानको हरा चुके थे, एवं कैस्ट्रो (१५४५-८) के ही समयमें पुर्तगालियोंने हिन्दु-स्तानियोंको ईसाई धर्मकी दीक्षा देनेका कार्य आरम्भ किया था। मुसल्मान शासक प्रायः पुर्तगालियोंके विपक्षी थे। १५६५ में विजयनगर-पतनके बाद दक्षिणके सुल्तानोंने इन्हें तङ्ग करना आरम्भ किया और १५७० में बीजापुरके सुल्तानको हार खानी पड़ी। यद्यपि अकबरके ही समयमें पुर्तगालियोंका पतन भी

---

[1] The Governor and Company of merchants of London trading with East Indies.

बड़ी वेगसे आरम्भ हुआ तो भी कब सम्भव था कि अखण्ड राजनीतिज्ञ अकबर इनके दूरीकरणका उपाय न सोचता ? वह चाहता था कि दक्षिणके सुल्तानोंको जीतकर पुर्तगालियों पर विजय प्राप्त करे। उसके विचारों और कार्योंमें कूटनीति कूट कूट कर भरी थी। वह गोआ एवं भारतकी अन्य पुर्तगाली भूमियों पर आंख लगाये था। इसीलिए वह अपने आदमियों को प्रायः दूत इत्यादिके वहानेसे गोआ भेजता था। उनके द्वारा वह पुर्तगालियोंके काम-धाम, सेना तथा जहाज़ोंसे आये हुए पदार्थों इत्यादिका पता लगाया करता था। अबुलफ़ज़ल गुजरातका वृत्तान्त देते हुए लिखता है कि "कर्मचारियोंकी असावधानीसे कई सरकार जो नगर और वन्दर दोनोंमें हैं फिरङ्गियों के अधीन हैं।" सम्राट्की कूटनीतिको समझना कठिन काम था। उसने दूत भेजकर गोआसे जेसुइट पादरियोंको वुलाया था। अपने पत्रोंमें चिकनी चुपड़ी वातें लिखकर धर्मकी आड़में अकबर राजनीतिके खेल खेलता था। पुर्तगालियोंके समझमें नहीं आया कि धर्मके पर्देके भीतर कौनसा सर्पराज बैठा है। वह समझते थे कि सम्राट् ईसाई हो जायगा और इसी दाव-पेचमें वह लोग सदा रहे। तीन वार सम्राट्के पास जेसुइट मिशन आह्वान करनेपर आया। पहली वार १५७९ में अब्दुल्लाको भेजकर, दूसरी वार १५९० में लियो ग्रिमन नामक यूनानीको[१] परवाना और पत्र देकर तथा तीसरी वार १५९४

---

१ लियो ग्रिमन कहींसे अपने देशको लौटा जा रहा था। रास्तेमें वह दरबारमें भी गया और तब सम्राट् ने उसे एक परवाना तथा गोआके पुर्तगालियोंके लिए पत्र दिया।

में गोआके वाइसरायको लिखकर ईसाई धर्म-गुरुओं को सम्राट्ने दरबारमें बुलवाया था। उसने इनका सम्मान भी अच्छा किया; पर अन्तमें ईसाई धर्म-गुरुओंको निराश रहना पड़ा। अकबर खीष्टीय दीक्षा हृदयसे कभी नहीं लेना चाहता था। उसने ईसाई धर्मके विषयमें जिज्ञासा केवल धर्मके तुलनात्मक ज्ञानके लिए (Comparative study of Religion) प्रकट की थी। अस्तु, संक्षेपमें यही कहना है कि न तो पुर्तगालियोंका धार्मिक मनोरथ ही सफल हुआ और न सम्राट्के धार्मिक पर्देके अन्दर छिपे हुए राजनीतिक उद्देश्य—पुर्तगालियों पर विजय प्राप्ति—को ही सफल होनेका अवसर मिला। सम्राट्की कूटनीतिका कुछ कुछ पता पादरियोंको भी चल गया था। १५८० में जब पादरी लोग सम्राट्के निमन्त्रित करनेपर दरबारके समीप आ रहे थे, ठीक उसी समय सम्राट्ने कुतुबुद्दीन खांकी अधीनतामें एक सैन्य पुर्तगाली* बन्दरोंपर आक्रमण करनेके लिए संगठित किया था। गुजरात और मालवाके सरकारी अफ़सरोंको भी कुतुबकी सहायता करनेका आदेश कर दिया गया था। १५८२ में कुतुबुद्दीन खां ने डैमन पर आक्रमण किया और उसी समय ड्यू पर भी धावा हुआ। दोनों असफल हुए। तब पदरियोंने समाचार पाकर सम्राट्से शिकायत की तो अकबरने शपथ खाकर कहा कि मैं लड़ाईके विषयमें बिल्कुल जानता ही नहीं। युद्ध समाचार पादरी मांसरेटसे सुनकर ऊपरसे वह अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करने लगा और कहा कि मैं प्रजाके हितके अभिप्रायसे किये हुए कार्यों के लिए अपने अफ़सरोंको

*बन्दर शब्दका प्रयोग सामुद्रिक घाटके अर्थमें किया है।

दण्ड देनेमें भी असमर्थ हूँ। सम्राट्ने अपने अफ़सरों के कार्यों पर बिल्कुल बाहरी पश्चाताप प्रकट किया, पर भीतर भीतर वह सदा पुर्तगालियोंकी शक्तिको छिन्न भिन्न करना चाहता था। झगड़े भी कभी बन्द नहीं हुए; क्योंकि पुर्तगालवाले अपने को समुद्रका अधिष्ठाता मान बैठे थे और साम्राज्यके *जलयानोंको मक्का या अन्य स्थानोंको कुशल पूर्वक बिना पास (आज्ञापत्र) के नहीं जाने देते थे। इस प्रकार अकबर और पुर्तगालियोंके बीच धार्म्मिक और राजनीतिक पासा चल रहा था। पर सम्राट्को भारतके विजयों और शासनसे अवकाश ही न मिला कि वह खुलकर पुर्तगालियों के निकालनेका यत्न करता; तो भी अन्य कई कारण ऐसे आ पड़े कि पुर्तगालियोंके पतनमें बहुत देरी न लगी। पर अकबरके बाद दूसरे फिरङ्गियोंका धीरे धीरे इतना ज़ोर बढ़ा कि मुग़ल राज्यव्यवस्थाके खँडहर पर अन्तमें फिरङ्गी राज्यव्यवस्था को स्थान मिला। हाँ, यदि सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धके अलङ्कारभूत अद्वितीय राजनीतिज्ञने औरङ्गज़ेबके बादकी आधी शताब्दीमें भी दिल्ली या आगरेमें अवतार ले लिया होता, तो भारतीय मानचित्र दूसरे ही रङ्गमें रँगा जाता।

योरोप से और कोई विशेष सम्बन्ध सम्राट्का नहीं था। एशियामें भी अपने पूर्वजोंके मध्यएशियाई राज्यको जीतनेकी

* श्रीयुत राधाकुमुद मुकर्जीने अपनी पुस्तक (History of Indian shipping) में अकबरके जलयानोंकी प्रशंसा की है। पर विंसेंट स्मिथ बिना कोई भी प्रमाण दर्शाये जैसा इन्होंने अन्य भी कई विषयोंके सम्बन्धमें किया है) मुकर्जीकी बातका खण्डन करते हैं (देखिये Akbar पृष्ठ २०३ की पादटिप्पणी)।

इच्छा उसके हृदयमें विद्यमान थी, पर उसे अपनी इच्छाको कार्यमें लानेका समय न मिला। फ़ारस और टर्की देशों से भी उसका सम्बन्ध था। उधर के देशोंके व्यापारी मुग़ल साम्राज्यमें व्यवसाय करने आते थे; एवं उधरके लोग अकबरके यहाँ नौकरी भी करते थे। सम्राट्‌ने उन देशोंसे अंगूर इत्यादि सुमधुर फलोंकी खेती करानेके लिए भारतमें विचक्षण किसान भी बुलाये थे। अकबर विदेशी वणिकोंको भारतमें आनेके लिये उत्साहित भी करता था। उस समय यूरोप, अफ्रीका, फ़ारस, अरब, * चीन, जापान और भारत महासागरके द्वीप पुञ्जके साथ इस देशका वाणिज्य होता था। अन्य कोई सम्बन्ध विदेशी राज्योंके साथ स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता है। भारतके बहुतेरे राज्य जो सम्राट्‌के सिंहासनासीन होनेके समय स्वतन्त्र थे उन्हें अकबर ने धीरे धीरे विजय अथवा राजनीति द्वारा अपने साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया तथापि दक्षिणके कई राज्य अन्त समय तक स्वाधीन रहे जिन्हें अकबरके वंशजों ने साम्राज्य में सम्मिलित किया। अकबरी कालके अन्तिम दिनों में मुग़ल साम्राट् की अधीनता काबुलसे बंगाल और काश-

* अकबर यात्रियोंसे चीनके विषयमें प्रायः पूछता था। इस सम्बन्धमें यह स्पष्ट करदेना उचित होगा कि मैनवर्सी (Monucci) ने अलोरा इत्यादिके गत मन्दिरों इत्यादिका प्रमाण देकर जो यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि भारतवर्ष किसी समय चीनकी अधीनतामें था वह बिल्कुल निर्मूल, भ्रान्तिमूलक और अज्ञानतापूर्ण है। यह सभी जानते हैं कि चीनमें बौद्धधर्म्म भारतसे ही गया है एवं अलोराके गत मन्दिर भारतीय शिल्प के नमूने हैं।

मीरसे अहमद नगर तक मानी जाती थी। तो भी यदि सम्राट्को समय मिला होता था तो वह अन्य देशी विदेशी सभी राज्योंको अपने छत्रतले लानेकी चेष्टासे न चूकता। अकबरकी बाह्य अर्थात् विदेशी नीति (Foreign policy) का यही लक्ष्य था और इसी विश्वविजयनी नीतिको गुप्त केन्द्र मानकर उसके कार्यों एवं विचारोंकी गूढ़ सुई निरन्तर सञ्चालित होती थी।

१५--हिन्दुओं के साथ सम्बन्ध

यूरोपीय इतिहासके साथ विचार करनेमें भारतीय इतिहासमें सहिष्णुताकी मात्रा अधिक दृष्टिगोचर होती है। जो जो अत्याचार यूरोपने धर्मकी ओटमें होते देखे हैं उनका स्वप्न भी भारतने कट्टरसे कट्टर मुसल्मानोंके शासन कालमें नहीं देखा। पर भारतीय दृष्टिकोणसे विचारने पर इस देश में भी हिन्दुओंकी जान-माल और स्वतन्त्रताका मुसल्मान शासकों द्वारा हनन होनेका वृत्तान्त पढ़कर आजकलका भारतीय हृदय दहल उठेगा। वास्तवमें उस समय हिन्दुओंका जीवन सारहीन सा हो गया था, जब कि सम्राट् अकबरने इस देशका शासन-भार अपने ऊपर लिया। अकबर जानता था कि जब तक हिन्दुओं और मुसल्मानोंमें द्वेष प्रज्वलित रहेगा तब तक देशका स्थायी मङ्गल नहीं हो सकता, एवं बिना हिन्दुओंको सम्मिलित किये मुग़ल साम्राज्य भारतमें स्थिर भी नहीं रह सकता। अपना महान् उद्देश्य—भारत विजय—सिद्ध करनेके लिए राजपूतोंकी सहायता उसके लिए अनिवार्य भी थी। वह भारतकी तत्कालीन स्थितिसे परिचित था। अतएव बुद्धिमान् राज-

नीतिज्ञके समान हिन्दू जनता तथा रजवाड़ोंको प्रसन्न करने-की चेष्टा करने लगा। धीरे धीरे हिन्दू कुल चूड़ामणि महाराणा प्रतापसिंहको छोड़कर राजस्थानके सभी राजपूत नरेशों ने सम्राट् की अधीनता स्वीकार करली। सम्राट्ने राजपूत बालाओंसे * विवाह सम्बन्ध भी करनेकी प्रथा चलायी। १५६२ में ही उसने भगवानदास के पिता राजा बिहारीमलकी पुत्रीको अपने हरममें सम्मिलित किया था। धीरे-धीरे कई ऽ राजपूत रमणियाँ उसके अन्तःपुरमें आ गयीं, परन्तु वह मुसलमान हरममें आकर भी हिन्दू आचार विचार से जीवन व्यतीत करती थीं। इस विवाह सम्बन्धका राजनीतिक परिणाम बहुत अच्छा हुआ।

इस विवाह-सम्बन्धने राणा प्रतापको छोड़कर अन्य सभी राजपूतोंकी कठोर सामाजिक शृङ्खलाको बहुत कुछ शिथिल कर दिया। इन राजनीतिक विवाहोंके अतिरिक्त सम्राट् ने हिन्दू समाजके लिए कुछ ऐसे नियम बनाये थे जो बहुतेरे हिन्दूओंको बुरे लगे होंगे। उसने बाल विवाह, अग्नि इत्यादि द्वारा न्याय परीक्षा (Trial by ordial) और जीव बलिका निषेध कर दिया। विधवा विवाहका भी उसने नियम बनाया; एव सती प्रथाका घोर विरोध किया। इस प्रथाको बिल्कुल बन्द कर देना तो उसकी शक्तिके बाहर था, पर उसने यह विधान कर दिया कि कोई विधवा अपनी इच्छाके प्रतिकूल सती न होने पावे। अकबरकी यह भी इच्छा थी कि

* अकबरके पिताने भी एक हिन्दू स्त्री से विवाह किया था।

ऽ अकबरके अन्तःपुरमे अनेक जातियोंकी (हिन्दू, फ़ारसी, मुग़ल इत्यादि) स्त्रियाँ थीं।

विवाहोंके पूर्व भावी पति पत्नीकी स्वीकृति एवं पिता माता की आज्ञा आवश्यक हो। इस नियमके कार्य रूपमें परिणत होनेमें बहुत कुछ सन्देह है, परन्तु 'सती-निषेध, वाले नियम की पूर्ति पर सम्राट् स्वयं अधिक ध्यान रखता था। कोतवालोंको इस विषयपर ध्यान देनेका आदेश था। एक बार जयमल पूर्वी प्रान्तोंकी ओर धावा बड़े वेगसे कर रहा था और बीचमें ही चौसाके निकट स्वर्गधामको प्रस्थान कर गया। जयमलकी विधवा स्त्री सती होना नहीं चाहती थी, पर उसके पुत्रों तथा सम्बन्धियोंने दबाव डालना आरम्भ किया। जब यह बात सम्राट्के कानों तक हरममें पहुँची तब वह तुरन्त अकेला ही एक द्रुतगामी घोड़ेपर सवार होकर घटनास्थल की ओर बढ़ा। सम्राट्को अकेला देखकर कुछ और भी लोग साथ हो लिये। सम्राट् ठीक समयपर उस स्थानपर पहुँचा और उस विधवाको सती होनेसे बचा लिया तथा दोपियोंको कुछ दण्ड भी दिया। इस प्रकार वह 'सती' रोकनेका बड़ा यत्न करता था। हिन्दू समाजका वह अन्ध समर्थक नहीं था, प्रत्युत हिन्दुओंके प्रचलित दोपोंको दूर करनेकी चेष्टा करता था।

पर सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उसने अपने शासनके छठे वर्ष (१५६२) में 'जजिया' नामक भारभूत करको बिल्कुल बन्द कर दिया। जजिया हिन्दुओंके लिए अपमानजनक तो था ही, इससे देशकी दीन प्रजापर बड़ा बोझ पड़ता था। जजियाके अतिरिक्त अन्य भी कई कर मुसलमान सुल्तान अपनी काफिर प्रजासे ग्रहण करते थे। इन सभी करोंमें जजिया ही सबसे घृणित समझा जाता था। इसके वसूल करनेकी रीति भी घृणित थी। जो हो, जजियाके कारण हिन्दू

प्रजा मुसलमान शासकोंसे बहुत असन्तुष्ट रहा करती थी। अकबर स्थितिको समझता था। उसने इस करको बिल्कुल बन्द कर दिया। तीर्थ कर भी बन्द किया गया, एवं सभी बातोंमें हिन्दुओं और मुसलमानों के कर बराबर कर दिये गये, जिससे हिन्दू और मुसलमान प्रजामें कोई भेद नहीं रह गया। सम्राट्ने दोनों जातियों—विजेता और विजित—को एक सीढ़ी पर रख दिया। इससे कट्टर सुन्नियोंमें कुछ असन्तोष था पर वह सम्राट् को न हानि ही पहुँच सकते थे और न उसकी नीति ही बदलवा सकते थे। अब केवल गुणका आदर होने लगा, रक्त और धर्मका नहीं। जिस देशमें हिन्दू मुसलमानोंमें तकरार होनेपर दोषी मुसलमान भी बचजाता था और जिस देशमें मुसलमान हिन्दुओंको पद्दलित करने एवं उनको विनष्ट करनेका प्रयास करते थे, उसी देशमें अकबरने शान्ति और सौहार्द स्थापन किया तथा स्वाधीन विचार एवं विवेकपूर्ण आलोचनाको स्थान दिया। न्यायके सामने हिन्दू और मुसलमान दोनों एक दृष्टिसे देखे जाने लगे। कट्टर मुसलमानोंमें इस कारण बड़ा आस्फालन होने लगा। उन लोगोंने सम्राट्की समानता और सहिष्णुता वाली नीतिका विरोध किया, पर सम्राट् अपनी नीतिको छोड़ कैसे सकता था? वह हिन्दुओंको प्रसन्न करनेके लिए यत्नशील था। अब मुसलमान लोग न तो हिन्दुओंको उनकी इच्छाके प्रतिकूल अपने धर्ममें मिला सकते थे और न उनके अधिकारोंको छीन सकते थे। सम्राट् स्वयं कभी कभी हिन्दू आचार व्यवहारका पालन करता था। वह ललाटपर चन्दन और गलेमें यज्ञोपवीत भी धारण कर लेता था। गोवध तो उसने बिल्कुल बन्द कर दिया

था। सूर्यकी उपासनामें उसे बड़ी शान्ति मिलती थी। सारांश यह कि अकबर अपनी हिन्दू प्रजाको प्रसन्न रखनेका बड़ा यत्न करता था।

सम्राट्के यहाँ तुर्क और फ़ारसी कर्मचारियोंकी संख्या अधिक थी पर वह ऊँचेसे ऊँचे पदको हिन्दुस्तानियों (हिन्दुओं तथा देशी मुसलमानों) को देता था। उसकी दृष्टिमें सभी समान थे। राजा टोडरमल बड़ा धार्मिक हिन्दू था। उसकी योग्यताको देखकर सम्राट्ने उसे साम्राज्यमें सर्वोच्च पद पर अलङ्कृत किया था। टोडरमल प्रधान अर्थ सचिव था एवं प्रबंध सम्बन्धी (Civil administration) सभी कार्यों पर वह साधारणतः शासन करता था। किसी भी मुसलमानने टोडरमलकी तरह सम्राट्की सेवा नहीं की। सैनिक कार्यों पर भी वह प्रायः भेजा जाता था। इस क्षेत्रमें भी वह अपूर्व योग्यता दिखलाता था। खैबर और पेशावरकी तरफ़ उसने सम्राट्की सैनिक-सेवा अच्छी की थी। पूरबकी ओर भी सम्राट्ने राजा टोडरमलको बंगाल विजयके लिए भेजा था। अकबर इनका सबसे अधिक विश्वास करता था, राजा भगवानदास, राजा मानसिंह और राजा बीरबल बड़ी बड़ी सेनाओंके अध्यक्ष थे। अकबर हिन्दुओंके साथ भी हिन्दुओंको युद्ध करनेको भेजता था। महाराणा प्रतापसिंहसे युद्ध करनेके लिए सम्राट्ने राजा मानसिंह एवं हिन्दू सैनिकोंको भी भेजा था। राजा टोडरमल और राजा मानसिंह प्रान्तोंके शासक भी नियत किये गये थे। अकबरके मंसबदारोंकी प्रथम श्रेणी (५०००) में तीस व्यक्ति थे, जिनमें दो हिन्दू थे; 'चार हज़ार' के मंसबमें नौ (९) में दो हिन्दू थे और तीन हजारके मंसबमें सत्रहमें आठ

हिन्दुस्तानी थे। एवं सम्पूर्ण पदाधिकारी उमराओं (Official Grandees) में सत्तावन हिन्दू थे। अकबरके बाद भी मुग़ल सम्राट्ने हिन्दुओंको अपने यहाँ नियुक्त किया था। शाहजहाँ-के समयमें तो हिन्दू अफ़सरोंकी संख्या द्विगुण परिमाणको पहुँच गई। कौन महोदय कहते हैं कि इन शासकोंके हृदयमें कभी यह बात आई ही नहीं कि सम्पूर्ण-शक्ति विजेतृ जातिके ही हाथमें रखी जाय। औरङ्गजेबके समयमें भी जयसिंहने ऊँचेसे ऊँचे सैनिक एवं प्रबन्ध (Military and civil) सम्बन्धी पदोंको अलंकृत किया था। उस कट्टर सुन्नी मुसल्मान बाद-शाहने हिन्दुओंको हिन्दुस्तानी होनेके कारण अलग नहीं रखा था वरन् ऐसा धर्म माननेके कारण जो उसकी दृष्टिमें महा-पाप था। अकबरके हिन्दू मंसबदारोंकी न्यून संख्याके कारण कुछ लोग उसमें भी पक्षपात की रेख खोजनेकी चेष्टा करेंगे। पर यह शङ्का नितान्त भ्रान्तिमूलक होगी। तत्कालीन हिन्दू सरकारी नौकरियोंके लिए लालायित नहीं रहते थे, प्रत्युत पठान सुल्तानोंके समयमें तो सरकारी नौकरी करना समाज-में दोष समझा जाता था; एवं हिन्दू सरकारी नौकरोंका स्थान हिन्दू समाजमें बहुत नीचा था। कुलीन हिन्दू उनसे विवाह सम्बन्ध तक नहीं करना चाहते थे। परन्तु अकबरके सुराज्य में हिन्दुओंको सरकारी नौकरीसे कोई विशेष घृणा न थी तथापि मुसल्मानोंकी संख्यासे तुलना करने पर हिन्दू कर्म-चारियोंकी संख्या बहुत कम देख पड़ती है। इसके दो कारण थे। एक तो, हिन्दू जनता सरकारी नौकरीके लिए आजकल की तरह लालायित नहीं रहती थी। दूसरे, भारत जैसे विस्तृत महादेशमें यात्राके उपकरण विशेष न होने के कारण उस

समय दूरस्थ प्रान्तोंके हिन्दुओंको सरकारी नौकरी प्राप्त करने में असुविधा थी। परन्तु यदि संख्याको छोड़कर पदों के महत्व-पर ही विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि सम्राट्ने उच्चसे उच्च पदोंपर हिन्दू कर्मचारियोंको नियत किया था। लोग कहते हैं कि भारतमें मुसल्मानोंका शासन विदेशी शासन था। पर उसमें विदेशीयताकी मात्रा अधिक न थी। हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके अधिकार सदा विदेशी मुसल्मानोंके समान ही थे। किन्तु अकबरकी राज्यव्यवस्थामें यह पक्षपात भी दूर कर दिया गया। हिन्दुओंको ऊँचे ऊँचे पद मिले एवं हिन्दू जातिकी राजनीतिक उन्नति भी बड़े वेगसे हुई। हिन्दुओंकी राजनीतिक उन्नतिमें टोडरमलका यह नियम कर देना कि सभी राजकार्य हिन्दी में न करके फ़ारसीमें किये जायँ बड़ा लाभ-दायक हुआ। अस्तु, अन्तमें यही कहना है कि सम्राट् अकबर-ने देशकी पददलित हिन्दू प्रजाको न्यायकी दृष्टिसे अथवा कूटनीति (policy) के लक्ष्यसे मुसलमानोंके समान (मुल्लियोंके विरोध करने पर भी) अधिकार दे दिया; एवं इसी नीति का अकबरके वंशजोंने भी (आलमगीरको छोड़कर) अनुसरण किया, जिसका परिणाम हिन्दू जनता तथा मुग़ल साम्राज्य दोनोंके लिए बड़ा लाभकर हुआ तथा साम्राज्यका पतन भी तभी हुआ जब आलमगीरने इस नीतिको तिलाञ्जलि दी।

१६--सम्राट् का धर्म पर शासन

काशमीरमें सम्राट्ने सभी धर्मावलम्बियोंके लिए एक सामान्य धर्म मन्दिर बनवाया था जिसपर नीचे लिखे भावकी कविता अबुलफ़ज़लने अङ्कित की थी। कविताका मर्म इस प्रकार है—"हे परम पिता परमेश्वर ! मन्दिर, मसजिद तथा गिर्जा सभी ठौर सभी भाषाओं द्वारा लोग तेरी ही खोज करते हैं। हिन्दू मुसलमान दोनों तुम्ही "एकमेवाद्वितीयम्" का यशोगान करते हैं। मसजिदमें तेरी ही स्तुति की जाती है, गिर्जेमें तेरे ही प्रेमका घण्टा बजता है। कभी कभी मैं ईसाई गिर्जेमें जाता हूँ और कभी मसजिदमें, परन्तु यह तू ही है जिसका मैं मन्दिर मन्दिरमें अनुसन्धान करता हूँ। जिसने तेरा मर्म समझ लिया है वह सभी ठौर सत्यका संग्रह करता है। सम्राट्के आदेशसे एकेश्वरवादियों और विशेष कर काशमीरके ईश्वरोपासकोंके लिए यह मन्दिर निर्मित हुआ है। जो इस मन्दिरको नष्ट करेगा वह अपने ही धर्मको भग्न करेगा। यदि विवेकके अनुसार चला जाय तो किसीसे किसीका विवाद न हो। बाहरी वस्तुओंके लक्ष्यसे ही अनर्थका उद्भव होता है। हे न्यायवान् परमेश्वर ! तू उद्देश्यके अनुसार कार्यका विचार करता है। तू ही सम्राट्के हृदयमें महदुद्देश्योंकी प्रेरणा करता है।" अबुलफ़ज़लके इन वाक्योंसे सम्राट्की धार्मिक नीतिका अच्छा पता चलता है। अकबर एवं उसके सूफ़ी मित्रोंका यही धार्मिक सिद्धान्त था। वह परम धार्मिक था। उसके अन्तःकरणकी प्रवृत्ति आरम्भसे ही धर्मके गूढ़ और उदार तत्वोंकी ओर झुकी थी। धार्मिकतामें वह आलमगीरसे कम न था परन्तु सुन्नी कट्टरताका उसमें

अभाव था। वह सभीको एक दृष्टिसे देखता था। 'काफिर' उसके लिए कोई था ही नहीं। विविध धर्मोंके तत्वको तुलनात्मक दृष्टिसे वह समझने (study of comparative Religion) की चेष्टा करता था। महात्मा बुद्धदेवको आत्मबोध होनेके पूर्व एवं राजसी आनन्दके बीचमें जिस प्रकार धार्मिक चिन्ता सताया करती थी उसी प्रकार सम्राट् अकबरके हृदयको भी धार्मिक द्वेष और क्रूरताओंने डाँवाडोल कर दिया। विविध देशों और विविध कालोंमें धर्मके नामपर जो अधर्म हुए हैं और जिस प्रकार मनुष्योंकी मानसिक स्वतन्त्रताका हनन किया गया है उसे देखकर धर्मके असली तत्वको पह-चाननेवाले हृदयोंको समय समयपर बहुत सन्ताप हुआ है। बुद्धदेवने संसारको त्याग दिया, राजपाटको तिलाञ्जलि दे दी और ऐसे धर्मका उपदेश किया जिसके द्वारा आज भी लाखों मानव सन्तानको शान्ति और निर्वाणका मार्ग उपलब्ध हो रहा है। परन्तु सम्राट् अकबर इच्छा रहते हुए भी "तौहीद इलाही" का प्रसार न कर सका। आत्मबोधका भाव सूत्र रूपमें उसके हृदयमें वर्तमान था। १५५७ में पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें ही अकबरको अदूरदर्शियोंकी उपस्थितिसे कुछ गुप्त क्षोभसा हो गया था। १५६२ में २० वर्षकी अवस्थामें भी उसकी आत्माको अत्यन्त धार्मिक खेदका अनुभव हुआ। फिर १५७८ में ३६ वर्षकी अवस्थामें—'जीवन यात्राके आधे मार्गमें'—ऐसा स्वप्न देखा, ऐसे विषयोंका अनुभव किया जो 'वर्णन नहीं किये जा सकते'। अकबर स्वभावतः सूफी धर्म (Mysticism) की ओर प्रवृत्त था। अपने सूफी मित्रोंकी तरह दिव्य यथा-र्थताका स्वयमेव अनुभव करनेकी वह चेष्टा करता था।"

बहुत कुछ सम्भव है कि यदि वह अपनी उच्चाकांक्षाओंको पूर्ण करने तथा विविध सांसारिक कार्योंको सिद्ध करनेमें न लगा रहता तो वह संसारसे विलग होकर धर्मप्रवर्तनमें प्रवृत्त हुआ होता।

अकबर आरम्भसे ही विद्वानों एवं प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियोंके सत्सङ्गमें रहता था। विज्ञान, प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास, धर्म एवं सम्प्रदाय इत्यादि विषयोंपर शास्त्रार्थ सुननेमें उसे आनन्द मिलता था। अपने शासनकालके बीसवें वर्ष में अजमेरसे लौट आनेपर सम्राट्ने चतुर शिल्पियोंको फतेहपुर सीकरीके राजकीय उपवनोंमें पवित्र पुरुषोंके लिए एक भवन बनानेका आदेश किया; जिसमें सय्यदों, उलमाओं और शेखोंके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं जा सकता था। भवनमें चार ऐवान (हाल) थे। तैयार हो जाने पर सम्राट् 'शुक्रवारों तथा पवित्र रात्रियों' को उसमें बुद्धिमानोंके सङ्गमें अरुणोदय तक बैठा करता था। पश्चिमी ऐवान सैय्यदोंके लिए, दक्षिणी उलमाओंके लिए, उत्तरी शेखोंके लिए और पूर्वी अमीरोंके लिये बनाया गया था। इस धर्म-मन्दिरका नाम 'इबादत खाना' था। बृहस्पतिवारको सूर्यास्तके कुछ समय बाद आरम्भ होकर शास्त्रार्थ कभी कभी दूसरे दिन दोपहर तक जारी रहता था। सम्राट् इन शास्त्रार्थोंकी अध्यक्षता स्वयं करता था पर थक जानेपर किसी दूसरे सुयोग्य व्यक्तिको नियत कर देता था। पहले इबादत खानेके शास्त्रार्थोंमें सैय्यदों, शेखों, उलमाओं और अमीरोंको छोड़ कर दूसरा कोई नहीं सम्मिलित हो सकता था उस समय भी यद्यपि सम्राट् के हृदयमें सूफियोंकी उदारता भरी थी तथापि वह मुसलमान धर्मको ही उस

सत्य मानता था। अतएव इन विवादोंमें हिन्दुओं अथवा अन्य 'काफ़िरों' को नहीं सम्मिलित किया गया। बदाऊनीने भी अकबर की तत्कालीन धार्मिकता की प्रशंसा की है। पर इबादत खानेके शास्त्रार्थोंने सम्राट्को सदाके लिए इसलामसे विरक्त कर दिया। बदाऊनी लिखता है कि "यह विद्वान् एक दूसरेपर अपनी जिह्वाका खड्ग चलाने लगे और इतना वैर-भाव प्रकट हुआ कि एक दूसरेको काफ़िर और विधर्मी कहने लगे। शङ्का करनेवालोंने शङ्का करना आरम्भ किया, जिससे सच्ची बात झूठी मालूम होने लगी और झूठी बात सच्ची। और इस कारण सम्राट्, जो बड़ा बुद्धिमान् और तथ्यान्वेषक था पर * नीच विधर्मी पुरुषोंसे घिरा था, धर्ममें सन्देह करने लगा। शङ्का पर शङ्का होने लगी। सच्चे धर्म (इसलाम) और नियमकी दीवाल तोड़दी गई। और पाँच छः वर्ष में सम्राट्में इसलामका लेशमात्र भी नहीं रहा।" १५७८ में इबादत खानेमें विभिन्न मतावलम्बियोंका प्रवेश होने लगा। हिन्दू और ईसाई इत्यादि धर्मोंके ज्ञाता आने लगे। स्मिथका अनुमान है कि १५७९ या १५८० से बड़ बड़े शास्त्रार्थ इबादत खानामें न होकर दीवानेखासमें होने लगे। १५८१ में सम्राट्को पश्चिमोत्तरमें अपने भाईके विपक्ष उद्योगके कारण साम्राज्यके लिए चिन्ता सी उपस्थित थी। पर इस भयको दूर करके वह निर्द्वन्द्व हो गया। सिंहासन और मृत्युके भयसे बचकर वह

---

* बदाऊनी कट्टर सुन्नी था। वह सुन्नी धर्मको न माननेवालोंको 'नीच', 'कुत्ता', 'सुअर' इत्यादिकी उपाधि दिया करता था।

इसलामका प्रत्यक्ष विरोध करने लगा। 'दीन इलाही' की स्थापना हुई और सम्राट्की इच्छा थी कि साम्राज्य भरमें इस मतका प्रसार हो। इसके कुछ ही पहले सम्राट्ने (सम्भवतः कूटनीतिसे प्रेरित होकर) १५७५ से १५८१ के बीचमें यह आज्ञा प्रसारित की थी कि जिसे मक्का जाना हो वह राजकीय व्ययसे जा सकता है। परन्तु भयके दूर होते ही उसने इसलामको एक तरहसे पूर्णतः परित्याग कर दिया।

जहांगीर लिखता है कि "मेरा पिता सदा हर जाति और धर्मके विद्वानोंके सङ्गमें रहता था और विशेषतः भारतके पण्डितों तथा विद्वानोंका साथ किये था। वह था तो निरक्षर; पर विद्वानोंके सत्सङ्गसे उसका ज्ञान इतना बढ़ गया था कि कोई इस त्रुटिको समझ नहीं पाता था।........उसका कार्य और आचरण सांसारिक मनुष्योंके समान न था और परमेश्वरका प्रताप उस पर प्रकट हो गया था।........मेरे सम्मानास्पद पिताकी अनेक तपस्याओंमें से एक यह भी थी कि वह जानवरोंका मांस नहीं खाता था। वर्षमें तीन महीने वह मांस खाता था, पर नौ महीने 'सूफी' भोजनसे ही सन्तुष्ट रहता था। जीव-हत्या उसे बिलकुल नहीं पसन्द थी। कई दिवसों और कई महीनोंमें तो कोई भी जीव हिंसा नहीं कर सकता था।" निस्सन्देह सम्राट्ने "अहिंसा परमो धर्मः" का सिद्धान्त जैनियोंसे ग्रहण किया था। स्मिथ सच कहते हैं कि इतिहासकारोंने सम्राट्के धर्मपर जैनियोंके प्रभावका परिचय नहीं दिया है। पर वास्तविक बात यह थी कि सम्राट्के धर्मपर जैनियोंका अच्छा प्रभाव पड़ा। पारसियोंका प्रभाव तो उसके आचार-व्यवहारसे ही प्रत्यक्ष विदित हो जाता है।

पारसी धर्ममें उसे अधिक शान्तिदायक व्यवहारोंका समावेश मिला। एक तो पारसी धर्मके सिद्धान्तोंकी चमकीली अंशु-मालाएँ स्वयम् प्राकृतिक धर्मके जिज्ञासुपर अधिक प्रभाव डालती हैं; दूसरे पारसी धर्मके जन्मभूमि ईरानसे सम्राट् का सम्बन्ध भी अधिक था। अतएव इस धर्मके सिद्धान्तोंमें अकबरको विशेष आकर्षण भी प्रतीत हुआ। वह सूर्य और अग्निकी अनेक रूपोंमें उपासना करने लगा। राजभवनमें उसने पवित्र अग्निकी स्थापना की, जिसकी रक्षाका कार्य अबुलफजलको सौंपा गया। मार्च १५८० से अकबर सूर्य और अग्निके सामने खुलकर सबके सम्मुख सिजदा करने लगा तथा सायंकालकी रोशनियोंके प्रज्वलित होनेपर पूरा दरबार सादर खड़ा हो जाता था। सूर्यास्तके एक घड़ी पूर्व सम्राट् सूर्यके सम्मानार्थ सन्नद्ध हो जाता था। सूर्यास्त हो जानेपर बारह रोशनी जलायी जाती थी, जिनमेंसे एकको लेकर कोई सुमधुर गायक सम्राट्के सम्मुख परमेश्वरकी प्रशंसा करता था। अबुलफजलने अट्ठारहवीं आईनमें इसका वृत्तान्त दिया है। सूर्य पूजाकी प्रशंसा हिन्दू राजा बीरबल भी अकबरसे किया करता था; एवं अन्तःपुरकी हिन्दू स्त्रियाँ हिन्दू रीतिसे होम करती थीं। दोनोंका प्रभाव सम्राट् पर पड़ा। वह हिन्दू रीति नीतिका भी बहुत अनुसरण करता था तथा कुछ ईसाई चिन्हों का भी प्रयोग करने लगा था। अकबरके धार्मिक विचारोंके अध्ययनमें जैन, पारसी * हिन्दू और ईसाई प्रभावोंपर विशेष ध्यान देना चाहिये। चारों धर्मवालोंके पास यह विश्वास करनेको पर्याप्त कारण विद्यमान था कि सम्राट् उनके धर्मका

---

* श्रमणों अर्थात् संन्यासियोंने भी अच्छा प्रभाव डाला था।

अनुयायी था। पर वह पूर्णतः इनमेंसे किसी भी धर्म को नहीं मानता था। सभी धर्मोंमें जो बातें उसे अच्छी लगीं उनका ग्रहण किया, जो अनुपयुक्त प्रतीत हुई उनका त्याग किया। प्रत्येक धर्ममें अच्छी बुरी दोनों प्रकारकी बातें होती हैं। इबादतखाने एवं दीवाने खासके धार्मिक शास्त्रार्थोंने इस तथ्यकी सत्यता सम्राट् पर सम्यक् प्रकट कर दी। तुलना करनेपर सम्राट् अकबर कई बातों में महाराज हर्षवर्धनके समान था। किन्तु सबसे प्रत्यक्ष तो यह है कि दोनोंमें धर्म जिज्ञासा थी और दोनोंने धार्मिक शास्त्रार्थों का नियमित आयोजन किया था। अकबरके शास्त्रार्थोंमें कई तो विदेशी एवं अतिविरोधी धर्मोंका संयोग हुआ था। सूफी विद्वान्, व्याख्याता, न्यायवेत्ता, सुन्नी-शिया, ब्राह्मण, नास्तिक, जैन, चार्वाक, ईसाई, यहूदी, सैबियन (पहले किताबके साथ इस सम्प्रदायका भी नाम लिया जाता है) पारसी और बौद्ध एवं प्रत्येक धर्म के विद्वान् सम्राट् के धार्मिक शास्त्रार्थों में सम्मिलित होते थे। एक बार मुसलमानों और ईसाईयोंके गर्म शास्त्रार्थके बाद सम्राट्ने जो कुछ कहा था उससे अकबरके धार्मिक विचारोंका स्पष्ट उद्घाटन होता है। उसने यह कहा था। "लोग समझते हैं कि इसलामके अक्षरोंका बाहरी अनुसरण बिना हृदयमें विश्वास किये, लाभ पहुँचा सकता है। मेरी शक्तिके भयसे अनेक हिन्दुओंने मेरे पूर्वजोंका धर्म ग्रहण कर लिया है। पर अब मेरे हृदयमें सच्चाईके किरणोंका प्रकाश पहुँच गया है। मैंने समझ लिया है कि विभिन्न विरोधोंके दुःखपूर्ण आगारमें जहाँ तुम्हारे विकट अभिमान मय अँधेरे बादल और अहङ्कारमय कुहरे जम गये हैं वहाँ बिना प्रमाणके एक डग भी आगे नहीं बढ़

सकते। हमें वही धर्म लाभप्रद हो सकता है जिसे हम लोग अच्छी तरह विचार करके ग्रहण करते हैं।"

अकबरके धार्मिक विकासका अध्ययन बड़ा रोचक है। आरम्भसे ही उदार अकबरका हृदय धर्म एवं धार्मिक उदारताकी ओर झुका था। वह प्रायः फकीरोंके आश्रमों एवं पवित्र स्थानोंको जाता था। धीरे धीरे इसलामके अतिरिक्त अन्य धर्मोंसे भी उसका समागम हुआ। इसलामकी कई रीतियोंसे उसका द्वेष-सा हो गया और वह धीरे धीरे इसलामको छोड़ने तथा स्वयं धर्माधिष्ठाता भी बनने की सीढ़ीपर अग्रसर हुआ। १५७९ के जून मासमें फ़तहपुरसीकरीकी प्रधान मसजिदमें सम्राट्ने इमामे आदिल की हैसियतसे ९८७ हिजरीके जमादी-उल-अव्वल मासके पहले जुमा (शुक्रवार) को खुतबा स्वयं पढ़ना आरम्भ किया। फैज़ी रचित खुतबाको पढ़कर सम्राट्ने कुरानकी कुछ आयतें पढ़ी। फिर फ़ातिहा (कुरानका आरम्भिक भाग) पढ़के नीचे उतरा और नमाज़ पढ़ी। सम्राट्ने ऐसा अनेक बार किया पर बदाऊनी लिखता है कि "खुतबा शुरू करते ही वह तुतलाने और काँपने लगा। वह शेख़ फैज़ीके खुतबेके तीन पाद भी न पढ़ सका और उतर आया। तब फिर दरबारके ख़तीब हाफ़िज़ मुहम्मद अमीनको इमामका कार्य सौंप दिया।" बदाऊनीके इस विवरणमें अतिशयोक्ति है। इसका अभिप्राय केवल इतना ही समझना चाहिये कि यह नयी बात मुसल्मानोंको रुची नहीं और इसी कारण कूटनीतिज्ञ अकबरने यह कार्य ख़तीबको सौंप दिया। बदाऊनीके विवरणमें "तीन पाद" का अर्थ यही हो सकता है कि सम्राट्ने केवल तीन चार शुक्रवारको खुतबा

पड़ा था। "तीन पाद" का मौलिक अर्थमें नहीं वरन् लक्ष्यार्थ में प्रयोग हुआ। पर सम्राट् धर्म के विषयमें अपना नेतृत्व दृढ़ आधारपर जमानेसे नहीं चूक सकता था। उसी वर्ष रजबके महीनेमें प्रधान प्रधान उलमाओंके हस्ताक्षरसे सम्राट्को धर्म (इसलाम) के विषयमें सर्वोपरि अधिकार दिया गया। कुछने तो प्रसन्नतापूर्वक हस्ताक्षर किया पर कुछको विवश होकर करना था। इस अधिकार-पत्र द्वारा सम्राट्को यह अधिकार मिला कि उसका निर्णय धर्मके विषयमें भी उलमाओं, काज़ियों और मुफ्तियों इत्यादि सभीके निर्णयोंके ऊपर माननीय होगा। प्रत्यक्ष रूपसे तो इसलामकी वृद्धि-की आशासे यह अधिकार पत्र दिया गया, परन्तु वास्तवमें यह सब कार्रवाई कट्टर मुसलमानोंके विरोध को शान्त करनेके लिए की गयी। इस अधिकार-पत्रने सम्राट् के हाथमें एक दृढ़ अस्त्र दे दिया। मक़दूमुल्मुल्क, शेख़ अब्दुन्नबी सदरुस्सदर, मुल्तानके क़ाज़ी जलालुद्दीन क़ाज़िउल कुज़्ज़ात, साम्राज्यके मुफ़्ती सदरजहाँ, शेख़ मुबारक और बदख्शाँके ग़ाज़ीख़ाने इस अधिकार-पत्र पर हस्ताक्षर और मुहर की थी। इन लोगोंने व्यवस्था दी थी कि "..............सुल्ताने आदिलका पद परमे-श्वरकी दृष्टिमें मुजतहिद्के पदसे ऊँचा है। और इसलामका बादशाह, आस्तिकोंका अमीर, संसारमें ईश्वरकी छाया रूप अबुलफ़तह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह ग़ाज़ी (ईश्वर उसका राज्य चिरस्थायी करे !) बड़ा न्यायी, बड़ा बुद्धिमान् एवं ईश्वरका बड़ा भय माननेवाला बादशाह है।... किसी भी धार्मिक मुजतहिदोंकी सम्मति विभिन्न होने पर राष्ट्रके हितकी दृष्टिसे और राजनीतिक लाभके विचारसे सम्राट् जो

निर्णय करेगा वह हमें एवं समस्त राज्यको मान्य होगा। अप-रञ्च यदि सम्राट् कोई नवीन आज्ञा भी दे तो उसे मानना हमारा और राष्ट्रका परम कर्तव्य होगा, पर वह आज्ञा कुरानकी किसी आयतके अनुसार राष्ट्रके हितकी दृष्टिसे निकाली गई हो। और यदि कोई भी प्रजा सम्राट्की निकाली हुई आज्ञाका विरोध करेगी तो उसे परलोकमें कष्ट एवं इस लोकमें माल और अधिकारकी हानि उठानी पड़ेगी। ......"

सम्राट्के धार्मिक विकासका क्रम अनेक राजकीय व्यव-सायोंके बीचमें मन्द नहीं था। काबुलसे लौटने पर उसका राजनीतिक भय दूर हो गया। वह अब स्वतन्त्रतापूर्वक अपने धार्मिक सिद्धान्तोंके प्रसारमें अग्रसर हुआ। उसने इस लाभ-को बिल्कुल त्याग करके एक नया ही मत चलाया जिसका प्रवर्तक तथा धर्माध्यक्ष सम्राट् स्वयं था। यह नया मत आधु-निक थियासोफी (Theosophy) से कई बातोंमें मिलता था। इस मतके सिद्धान्त* "कुछ तो मुहम्मदके कुरानसे, कुछ ब्राह्म-णोंके शास्त्रोंसे और कुछ ईसाइयोंकी अञ्जीलसे लिये गये।" सम्राट्ने सभी धर्मोंकी अच्छी बातोंको इस धर्ममें सम्मिलित किया। एक सभाका आह्वान करके उसने अपने विचारोंको प्रकट किया और सबके स्वीकार करने पर शेख मुबारक (अबुल फ़ज़लका पिता) को सब तरफ़ इन विचारोंको उद्-घोषित करनेके लिए भेजा। पर शेख मुबारकको प्रचारके कार्यमें अत्यल्प सफलता हुई होगी। सम्राट्का 'दीन या तौहीद इलाही' स्थापित हो गया पर इसके माननेवालोंकी संख्या

---

* बारटोली।

बहुत कम थी। वह अपने मतका प्रसार करनेके लिए भय या कठोरताका उपयोग नहीं करना चाहता था। जो थोड़े से लोग दीन इलाहीको मानते थे वह भी अबुलफ़ज़ल और अकबरकी मृत्युके बाद नहीं रह गये। * दीन इलाहीके प्रधान अनुयायियोंमें केवल एक हिन्दू बीरबलका ही नाम मिलता है। राजा भगवानदास और कुवर मानसिंह ने तो इसके अनुयायी होना स्पष्टत: अस्वीकारही कर दिया था। नया मत चलानेकी लालसा अकबरको, सम्भव है, अलाउद्दीन खिल्जीके इतिहास पढ़नेसे हुई हो। खिल्जी भी नया मत चलाना चाहता था, पर कोतवालके यह समझानेपर कि नया मत चलाना बादशाहोंका काम नहीं है वह मान गया था। खिल्जी और उसके कोतवाल दोनोंका काम सराहनीय था। पर अकबरके हृदयमें इस लालसाका उद्भव चाहे खिल्जी के दृष्टान्तसे ही हुआ हो, पर सम्राट् के⨳ धार्मिक विकासपर प्रभाव दूसरोंका ही पड़ा, जिनका सूक्ष्म विवरण पिछले पृष्ठोंमें दिया जा चुका है। अकबर साम्राज्यका अधिष्ठाता ही नहीं धर्मका नेता भी हो गया।

---

* दीन इलाहीके माननेवालोंमें अबुलफ़ज़ल, फैजी शेख मुबारक, ज़ाफरबेग, आसफ खाँ, कासिमेकाही अब्दुल्समद, आजम खां कोका, मुल्ला शाह मुहम्मद, सूफ़ी अहमद, सदर जहां (प्रधान न्यायवित्) और उसके दो पुत्र, मीरशरीफ़, सुल्तान ख्वाजा, मिर्ज़ाजानी, तक़ी, शेखज़ादा और बीरबल थे।

⨳ सम्राट्के धार्मिक विकासकी तुलना सम्राट् अशोक और महाराज हर्षवर्धनसे कीजिये। इस सम्बन्धमें अकबरकी तुलना गुरु गोविन्दसिंहके खालसासे भी कीजिये।

दीन इलाहीमें सम्मिलित करनेके पहले इसका भली भाँति निश्चय कर लिया जाता था कि वह व्यक्ति वास्तवमें तौहीदको मानता है या नहीं। यह निश्चय कर लेने पर सम्राट् अपनी चलाई रीतिके अनुसार प्रार्थीको शिष्य बनाकर "अल्लाहु अकबर" का मन्त्र देता था। जब कभी दीन इलाहीके माननेवाले मिलते थे तो सलाम करनेके स्थान पर एक "अल्लाहु अकबर" उच्चारण करता था। और दूसरा "जल्ला जलालुहू" कह कर उत्तर देता था। सम्राट्ने दीन इलाहीके लिए कुछ अन्य विशेष नियम भी बनाये थे और स्वभावतः इस धर्मके अनुयायियोंपर उसकी विशेष कृपा रहती थी। दीन इलाहीके माननेवालोंको माल, जान, सम्मान और धर्म चारोंको सम्राट्के लिये आवश्यकतानुसार त्यागनेकी प्रतिज्ञा करनी होती थी। कुछ लोग केवल आंशिक प्रतिज्ञा ही करते थे। सम्राट्के जीवन कालमें दीन इलाहीकी चर्चा चलती रही, पर उसके देहान्तके साथ साथ दीन इलाहीका भी अन्त हो गया। किन्तु सम्राट् की विशद धार्मिक नीतिका अनुसरण उसके बाद भी होता रहा। (आलमगीरके समय तक) उसकी नीतिका प्रजाके हितपर विशेष प्रभाव पड़ा। यहां पर यह भी लिख देना आवश्यक है कि सम्राट्ने यद्यपि सयूरगल और धार्मिक भूमि इत्यादि धर्माध्यक्षों और धार्मिक पुरुषोंको देनेकी नीतिको बिल्कुल बन्द नहीं किया था तथापि (जैसा पिछले एक परिच्छेदमें लिख आये हैं) इस प्रथाको वह बहुत निरुत्साहित करता था। धार्मिक भूमिके मार्गमें उसने कुछ कठिनाइयां उपस्थित कर दी थी, जिस पर बदाऊनी अपनी "मुन्तख़ाबुत्तवारीख़" में बहुत नाक भौंह सिकोड़ता है। पर सम्राट्के धार्मिक भूमि

सम्बन्धी नियमोंसे साम्राज्यको लाभ था। धर्मके विशेष अङ्गों पर शासन करनेके अतिरिक्त सम्राट्को सार्वजनिक सदाचारको पवित्र रखनेका बड़ा ध्यान रहता था। इस विषय पर सम्राट्के विरोधियों द्वारा लिखे विवरणोंसे भी बहुत उत्तम प्रकाश पड़ता है। अतएव सम्राट् के विषयमें, अन्तमें, यही धारणा होती है कि वह धार्मिक उदारताके साथ साथ अपने प्रजाकी धार्मिक उन्नतिका वास्तविक विकास चाहता था।

१७—प्रजा की सामाजिक और आर्थिक स्थितिपर अकबर की राज्य व्यवस्था का परिणाम

सम्राट् अकबरके समकालीन महात्मा तुलसीदास राम-राज्यका अपने रामचरित मानसमें इस प्रकार वर्णन करते हैं:-

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहिं व्यापा॥

× × ×

अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब विरुज शरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
सब निर्दंभ धरम रत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनज्ञ पण्डित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी।

× × ×

एकनारिव्रतरत सब झारी। ते मन वच क्रम पति हितकारी॥
दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतेहु मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्र के राज॥

विचारने पर इन वाक्योंसे यह प्रकट होता है कि गोसाईं जीके समयमें भी अकाल मृत्यु, दुख दारिद्र्य एवं भाँति भाँति के आर्थिक एवं सामाजिक दोष प्रजामें विद्यमान थे। क्योंकि गोसाईंजी जिस समय सुराज्यका वर्णन करने बैठे हैं उस समय सबसे पहले इन्हीं त्रुटियोंका अभाव रामराज्यमें अन्वेषण करते हैं। फिर गोसाईंजीने कलियुगके दुःखोंका जो चित्र रामचरित मानसके सप्तम सोपानमें ही खींचा है उसे पढ़कर यह धारणा और भी दृढ़ हो जाती है। कलियुगके दुःखोंका वर्णन करते समय गोसाईंजीने निस्सन्देह अपने ही समयका वर्णन किया है। अबुलफ़ज़ल तथा यूरोपीय यात्रियों आदि-ने जो कुछ लिखा है वह विशेषतः दरबार इत्यादिसे सम्बन्ध रखता है। उनके विवरणोंसे दरबारसे सम्पर्क रखनेवाले अथवा प्रान्तीय शासनमें लगे हुए कर्मचारियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले मजदूरों, कारीगरों और शिल्पियोंकी आर्थिक स्थितिका पता चलता है। यह इतिहासकार किसी न किसी रूपमें दरबारसे अधिक सम्पर्क रखते थे। परन्तु गोसाईं तुलसीदासको दरबारसे कोई भी सम्बन्ध न था। वे देशकी साधारण प्रजाके बीचमें भ्रमण करते थे और उसके दुःखों एवं त्रुटियोंसे परिचित थे। परन्तु अकबरी कालके आधुनिक इतिहासकारोंने भी अभी तक गोसाईं जीके रामचरित मानस की छानबीन ऐतिहासिक दृष्टिसे नहीं की है। आलोचना करनेपर सम्राट् अकबरके समयमें भारतवर्षके प्रजाकी सामाजिक और आर्थिक स्थितिपर अच्छा प्रकाश पड़ेगा। आलोचना करते समय यह भी ध्यानमें रखने योग्य है कि रामचरित मानसकी रचना अकबरके राजत्वकालके "उत्तरार्द्ध"

में हुई थी। इस छोटेसे परिच्छेदमें रामचरित मानस की पूरी पूरी छानबीन* अकबरकी प्रजाकी वास्तविक स्थिति जाननेके लिए करना स्थानाभावके कारण असम्भव है। अतएव अति सूक्ष्म रूपसे कुछ पद उद्धृत करके ही सन्तोष करना होगा। इन पदोंसे विज्ञ लोग स्वयमेव आवश्यक अनुमान निकाल लेंगे।

"कलिमल ग्रासे धरम सब, लुपुत भये सद्ग्रन्थ।
ऽदंभिन निज मति कल्पिकरि, प्रगट किये बहु पंथ॥

× × ×

द्विज श्रुति वंचक "भूप प्रजाशन" × × ×

× × ×

गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥

× × ×

मातु पिता बालकन्ह बोलावहिं। "उदर भरे सोइ धरम सिखावहिं"॥

× × ×

"कौड़ी लागि" लोभ वश, करहिं विप्र गुरु घात॥

× × ×

बादहिं शूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्हतें कछु घाटि?

× × ×

---

*यह कार्य किसी योग्य व्यक्तिको अपने हाथमें शीघ्र लेना चाहिये। अवकाश मिलने पर सम्भव है मैं भी इस कार्यको करूँगा।

ऽलेखक समझता है कि अकबर सम्राट्को लक्ष्य करके यह वाक्य लिखा है।

तपसी धनवंत "दरिद्र गृही" × ×

× × ×

[1] "नृप पाप परायन धर्म नहीं, करि दण्ड विदण्ड प्रजा नितहीं ॥

× × ×

कलि बारहिं बार "दुकाल परै, "बिनु अन्न दुखी" सब लोग मरै ॥

× × ×

देव न बरषहिं धरनि पर, "बये न जामे धान' ॥

× × × "धनहीन दुखी" ममता बहुधा ॥

× × ×

"नर पीड़ित रोग न" भोग कहीं × ×

लघु जीवन सम्बत पंच दसा (५० वर्ष औसत) × ×

× × × सब जाति कुजाति भये "मँगता" ॥

इस प्रकार एक कट्टर हिन्दू साधुने तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक स्थितिका चित्र खींचा है। यह विवरण गोसाईं जी ने अपने ही समय पर लक्ष्य करके लिखा था। इसमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं प्रतीत होता। आधुनिक और तत्कालीन स्थितिको तुलनात्मक दृष्टिसे देखने पर बहुत अधिक अन्तर नहीं देख पड़ेगा। अकबरके समयमें भी कई बार कठोर दुर्भिक्षकी आवृत्ति इस देशमें हुई थी (देखिये बारहवाँ परिच्छेद)। सम्राट्ने दुर्भिक्ष पीड़ितोंकी सहायताका आयोजन भी किया था पर वह दुर्भिक्षके दुःखोंको टालनेमें असमर्थ था। सम्राट्की राज्य प्रणालीमें व्यवस्थाकी दृष्टिसे अनेगु ण

[1] लेखक समझता है कि अकबर सम्राट्को लक्ष्य करके यह वाक्य लिखा गया है ॥

दृष्टिगोचर होते हैं पर चेष्टा करने पर भी वह दारिद्र्यको दूर न कर सका। यह न तो उसका दोष था और न उसकी राज्य-व्यवस्थाका। उसके पहले अनेक कारणोंसे प्रजाकी दशा और भी हीन थी। अकबरने स्थितिको सुधार, कृषिकी उन्नति की, कृषकोंको प्रोत्साहन दिया और तकावीका आयोजन किया। उस समय आजकलके समान अधिक भूमिमें कृषि न होती थी। आजकल जहाँ बिल्कुल मैदान है और खेती बारी होती है वहाँ उस समय जङ्गलोंका आधिक्य था। पर अकबरके प्रोत्साहनसे कृषिकी क्षेत्र वृद्धि भी अधिक हुई। आईनमें दिये हुए अङ्कोंकी तुलनात्मक आलोचना से विदित होता है कि हिन्दुस्तान (विशेषतः आधुनिक संयुक्तप्रान्त) के पश्चिमी भागोंमें कृषि पूर्ण रूपसे होती थी। कृषिका क्षेत्रफल उधर अधिक था पर उपज कम होती थी। किन्तु पूर्वी भागों में इसका उलटा था। वहाँ कृषि कम क्षेत्रफलमें होती थी पर उपज अधिक थी। पूर्वी भागों में जंगलोंका विशेष आधिक्य था। पश्चिमी भाग राजधानीके समीप था। इस कारण भी वहाँ कृषिके अधिक होनेकी सम्भावना देख पड़ती है। पूर्वी और पश्चिमी भागोंकी कृषिके विषयमें यह भी द्रष्टव्य है कि पश्चिमी भागोंमें अनाज साधारण प्रकारका ही अधिक होता था। पर * पूर्वी भागोंमें उत्तम अनाजोंकी फसल होती थी। मोरलैंडने संयुक्तप्रान्तके विषयमें आईनके अङ्कोंकी वैज्ञानिक

---

* यह सब अनुमान केवल उस प्रान्तके सम्बंधमें है जिसे आजकल "संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध" कहते हैं। देखिये journal of the U P Hist. society जून १९१६।

आलोचना की है। उसी प्रकार पञ्जाब और विहारके विषयमें भी छानबीन होनेकी आवश्यकता है।

अबुलफ़ज़लने जिस प्रकार भूमिकर सम्बन्धी अङ्कोंका विवरण दिया है उसी प्रकार उसने भिन्न भिन्न पदार्थोंके मूल्य, मज़दूरों और कारीगरोंकी मज़दूरी आदिके सम्बन्धके अङ्कोंका विवरण भी दिया है। इन अङ्कोंकी परीक्षा करनेसे भारतवर्षकी तत्कालीन आर्थिक स्थितिका अच्छा परिचय मिल सकता है। उस समय एक बढ़ई १।।) से ५।) तक, छप्पर छानेवाला २।), साधारण श्रमजीवी १।।), महावत ५), बन्दूक़धारी सैनिक २।।।) से ६।) तक, सिरदहा (अर्थात् प्रति दश बन्दूक़धारी सैनिकोंका प्रधान) ६।।) से ७।।) तक, पैदल सैनिक २।।) और पालकी वाहक कहार ३) से ४।।।) तक महीनेमें कमा लेता था। अबुलफ़ज़लने गिलकार, सङ्गतराश, पिंजरासाज़, आराकश, वेलदार, चाहकन, गोताखोर, खिश्त-तराश, सुरखिकोब, शीशा काटनेवाले, वांस काटनेवाले, पटलवंद, लखीरा आदि श्रमजीवियोंकी मज़दूरी लिखी है। साधारण श्रमजीवीकी दैनिक मज़दूरी दो दाम या लगभग ६$\frac{1}{2}$ पाईके थी एवं अभ्यस्त श्रमजीवीको साधारणतः लगभग सात दाम अर्थात् लगभग तीन आना प्रति दिन मिल जाता था। यह मज़दूरी आजकलसे तुलना करने पर बहुत कम जान पड़ेगी। पर यह बात ठीक नहीं है। उस समय खाद्य पदार्थ आजकलकी तरह महँगा न था। तीन शताब्दी पहले सभी पदार्थ बहुत सस्ते मिलते थे। इतने दिनोंमें पदार्थोंका मूल्य ५०० या ६०० प्रतिशतके हिसाबसे बढ़ गया पर मज-दूरोंकी वृद्धि केवल लगभग तीन सौ प्रति शतकके हिसाबसे

हुई है। खाद्य सामग्री तो सस्ती थी ही। प्राय अन्य सभी पदार्थ सस्ते थे। अन्न, गोश्त, दूध, घी, फल सब कुछ सस्ता था। एक साधारण मनुष्यका एक समयका भोजन एक पैसेमें अर्थात् रुपयेके ६४ वें अंशमें ही चल सकता था। अबुलफ़ज़ल के अनुसार अकबरके समयमें खाद्य पदार्थोंका मूल्य इस प्रकार था। [1] प्रति मन* गेहूँ ।–), जौ ≡)।, चावल ।।) से २।।।) तक, मूंगकी दाल ।≡), तेल २) नमक ।=), शकर १।=), दूध ।।=), घी २।।=) और दही ।।≡)। में मिलती थी। अबुलफ़ज़लने गोश्त मसाला और मुरब्बा इत्यादिका भी मूल्य दिया है पर महंगा कोई भी पदार्थ नहीं है। सम्राट्के समयमें फलोंकी उन्नति विशेष थी। भिन्न भिन्न मेवोंका मूल्य इस प्रकार था। असरूद रुपयेमें दस से १०० तक, सेव रुपयेमें ५ से १० तक, अनार प्रति मन ६।।) से १५) तक, किशमिश ≡)।। प्रति सेर मिलती थी। यह तारतारी फल थे। हिन्दुस्तानी मेवोंका मूल्य इस प्रकार था। आम रुपया सैंकड़ा, नारंगी एक दाम (लगभग आध आना) में दो, ईख दो, केला दो, वेर तीन पैसे सेर शहतूत तीन पैसे सेर एवं पनियाला, गूलर, कँवलगट्टा तीन पैसे सेर मिलता था। महुआ भी आध आना सेर था। इमली, आँवला, जामुन, कैंत आदि बहुत सस्ते थे। तरकारियोंमें परवल)।।। सेर, लौकी एक)।।। की, सेम ढाई पैसे सेर, करैला ढाई पैसे सेर, सिंघाड़ा –)। सेर

---

[1] उस समयका मन आधुनिक मनके प्रायः दो तिहाईके बराबर था।

*गेहूँका आटा ।।–), मोटा गेहूँका आटा ।=) और जौ का आटा ।)।। में प्रति मन मिलता था।

मिलता था। किंतु फलों और तरकारियोंका मूल्य प्रजाकी स्थितिमें विशेष अन्तर नहीं डाल सकता; तथापि यह भी अनाजोंके ही समान अत्यन्त सस्ते थे। सम्राट्ने घर बनानेके काममें आनेवाले पदार्थों का मूल्य निश्चित कर दिया था। तीन तीन सेरकी भारी उत्कृष्ट ईटें ॥।) में एक सहस्र मिलती थीं। निर्म्माण पदार्थों (Building material) का भी मूल्य अबुलफ़ज़लने उत्कृष्ट पूर्णताके साथ दिया है। उसने ईट, लकड़ी, लोहा, जंजीर, बांस, मूँज, सन, शीशा इत्यादि सभी पदार्थोंका मूल्य दिया है। इन अङ्कोंकी आलोचनासे अकबरी कालकी आर्थिक स्थितिका अच्छा परिचय मिल जायगा। उस समयकी स्थिति आजकलसे तो अच्छीही थी पर बहुत अधिक अन्तर न था। मज़दूरोंकी दशा तो अवश्य अच्छी थी। पर कृषकोंकी वास्तविक अवस्थाका ठीक ठीक पता नहीं चलता। नगरोंमें धन और सौख्यकी अधिकता देखकर उस समयके विदेशी यात्रियोंको आश्चर्य होता था। आगरा और फ़तहपुर लन्दनसे कहीं अधिक बढ़कर थे। मार्गमें खाद्य सामग्री एवं अन्य आवश्यक पदार्थोंकी दूकानोंका ताँता लगा था। टेरी, फिच और मांसरेट सभी यात्रियोंकी सम्मतिमें मुग़ल साम्राज्यके नगर धनधान्यसे पूर्ण थे। दिल्ली, आगरा, फ़तहपुर, लाहौर, बुरहानपुर, अहमदाबाद और काबुल इत्यादि नगरोंका जो विवरण मिलता है उससे यही विदित होता है कि अकबरी नगरोंकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। इस सम्बन्धमें व्यापार, शिल्प आदिका दिग्दर्शन पिछले एक परिच्छेदमें हो चुका है। सम्राट्की राज्यव्यवस्थासे प्रजाकी आर्थिक स्थितिको लाभ अवश्य पहुँचा पर यह नहीं कहा जा सकता कि अकबरी काल

की प्रजा सुखमय जीवन व्यतीत करती थी। प्रजाको कई बार घोर दुर्भिक्षका सामना करना पड़ा और तत्कालीन आर्थिक स्थिति आजकलसे अच्छी होने पर भी सन्तोषप्रद न थी।

सम्राट् अकबरकी राज्यव्यवस्थाका प्रजाकी सामाजिक स्थितिपर भी अच्छा प्रभाव पड़ा। कट्टर मुसल्मान और कोई कोई कट्टर हिन्दू भी उससे असन्तुष्ट थे। परन्तु सामान्यतः देशकी प्रजा ऐसे सुशासकको पाकर अति प्रसन्न थी। सम्राट्ने अपनी प्रजाके सामाजिक दोषोंको (यथा बाल विवाह, सती, जीव-बलि इत्यादि) दूर करनेका यत्न किया और उसे कुछ सफलता भी हुई। उसके द्वारा समाजमें* सदाचार एवं धर्मकी वृद्धि अच्छी रही। उसकी व्यवस्थाका एक बहुत गहरा परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसल्मानोंके अधिकार एक समान कर दिये गये; एवं धार्म्मिक और सामाजिक स्वतन्त्रताका विकास हुआ। सम्राट्का प्रजाकी सामाजिक उन्नति पर ध्यान रहता था। परन्तु यहाँ पर इस सम्बन्धमें विशेष विवरणकी आवश्यकता नहीं है। अतएव अकबरी कालके प्रजाकी आर्थिक और सामाजिक स्थितिका अति सूक्ष्म दिग्दर्शन करके इस परिच्छेदको यहीं समाप्त करते हैं।

---

*"शैतानपुर" (वेश्याओंका मुहल्ला) नगरसे अलग रहता था। उसके समीप एक सरकारी दफ़्तर रहता था। उस दफ्तरमें उन सभी लोगोंका नाम और पता दर्ज होता था जो शैतानपुरमें जाते थे।

१८—साहित्य और कलाकी संरक्षकता

अकबरके समयमें साहित्य और कलाकी विशेष उन्नति थी। उस समयका भारत साहित्य एवं कला दोनोंके उत्पादन में विकसित प्रभा प्रकट कर रहा था। इस वासन्तिक विकास-पर अकबरके प्रतापी और विजयी शासनका अपरिमित प्रभाव पड़ा। सम्राट्की दृढ़ राज्यव्यवस्थाके कारण देशमें पहलेसे अधिक शान्ति विराजती थी, प्रतिभा सम्पन्न पुरुषोंके मार्गमें बहिरङ्ग बाधायें न थीं, जिससे साहित्य और कला दोनोंके स्फुरणको अच्छा अवसर मिला। सम्राट् भी सब प्रकारके गुणोंको उत्साह प्रदान करता था। वह कवियों और ज्ञानान्वेषण प्रवृत्त मनुष्योंकी नियमित रूपसे सहायता करता था। वह कहता था कि "इस श्रेणीके मनुष्योंके पेटकी चिन्तामें वृथा समय नष्ट करना पड़ेगा। अतएव इनको राजकोशसे नियम पूर्वक आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये।" प्रति रविवारको गुणियोंको पुरस्कार मिलता था उनको हाथी, घोड़ा, धन, परिच्छद, और मूल्यवान् द्रव्य सामग्री पुरस्कार रूपसे दी जाती थी। किसी किसीको विशेष गुणका परिचय देने-पर भूसम्पत्ति भी मिलती थी। उस कालकी उत्कृष्ट कलायें दरबारकी संरक्षकतामें ही उद्भुत हुई। परन्तु दरबारकी संरक्षकतामें प्रकट हुए साहित्यका स्थान ऊँचा नहीं है। दरबारकी संरक्षकतामें उत्पादित साहित्य विशेषतः फ़ारसी भाषामें था। वह चार प्रकारका था—अनुवाद, इतिहास, पत्र

और कविता। अनुवाद प्रायः प्राचीन[१] संस्कृत साहित्यसे किया गया। भाषान्तर करनेमें बहुतसे लोग लगे थे। अनुवादकोंको सम्राट् बहुत अच्छा पुरस्कार देता था। भाषान्तरोंके अतिरिक्त प्राचीन संस्कृत कथाओंके आधार पर भी पुस्तकें लिखी गयीं। सम्राट् संस्कृत पुस्तकोंका भाषान्तर कराकर सुन्दर ज़िल्दों में बँधवाता था तथा सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित कराके अपने वृहत् पुस्तकालयमें रखता था। सम्राट्ने अथर्ववेद, महाभारत, रामायण (वाल्मीकीय) और लीलावती तथा अन्य अनेक ग्रन्थोंका अनुवाद कराया था*। लीलावती का अनुवाद फैज़ीने तथा महाभारत एवं रामायणका अब्दुल कादिर बदाऊनीने किया था। अथर्ववेदका भी अनुवाद बदाऊनीको ही सौंपा गया था। उसने शेख भावन (एक ब्राह्मण जो मुसल्मान हो गया था) की सहायता ली, पर सफल न हो सका। बदाऊनी लिखता है कि "अनुवाद करते समय मुझे कहीं कहीं कठिन भाग मिले, जिन्हें शेख भावन भी न बतला सका। मैंने सम्राट्से निवेदन किया। उसने शेख फैज़ी और फिर हाजी इब्राहीमको आज्ञा दी। हाजीने अङ्गीकार तो कर लिया था पर कुछ लिखा नहीं।" सम्भवतः केवल रामायणका ही अनुवाद बदाऊनीने स्वयं (अन्य विद्वानोंकी सहायतासे) पूर्ण रूपेण किया था। वह कहता है कि "रामायण

---

[१] मुसल्मानोंको भी बहुत पहलेसे संस्कृत साहित्यके गुण मालूम थे। भारतीय सभ्यताके विषयमें अलबरूनी (महमूद ग़ज़नवीका समकालीन) का लिखा इतिहास प्रत्यक्ष प्रमाण है।

* संस्कृतमें अङ्कगणितकी उत्तम पुस्तक।

महाभारतसे उत्तम ग्रन्थ है।" महाभारतके भाषान्तर के विषय में वह लिखता है कि "सम्राट्ने कुछ विद्वान् हिन्दुओंको बुला कर महाभारतका अर्थ लिखनेको कहा। कई रात्रि तो उसने स्वयं नक़ीवखांको अर्थ समझाया था जिससे खां भाव समझ कर फ़ारसीमें उल्लेख करे। तीसरी रातको सम्राट्ने मुझे बुला भेजा और नक़ीवखांके साथ भाषान्तर करनेकी आज्ञा दी। तीन चार महीनोंमें मैंने दो पर्वका अनुवाद किया। ....इसके बाद मुल्ला शेरी और नक़ीवखांने एक साथ कुछ अनुवाद किया और फिर दूसरे अंशके थानेश्वरके सुल्तान हाजीने अकेले ही पूर्ण किया। तब शेख़ फ़ैजीको भाषान्तर को उत्तम और सुपाठ्य गद्य-पद्यमय फ़ारसीमें परिवर्तित करनेका आदेश हुआ। पर वह दो पर्वोंसे अधिक न पूर्ण कर सका। हाजीने इन दोनों पर्वोंका पुनरावलोकन किया और अपने पूर्व लिखित भाषान्तर की त्रुटियोंको शुद्ध करके मूलग्रन्थ से तुलना किया और ग्रन्थ सौ तख़्ते-पत्रोंपर घने अक्षरोंमें लिखा गया। ग्रन्थ इतनी पूर्णताको प्राप्त हुआ कि मूल का एक मक्षिका चिन्ह भी नहीं छूटने पाया।" अनुवादका नाम "रज़मनामा" रखा गया। पुस्तक साज और चित्रोंसे अलंकृत की गयी एवं अमीरोंको इसकी प्रतिलिपि रखनेकी आज्ञा दी गयी। बदाऊनी कट्टर और तङ्ग विचारोंका सुन्नी था। वह काफ़िर पुस्तकोंपर श्रम करना पाप समझता था पर विवश होकर उसे अनुवाद के काममें लगना ही पड़ा। संस्कृत पुस्तकोंका अनुवाद प्रायः हिन्दी द्वारा फ़ारसीमें होता था। पहिले संस्कृतज्ञ लोग हिन्दी में अर्थ कर देते थे। फिर फ़ारसीमें अनुवाद होता था। संस्कृत ही नहीं, यूनानी

और अरबी पुस्तकोंका भी अनुवाद सम्राट्ने फ़ारसीमें कराया था; किन्तु ये अनुवादके ग्रन्थ उच्च कोटिके मौलिक ग्रन्थोंके आधारसे लिखित होने पर भी उत्तम साहित्यमें परिगणित नहीं हो सकते।

अकबरके राजत्व कालमें चार बड़े बड़े इतिहास-लेखकों-ने फ़ारसी भाषामें इस देशका इतिहास लिखा था—मुहम्मद क़ासिम फ़िरिश्ता, निजामुद्दीन अहमद, अब्दुल क़ादिर बदाऊनी और अबुलफ़ज़ल। फ़िरिश्ताका अकबरी दरबारसे कोई सम्बन्ध नहीं था। वह बीजापुरमें रहता था, पर शेष तीनों का अकबरी दरबारसे विशेष सम्बन्ध था। निजामुद्दीन अह-मदने सीधी सादी भाषामें घटित घटनाओं का उल्लेख किया है। अब्दुल क़ादिर की भाषा कठिन है एवं उसके विचारोंमें सुन्नी कट्टरताका पक्षपात भरा है। उसकी कृतिमें साहित्यिक योजनाका अभाव है। परन्तु इतिहासकारके लिये उसकी पुस्तक बड़े काम की है। अबुलफ़ज़लमें भी एक दूसरा ही पक्षपात था। वह अकबरका प्रशंसक चापलूस था; उसे अक-बरके सभी कार्योंमें दिव्यताका अनुभव होता है। तथापि उसका अकबरनामा इतिहासकारके लिये अत्याज्य पदार्थ है। आईने अकबरी तो उसका अद्वितीय ग्रन्थ है। सोलहवीं शताब्दीमें राज्य व्यवस्थाके विविध अंगोंका द्योतन करनेके लिये यही सर्वोत्तम ग्रन्थ है। अकबरनामा साहित्यकी दृष्टिसे भी अच्छा ग्रन्थ है। अबुलफजलकी लेखन रीति (Style) दूसरे मुन्शियोंकी भद्दी रचनाओंसे बढ़कर है। उसके शब्दों की प्रौढ़ता, वाक्योंकी रचना, समासोंका औचित्य और यतियोंका सौन्दर्य अनुपम है। फ़ारसीके विद्वानोंने उसकी

रचनाओंकी बड़ी प्रशंसा की है। उसने पत्रोंका भी संग्रह किया था। भारतमें उसके समान मुसलमान गद्य लेखक और कोई नहीं हुआ। सम्राट्के यहाँ चौदह इतिहास लेखक नियुक्त थे। पर सम्राट्को तुकबन्दी करने वाले कवियोंकी उतनी चाह न थी। अबुलफ़ज़ल कहता है "मूर्ख लोग समझते हैं कि वह कविताकी अपेक्षा नहीं करता है और इसीलिये अपने हृदय को कवियोंसे विलग रखता है। तथापि दरबारमें सहस्रों कवि निरन्तर रहते हैं और उनमेंसे बहुतोंने एक 'दीवान' पूरा किया है या 'मसनवी' लिखा है।" फिर अबुलफ़ज़लने ५६ कवियों का नाम गिनाया है जो दरबारमें रहते थे। इनमें फैज़ी सर्वोत्तम' था। प्रोफेसर ब्लाकमैनके मतमें फैज़ीसे बड़ा कोई कवि 'मुसल्मानी' भारतवर्षमें नहीं हुआ। वह संस्कृत भी पढ़ा था तथा फ़ारसीका अच्छा विद्वान् था। राजा मनोहर नामक हिन्दू भी फ़ारसी भाषामें मनोहर कविता बना सकता था। इसलिये सब लोग "मुहम्मद मनोहर" कह कर उसका बड़ा सम्मान करते थे। सम्राट्ने १५ ऐसे कवियोंका भी नाम गिनाया है जो दरबार में तो नहीं रहते थे पर साम्राज्य के विभिन्न स्थानोंसे कविता करके सम्राट्के पास भेजते थे। इन्हें पुरस्कार मिलता था। इन कवियोंके अतिरिक्त सम्राट्के दरबारमें भिन्न भिन्न विद्याओंको जाननेवाले १४२ पण्डित और चिकित्सक थे, जिनमें पैंतीस हिन्दू थे। अकबरके राजत्व कालमें फ़ारसी भाषाके अलंकार स्वरूप कुछ ग्रन्थोंकी रचना हुई परन्तु साहित्यिक दृष्टिसे अकबरी हिन्दुस्तानमें बनी हुई फ़ारसी रचनाओंमें विशेष सौन्दर्य नहीं है।

अकबरी काल हिन्दी साहित्यके इतिहासमें सर्वोत्कृष्ट था। यों तो दरबारमें भी हिन्दी कवि विद्यमान थे। स्वयं

अकबर हिन्दीके कवियोंमें गिना जाता है। कुमार दानियाल भी हिन्दीका कवि था। मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखाना जो फारसी, अरबी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दीका ज्ञाता थ, हिन्दी भाषाकी उत्कृष्ट कविता करता था। उसके दोहे परम रोचक और उपदेशप्रद होते थे। पर सम्राट्के राजत्वकालमें हिन्दी भाषामें दो परमोत्कृष्ट उज्ज्वल रत्न कविता कर रहे थे। उनमें से सूरदासकी प्रशंसा सम्राट्के कानों तक पहुँच चुकी थी। सूरदास तुलसीदासके पहले हुए भी थे और वे सम्राट्की राजधानीके समीप व्रजमें प्रायः बिचरा करते थे। इनकी प्रशंसा सुनकर जब सम्राट्ने दरबार में बुलाया तो महात्मा सूरदास ने कहा कि "कहा मोकों सीकरी सों काम !" पर, ज्ञात होता है कि सूरदास जी बादको दरबारमें चले गये थे। किन्तु बहुत कुछ सम्भव है कि जिस सूरदासका नाम 'आईनमें' दिया है वह बिल्कुल दूसरा ही व्यक्ति रहा हो। सूरदासके दरबारमें जानेकी बात पर सहसा विश्वास नहीं होता। जिस प्रकार सम्राट्ने सूरदासको दरबार में बुलाया था उसी प्रकार वह अद्वितीय कवि तुलसीदासको भी बुलानेकी चेष्टा करता। पर न तो अकबर ही को गोसाँई जी का ज्ञान था और न अबुल फ़ज़ल को ही। यह ठीक है कि राजा मानसिंह और खानखाना गोसाईं जी के भक्तोंमें थे। पर सम्भव है कि ये लोग १६०५ में अकबरके देहान्तके अनन्तर गोसांई जी से परिचित हुए हों *। इतना तो निश्चय है कि यदि सम्राट् तुलसीदास

* एक टोडरमलसे भी गोसाईं जी की मित्रता थी। पर वह टोडरमल सम्राट्का अर्थ सचिव नहीं, वरन् बनारसका व्यापारी सम्भवतः था।

को बुलाता भी, तो गोसाईंजी "कहा मोकों सीकरीसों काम" वाला उत्तर देते! तुलसीदास जी का जन्म १५३२ में हुआ था और देहान्त १६२३ में काशीधाममें हुआ। इनका कविता-काल विशेषतः १५७४ से १६१४ तक समझना चाहिये। ग्रियर्सनका मत है कि "तुलसीदास भारतीय साहित्यमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं।" किन्तु यदि सर्वतोभावेन विचार किया जाय तो तुलसीदासके टक्करका प्रभावशाली एवं हृदयहारी कवि संसारकी किसी भी भाषामें नहीं हुआ। डाक्टर स्मिथका कहना है कि वह हिन्दू अपने समयका सबसे भारी—अपने महान् समकालीन स्वयं अकबरसे भी भारी—व्यक्ति था, पूर्णतः यथार्थ है।

सङ्गीतके विषयमें अबुलफज़्ल लिखता है कि "सम्राट् सङ्गीत पर अधिक ध्यान रखता है और उन सभी लोगोंका संरक्षक है जो इस विद्याका प्रयोग करते हैं। दरबारमें विविध गायक और गायिकाएँ हिन्दू, ईरानी, तुरानी और काशमीरी विद्यमान हैं। वे सात विभागोंमें विभक्त हैं जिनमेंसे प्रत्येक भाग सप्ताहके एक एक दिन सङ्गीत सुनाता है। जब सम्राट् आज्ञा देता है तब वे अपनी राग सुधा बहाने लगते हैं।" आईनकारने ३६ गायकोंका नाम दिया है। इनमें किसी स्त्री-का नाम नहीं है। इन ३६ गायकोंमें लगभग पन्द्रह नाम हिन्दुओंके हैं। मालवा के भूतपूर्व बादशाह (बाजबहादुर) की भी गणना गायकोंमें की गयी है। वह सम्राट्के यहां १००० का मंसबदार एवं अद्वितीय गायक था। परन्तु गायकोंमें सर्वोत्कृष्ट स्थान मियाँ तानसेनका था। उसे अकबरने रीवाँके राजासे लिया था। तानसेनने संगीतकी शिक्षा अपने

बहुतेरे समकालीन गायकोंकी तरह ग्वालियरमें पायी थी जहां राजा मानसिंह तोमर (१४८६—१५१८) ने एक संगीत विद्यालय खोल रखा था। तानसेनके दो पुत्रोंका नाम तान तरंग खाँ* और विलास था। तानसेन पद्य रचना भी करता था। अकबर स्वयमेव इस विद्याका अच्छा ज्ञाता था और संगीतज्ञों की संरक्षकता करता था। अबुलफ़ज़लने तानसेन-के सम्बन्धमें लिखा है कि "भारतमें इसके सदृश गायक गत सहस्र वर्षोंसे नहीं हुआ है"। संगीतके अतिरिक्त अन्य विद्याओंको भी सम्राट् प्रोत्साहित करता था।

अकबर सुन्दर-सुलेख-कला या नस्तालिक़को बहुत प्रोत्साहित करता था। आईनमें नस्तालिक़का विस्तृत विवरण मिलता है। अंग्रेजोंके आनेके पहले इस कलाका बड़ा आदर था। चीन, फारस, मध्य एशिया और भारतमें सुलेखको कला मानकर सम्मान करते थे। अब धीरे धीरे इस कलाका भारतमें अन्त होता जा रहा है। अकबरके समयमें नस्तालिक़-का सर्वोत्तम अभ्यास काश्मीरके मुहम्मद हुसेनको था जिसे जर्रीन क़लमकी उपाधि मिली थी। अकबरकी रुचि पुस्तकें एकत्रित करनेकी ओर भी अधिक थी। उसने हस्तलिखित पुस्तकोंका एक वृहत् पुस्तकालय एकत्रित कर रखा था। उसकी बहुत सी पुस्तकें प्रायः पुराने विद्वानोंकी लिखी हुई थीं। उनकी जिल्द बहुत बढ़िया थी और गुणी-चित्रकारोंके चित्रों द्वारा वे सुसज्जित थीं। सम्राट्के देहान्तके समय

---

* "मियाँ" और "खाँ" इत्यादि शब्दोंको उपाधि द्योतक मात्र समझना चाहिये।

उसके पुस्तकालयमें २४००० पुस्तकें थीं जिनका मूल्य लगभग ६४६३७३१ रुपयेके लगभग था। ४३०० चुनी हुई पुस्तकें फ़ैज़ी के पुस्तकालयसे १५९५ में उसके देहान्तके बाद राजकीय पुस्तकालयमें सम्मिलितकी गयी थीं। सम्राट्ने कुछ चुनी हुई पुस्तकोंकी दूसरी जिल्दें हरममें भी रखवायी थीं। स्मिथ-का कहना है कि "इस पुस्तकालयकी समानताका संसारमें उस समय कोई भी पुस्तकालय नहीं था और न कभी हुआ ही है।" सभी पुस्तकें हस्तलिखित थीं और बड़ी कठिनाईसे लाखों रुपये व्यय करके मोल ली गयी थीं। इस पुस्तकालय में †मुद्रित पुस्तकें न थीं। सम्राट् चित्रकारीका अच्छा प्रोत्साहन करता था। उसने बहुतसे चित्रकारोंको नियुक्त किया था। वह लोग सप्ताह भरमें कितने चित्र बनाते थे, एक दिन उनकी परीक्षा करके गुणके अनुसार वेतन बढ़ाता अथवा पुरस्कार देता था। सौ से भी अधिक चित्रकारोंने बड़ी प्रसिद्धि लाभकी थी एवं अन्य बहुतोंने साधारण सफलता प्राप्तकी थी। हिन्दू चित्रकार सर्वश्रेष्ठ थे। सर टामस रो और बर्नियरने भी मुगलोंके समयके चित्रकलाकी बड़ी प्रशंसा की है। अकबरके समयके अनेक उत्तम चित्रकारोंमें सत्रह तो सर्वोत्कृष्ट थे जिनमेंसे कमसे कम तेरह हिन्दू थे। दसवंत और बसावन ही सर्वोत्तम गुणी थे। अकबरने भित्तिचित्रों (Frescoes) की रचनामें भी विशेष उन्नतिकी। फतेहपुर

---

†उस समय गोआ और राचोलमें मुद्रण-कार्य होता था। पहले जेसुइट मिशनने सम्राट्को छपी पुस्तकें भेंट की थीं।

सीकरी एवं अन्यत्रके भवनोंकी दीवालों पर अत्युत्तम भित्ति चित्र रचे गये थे। अवशिष्ट भित्तिचित्रोंमें से प्रायः सभी आजकल भग्नावस्थामें पड़े हैं पर उनसे सम्राट् अकबर एवं जहांगीर राजत्वकालके भित्ति चित्रोंकी सुन्दरता और प्रभाका पता चल सकता है। ये फ़ारसी रीति पर बने थे। किन्तु इन पर हिन्दुस्तानी, चीनी, और योरोपीय प्रभाव विशेष पड़ा था। सम्राट् किसी भी देशके गुणीको सहर्ष नियुक्त करता था और उस गुणीको अपनी ही रीतिसे स्वतन्त्रता पूर्वक उपयोग करनेका अधिकार था।

अकबरके समयमें निर्म्माणकला (Architecture) को भी अच्छी सफलता प्राप्त हुई। परम दिव्य राजकीय दरबार एवं प्रान्तीय दरबारोंकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके हेतु विविध भवनोंका निर्म्माण हुआ। भवनों, निवास गृहों, समाधि मन्दिरों और अन्य निर्म्माणोंके बननेका अवसर प्राप्त हुआ। निर्म्माता या शिल्पकारको निर्म्माणोंमें अपनी ही रीतिके अनुसरण करनेका अधिकार था। अतएव सम्राट्के शासनकालमें बनी हुई रचनाओंमें से कुछ मुसलमानी ढँग पर, कुछ हिन्दू ढँग पर तथा कुछ मिश्रित हिन्दू मुसलमान ढँग पर बनी हैं। सम्राट्के समयके बहुतसे निर्म्माण नष्ट हो गये हैं अथवा वे भग्न कर दिये गये थे। और जो जो भवन एवं अन्य निर्माण इलाहाबाद, अजमेर, लाहौर, फ़तेहपुर सीकरी इत्यादिमें अवशिष्ट हैं उनकी विवेचना ठीक ठीक अभी तक नहीं की गयी है। सम्राट्के राजत्वकालमें बहुतसे हिन्दू (जैन भी) मन्दिर बने थे जिनमें से बहुतेरे नष्ट कर दिये गये। वृन्दावन और मथुरामें मिश्रित रीतिके बने हुए मन्दिर अर्द्ध-

भग्न दशामें पड़े हैं। अकबरके निर्म्मित कुछ भवन तो हिन्दू ही रीतिसे बनाये गये थे। आगराके क़िलेमें "जहाँगीरी महल" नामक भवन दृष्टान्त है। इसमें से कुछ पर मुसलमानी कलाका भी प्रभाव पड़ा था। परन्तु भवनकी बनावट हिन्दू रीतिमें ही हुई है। फतेहपुर सीकरीमें "जोधाबाईका महल" नामक भवन भी आगराके जहाँगीरी महलसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। मथुराका सती बुर्ज भी तत्कालीन हिन्दू निर्म्माणके अनुसार बना था। अकबरके बनवाये हुए मुसल्मानी रीतिकी रचनाओंमें भी (हिन्दू कारीगरोंको नियुक्त करनेके कारण) हिन्दू प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पुरानी दिल्लीमें हुमायूँका समाधि मन्दिर तथा ग्वालियरमें मुहम्मद ग़ौसका समाधि मन्दिर दोनों अपने अपने ढँगमें बहुत अच्छे बने हैं। दोनोंका निर्माण सम्राट्के राजत्वकालके पूर्वार्द्धमें हुआ था। कुछ लोगोंका कहना है कि शाहजहाँने ताजमहल हुमायूँके समाधि मन्दिरके आदर्शपर बनवाया था। लेकिन क्रेस्वेल और डाक्टर स्मिथका मत है कि "ख़ानाख़ानाका समाधि मन्दिर (जो हुमायूँके समाधि मन्दिरके पूरब है) ताज महलका आदर्श माने जानेका अधिक अधिकारी है।" अकबरके समयके निर्म्माणोंमें हिन्दू मुसलमान दोनों गुणोंका समावेश है; किसी किसीमें हिन्दू और किसी किसीमें मुसलमान कलाकी विशेषता है। आगरा और फ़तेहपुर सीकरीके बाहर मिश्रित कलाके सर्वोत्कृष्ट दृष्टान्त वृन्दावनके उन चारों मन्दिरोंमें देख पड़ते हैं जिन्हें सम्राट्के अधीनस्थ राजाओंने अकबरकी वृन्दावन यात्रा (१५७३) की स्मृतिमें बहुत वर्षों बाद निर्मित कराया था। ये चारों थोड़े बहुत भग्नावस्थामें हैं। उनके नाम ये हैं (१) गोविन्द

देव (१५९०), जिसे राजा मानसिंहने दिल्लीके शिल्पी गोविन्द दाससे बनवाया था। ग्राउसका मत है कि 'यह मन्दिर कमसे कम ऊपरी भारतवर्षमें हिन्दू कला द्वारा निर्म्मित सर्वाधिक प्रभावजनक धर्म्मालय है।"

(२) मदन मोहन (समय अविदित)। (३) गोपीनाथ, सम्भवतः चारोंमें सबसे पहले यही निर्म्मित हुआ था। (४) जुगुल किशोर (१६२७)। किन्तु अकबरी कालकी सर्वोत्तम कलाका अन्वेषण फ़तेहपुर सीकरी * की करुणकथामें ही करना होगा। फ़तेहपुरके दिव्य भवनोंका विवरण स्थानाभावके कारण नहीं दिया जा सकता। ये भवन एकसे एक बढ़िया हैं। भग्नावस्थामें भी ये करुणाजनक भवन मनुष्यके हृदयको अविचल कलाकी अविराम स्वप्नावस्थामें चकित कर देते हैं। अतएव इस परिच्छेदको यहीं डाक्टर विंसेंट स्मिथके शब्दोंमें समाप्त करते हैं। स्मिथ साहब कहते हैं कि "फ़तेहपुर सीकरी की सामनताका अन्य कोई पदार्थ न तो कभी निर्म्मित हुआ था और न निर्म्मित होगा। यह 'पाषाणके बीचमें उपन्यास (Romance)' है। यह अकबरकी विचित्र प्रकृतिके चित्तवृत्ति-का पाषाणीकरण है जिसका आरम्भ और समाप्ति उस चित्त-वृत्तिके व्याप्ति कालमें बिजलीके वेगसे सम्पादित हुआ। दूसरे किसी समय या किसी भी दूसरी स्थितिमें यह असाध्य है— अकल्पनीय है। संसारको उस स्वायत्त सम्राट्का कृतज्ञ होना चाहिये जो दिव्य दृष्टिसे प्राप्त ऐसी मूर्खताको सम्पादित करनेमें समर्थ था।"

---

* तेरहवाँ परिच्छेद देखिये।

१६—अकबर की राज्य-व्यवस्था के गुणदोष

सम्राट् अकबरने अपने विजयों द्वारा काबुलसे बंगाल और काश्मीरसे अहमदनगर तकके राज्योंको एक सुदृढ़ छत्रके तले लाकर मुग़ल सम्राज्यको ही अपनी राज्यव्यवस्था द्वारा सुदृढ़ नहीं किया वरन् भारतवर्षको भी कमसे कम डेढ़ शताब्दियोंके लिए राजनैतिक उपद्रव एवं अशान्तिसे बचा लिया। किन्तु यह शान्ति विजयोंके मोल नहीं मिली थी। इसका कारण ढूँढ़नेके लिये अकबरी व्यवस्थाके ही पृष्ठोंका अवलोकन करना होगा। उस सुदृढ़ तथा लोक हितकर व्यवस्थाने धीरे धीरे जड़ पकड़ ली और आज भी उसीके मूल तत्वोंका थोड़े बहुत परिवर्तनके साथ अनुसरण हो रहा है। अबुलफ़ज़ल सम्राट्की प्रणालीको कितने ही स्तुतियोंसे सिञ्चन करे अथवा अब्दुल क़ादिर उसकी निन्दामें कितने ही बौछारें चलावे पर सम्राट्की व्यवस्थाके मूल तत्त्व छिप नहीं सकते। यदि अकबर न हुआ होता तो भारतमें मुग़ल साम्राज्यकी स्थितिको भी कोई नहीं देखता। यदि सम्राट् अकबर विजयोंसे ही सन्तुष्ट रहता तो जहाँगीर किसी भी दशा में साम्राज्यको अपने पिताके देहान्तके बाद पतित होनेसे नहीं बचा सकता। उस दशामें इस देशकी डाँवाडोल स्थिति १७०७ के बदले १६०७ में ही आरम्भ हो जाती और सम्भव है जहाँगीरको अपने पितामहकी तरह जान लेकर भारतसे भागना पड़ता। किन्तु अकबर इतिहास और राजनीतिमें पूर्ण विचक्षण था। वह साम्राज्यको जिस प्रकार जीतना जानता था उसी प्रकार उसे स्थायी दृढ़ता देना भी जानता था। शासनके विविध अङ्गोंका समुचित और

स्थायी सङ्गठन करनेमें जो प्रवीणता और क्षमता अकबरने दिखलायी उसको संसारके किसी भी मुसल्मान शासकके इतिहासमें खोजना निरर्थक है। भारतमें भी विगत दस शताब्दियोंके इतिहासका पन्ना पन्ना उलटने पर भी उसके * टक्कर का आदमी नहीं देख पड़ता। उसकी समानताके लिये इस देशके प्राचीन सम्राटों (चन्द्रगुप्त मौर्य्य इत्यादिसे तुलना कीजिये) की व्यवस्थाका ही अवलोकन करना पड़ेगा।

सम्राट् अकबरने अक्षुण्ण प्रतिभाके साथ मुग़ल राज्य व्यवस्थाका भवन निम्मीण किया। मैलेसनने लिखा है कि अकबर युद्धमें लिप्त होनेसे आनन्दित नहीं होता था। वह युद्धको अनिवार्य्य दुष्कार्य्य समझता था। वह युद्धके बदले शासन संस्कार द्वारा प्रजाकी उन्नति साधन करनेको सहस्रधा अच्छा समझता था। बाहुबलसे विजित साम्राज्यको प्रजाके सुखकी दृष्टिसे उसकी इच्छाके अनुसार शासन करना ही सम्राटको अभीष्ट था। उसने जिस प्रदेशको विजय किया उसमें सुश्रृंखला स्थापन करके सुशासन प्रणाली प्रवर्तित की। उसने विचारों, कार्यों और धर्मनुष्ठानोंमें प्रजाको स्वाधीनता प्रदान करके न्याय विचार प्रतिष्ठित किया। इसी[२] के निमित्त उसने जय-लाभ किया था। सम्राटके निकट सभी जाति और धर्म्मके लोगोंका समान सम्मान था। सबके अधिकार बराबर थे। हिन्दू मुसल्मानका कोई भेद न था। सब लोग अपने अपने

---

* शिवाजीसे तुलना कीजिये।

[२] अकबरके विजयोंका यह उद्देश्य नहीं था, वरन् परिणाम मात्र था। उसके विजयोंका मुख्य उद्देश्य था साम्राज्यकी स्थापना।

विवेक और इच्छाके अनुसार चलनेके अधिकारी थे। उसके न्याय विचारमें दयालुता और क्षमाका भाव था पर आवश्यकतानुसार हृदयकी स्वाभाविक करुणाको छोड़ कर कठोरता भी प्रदर्शन करनेसे नहीं चूकता था। जब तक सुधरनेकी आशा रहती थी तबतक दण्ड न देकर क्षमा करना ही उसको अभीष्ट था। शत्रुको भी सम्मान और सौहार्द्र प्रदर्शन द्वारा अपने पक्षमें कर लेनेकी वह चेष्टा करता था। उसका लक्ष्य था—मैत्रीभाव और एकता स्थापन। उसके राज्य प्रणालीकी प्रशंसा सभी लोगोंने की है। इसमें तो अणुमात्र भी सन्देह नहीं है कि अकबरने अपनी राजनीतिज्ञता और कूटनीति द्वारा अनेक विरोधी दलोंको एक सूत्रमें परिवद्ध करके प्रायः सभी जाति और धर्म्मके लोगोंको अपने वशमें कर लिया।

अकबर समझता था कि देशकी हिन्दू प्रजाकी उपेक्षा करनेसे साम्राज्यकी नींव दृढ़ नहीं हो सकती। उसके साम्राज्यमें सर्वत्र (काबुलको छोड़ कर) हिन्दुओंका ही बाहुल्य था। भारतकी हिन्दू प्रजाको प्रसन्न रखना साम्राज्यके हितकी दृष्टिसे आवश्यक था। अतएव अकबरने धार्म्मिक सहिष्णुताकी नीतिका अवलम्बन किया और सभी धार्म्मिक करोंको बन्द कर दिया। हिन्दुओंके चित्तको खिन्न करनेवाले जज़िया और तीर्थकरको मिटा दिया। यह सब राजनैतिक दृष्टिसे ही नहीं किया गया, वरन् सम्राट्की वास्तविक प्रवृत्ति भी दार्शनिक धर्म्मकी ओर थी। विभिन्न जातियोंको सूत्रबद्ध करनेके लिये उसने देशी हिन्दुओं, फारसी काफिरों, कट्टर अफगानों और मुगल सुन्नियोंको बिना किसी पक्षपातके योग्यतानुसार राज कार्य्य एवं सेनाके कार्योंमें सम्मिलित किया तथा सभी जाति

और धर्मके लोगोंको समान सम्मान दिया। सभी जातियों और धर्म्मोंके लोगोंको उसने अपने राज्यसे सम्बन्ध रखनेके लिये एवं राज्य-व्यवस्थाको कार्य्यशील बनानेके निमित्त मंसब-दार-व्यवस्थाका संगठन किया। मंसबदार एक प्रकारसे जागीरदारोंके समान थे। परन्तु इनके अधिकार व्यक्तिगत थे—वंशानुगत नहीं; एवं इन्हें वेतन दिया जाता था और जागीर प्रणालीको धीरे धीरे बन्द करनेकी नीतिका अवलम्ब होता था। परन्तु इनकी स्थिति सम्राट्की प्रसन्नता पर सैनिक सेवाके प्रतिबन्धसे निर्भर थी। यह पद्धति उस समयके लिये अत्युत्तम थी। मंसबदारोंके निरीक्षणका कड़ा क्रम था। जब तक कड़ाईके साथ इस प्रथाको चलाया गया तब तक इस प्रथासे साम्राज्यको विशेष लाभ हुआ। अकबरकी चलाई हुई प्रथाके अनुसार लगभग एक शताब्दी तक हिन्दू तथा फारसी कर्म्मचारी एवं उमरा लोग भक्तिके साथ अपने सम्राट् की सेवा शान्ति और युद्धमें, सुख और दुःखमें करते रहे। किन्तु अकबरी सेनामें अनेक दोष भी थे। अकबरके सम्मुख इतना अधिक कार्य्य था कि वह सेनाके सङ्गठनको उत्तम आधार पर स्थिर करनेमें असमर्थ था। अतएव उसे अपने उद्देश्य—साम्राज्यकी स्थापना और उसे दृढ़ करके उत्तम राज्य-व्यवस्थाका सङ्गठन—को पूर्ण करनेके लिये सबसे सरल उपायका आश्रय लेना पड़ा। सेनामें उसने ऐसे सुधार कर लिये थे जिनके करनेकी आवश्यकता उस समय प्रतीत हुई किन्तु इस सम्बन्धमें कुछ अधिक करनेका उसे समय ही न मिला। परन्तु इतना अवश्य था कि उसकी सेनामें जो दोष थे वे उसकी सुव्यवस्था एवं सहिष्णुता और सर्वहितकर

नीतिके कारण प्रायः सुषुप्त अवस्थामें पड़े थे। इन दोषोंके कारण सम्राट् को कोई हानि न उठानी पड़ी। किन्तु स्वायत्त शासन प्रणालीमें एक ही नीतिकी सदा आशा करना असम्भव है। अतएव सुनीति और सुराज्यके कवचके दूर होते ही सेनाके दोष प्रकट होने लगे और अन्तमें मुगल सेनाके दूषित सङ्गठन, विशाल खेमा, शौर्य्यहीनोंका प्रवेश, हरम तथा प्रताप शाली दरबारके उपकरणोंका सेना के साथ लगे रहना इत्यादि दोष थे जो सुनीति रूपी कवचके दूर होते ही मुग़ल सम्राज्यके उच्छेदमें विशेष सहायक हुए। सम्राट् अकबरको तो समय न मिला तथा उसके वंशजोंने सेनाके दोषोंको दूर करने की कोई प्रवृति नहीं दिखलायी। अस्तु, सम्राट्की चलायी राज्यव्यवस्थामें सेना सम्बन्धी त्रुटियाँ और दोष बड़े गहरे थे। भला मानवी अपूर्णताओंसे संसारका कौनसा व्यक्ति विलग होकर निर्दोष और सम्यक्पूर्ण व्यवस्थाके परिवर्तन और सञ्चालनमें समर्थ हो सकता है?

सेवा की आयोजनामें दोषके कीड़े विद्यमान थे। पर सम्राट्का कोश विभाग अत्यन्त सुव्यवस्थित अवस्थामें था। इस विभागमें अकबरने अनेक सुधार किये। राजा टोडरमलका बन्दोबस्त और भूमिकर-सङ्गठन देश और सम्राट् दोनोंको बड़ा लाभकर सिद्ध हुआ। इस विषयकी विशेष विवेचना पिछले एक परिच्छेदमें की जा चुकी है। बन्दोबस्तके नियम, भूमिकरका नियत करना, पैमाइश इत्यादिमें सुधार, भूमिकर का उपज एवं भूमिके भेद तथा अन्न भेदके अनुसार निश्चित करना, कर्म्मचारियोंकी विचारपूर्ण आयोजना, प्रजाके हित की दृष्टिसे अन्न अथवा नक़द्में करकी वसूली, कोषविभागके

नियम, एवं टकसालोंके नियम इत्यादि बड़ी उत्तम रीतिसे सङ्गठित हुए थे। अकबरके भूमिकर विभागसे सम्बन्ध रखने-वाले नियमोंकी सामान्यतः सभी इतिहासकारोंने प्रशंसा की है।

अकबरका पुलिस विभाग भी बहुत अच्छी तरहसे सङ्गठित हुआ था। नगरोंके कोतवालोंको जो आदेश रहते थे उनसे तत्कालीन पुलिसकी कार्यपद्धतिका अच्छा परिचय मिलता है। जनताके जानमालकी रक्षाके अतिरिक्त प्रजाके आचार व्यवहार, सदाचार और स्वच्छता (sanitation), बाजार-का शासन एवं प्रजाकी आर्थिक, सामाजिक और आचार सम्बन्धी स्थितिका अवलोकन और उसके सुधारके विविध उपाय अवलम्बन करनेकी रीति अकबरने चलाई थी। पुलिस ही नहीं अन्य सभी प्रबंध और न्याय सम्बन्धी विभागोंके सुचारु संञ्चालन पर सम्राट्का ध्यान रहता था। उसने सेना प्रबंध और न्याय तीनों (Military civil and judicial) विभागोंकी उन्नतिपर ध्यान रखा था। उसकी व्यवस्था सब प्रकारसे उत्तम थी, पर यदि उसकी चलायी हुई पद्धतिमें कुछ मार्केकी त्रुटि रह रह गयी तो केवल यही अनुमान सिद्ध होता है कि संसारकी सर्वोत्तम पद्धतिमें भी त्रुटियोंका अभाव नहीं है।

सम्राट् अकबरका राष्ट्रीय धर्म असफल हुआ। उसका अनुसरण जनता न कर सकी। वस्तुतः साधारण जन समाज सिश्रित सिद्धान्तोंका अनुसरण सरलतापूर्वक कर भी नहीं सकता। इसमें सन्देह है कि राष्ट्रीय धर्म परिवर्तन करना अक-बरके लिए कहाँ तक बुद्धिमानीका काम था। पर इतना तो अवश्य था कि धर्म परिवर्तनके अतिरिक्त अकबर उदारता और सहिष्णुताकी नीतिके अवलम्बनसे मुग़ल साम्राज्यकी स्थापना

करके उसे स्थायी दृढ़ता और सुव्यवस्थाके सिंहासन पर स्थिर कर गया। उसकी सर्वाधिक प्रशंसा तो इस बातमें है कि चालीस वर्षके निरन्तर युद्ध द्वारा एक विशाल साम्राज्य को जीतकर एकही सुदृढ़ छत्रके नीचे हिन्दू मुसलमान, शिया सुन्नी, राजपूत और अफ़गान एवं भारतकी विभिन्न जातियों और धर्मोंको सोलहवीं शताब्दीमें सफलताके साथ वह एकत्र सम्मिलित करनेमें समर्थ हुआ। पिछले परिच्छेदोंसे ही सम्राट्की राजव्यवस्थाके गुण दोषका परिचय प्राप्त हो सकता है। अतएव इस परिच्छेदको यहीं समाप्त करते हैं।

२०—अकबर के बाद मुग़ल शासन-पद्धति

पिछले परिच्छेदोंमें जिस राज्य-व्यवस्थाका विवरण दिया है उसके प्रवर्तकका सन् १६०५ ईस्वीमें आगरा नगरमें देहान्त होगया। उसका पुत्र सलीम जहाँगीर नामसे सिंहासन-नासीन हुआ एवं १६२७ में उसके भी महाप्रस्थानके बाद उसका लड़का खुर्रम शाहजहाँकी उपाधिसे दिल्लीका अधीश्वर हुआ। भारतका साम्राज्य १६५८ तक उसीके हाथमें रहा जब उसका तृतीय पुत्र औरङ्गजेब अपने भाइयों पर विजय प्राप्त करके एवं पिताको बन्दीकर स्वयमेव राज्य करने लगा और १७०७ तक साम्राज्य लक्ष्मीको अपने हाथमें स्थिर रक्खा। उसके बाद मुग़ल साम्राज्यका पतन होने लगा और १८५८ के बलवेके बाद सम्राट् अकबरके वंशका अन्तिम कुमार वृद्धावस्थामें दिल्लीसे बहिष्कृत करके रंगून भेज दिया गया एवं उसके साथ भारतीय इतिहाससे मुग़ल वंशका नाम

सदा के लिये मिट गया। इस वंशका सम्बन्ध* भारतवर्षसे प्रायः तीन शताब्दियोंके लगभग (१५०४-१८५८) रहा। यह सम्पूर्ण समय आधी आधी शताब्दियोंके सात विशेष विभागोंमें बँटा हुआ देख पड़ता है। प्रत्येक विभागमें कोई न कोई विशेषता स्पष्ट दौड़ते हुए मनुष्यको भी दृष्टिगोचर होगी। पहला (१५०४-१५५५) आक्रमण काल (Raids), दूसरा (१५५६--१६०५) निर्म्माण काल (Consolidation), तीसरा (१६०५--१६५८) स्थिरता काल (at a Standstill), चौथा (१६५८--१७०७) कृताकरण काल (Reaction), पाँचवाँ (१७०७--१७५३) पतन काल (Fall), छठाँ (१७५४-१८०३) महाराष्ट्र-प्रभाव-काल (Mahratta Influence) और सातवाँ (१८०३-१८५८) ब्रिटिश प्रभुत्वकाल (British Sub-ordination) की संज्ञासे पुकारा जा सकता है। आक्रमण कालमें मुग़ल वंशके लड़खड़ाते हुए पैरोंका वर्णन अनावश्यक है एवं निर्म्माण कालमें रचित राज्य व्यवस्थाके भवनमें सरसरी भ्रमण हो ही चुका। अब आगेके अवशिष्ट कालोंका सूक्ष्म दिग्दर्शन करना है।

मुग़ल साम्राज्यकी वास्तविक स्थिति चौथे कालके बाद बिल्कुल डाँवाडोल हो गयी। और इसीके अनुसार मुग़ल सम्राटोंकी कोई विशेष व्यवस्था भी पाँचवें, छठें और सातवें कालोंमें नहीं थी। उन्हें अपनी नीति बाहरके शक्ति सम्पन्न राज्योंकी गतिके अनुसार बदलनी पड़ती थी। उनकी स्थिति

---

* मुगल भारतवर्षमें काबुलको भी सम्मिलित समझना चाहिये।

पर अपनी निर्बलताके कारण बाहरी शक्तियोंका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा, परन्तु १७०७ तक मुग़ल साम्राज्यकी शक्ति भारतमें सबसे बढ़कर थी। उस समय तक मुग़ल साम्राज्य संसारकी इनी गिनी महाशक्तियों (Great Powers of the world) में गिनने योग्य था। यों तो मुग़ल साम्राज्यके सञ्चालनमें सम्राट् अकबरके चलाये हुए नियमों और प्रथाओंका ही अनुसरण सदा थोड़े बहुत हेरफेरके साथ राज्य प्रबन्ध (administration) के कार्यों में होता रहा, पर उसकी नीतिका अनुसरण पूर्णरूपेण तो किसीने भी नहीं किया। स्थिरताकालमें जहाँगीर और शाहजहाँ सहिष्णुताकी नीति पर डटे रहे। दोनोंमें से कोई भी अकबरकी तरह* उदार नहीं था। पर ये धर्म्मके लिये साम्राज्यको न्यौछावर करनेको नहीं तैयार थे। नूरजहाँ भी जिसके हाथमें जहाँगीरने शासन कार्य्य छोड़ रखा था बड़ी बुद्धिमती थी। अतएव स्थिरताकालमें सिंहासन पर दो कट्टर सुन्नियों (जहाँगीर और शाहजहाँ) के होते हुए भी अकबरकी सहिष्णुतावाली नीतिमें कोई विशेष अन्तर न पड़ा। दोनोंके समयमें जजिया बन्द था और हिन्दू कर्मचारी ऊँचे पदों पर भी नियत थे।

तुज्के जहाँगीरीमें जहाँगीरने आईने जहाँगीरीका उल्लेख

---

*खुलासातुत्तवारीखमें लिखा है कि "जहाँगीरने प्रयागके अक्षयवटको कटवाकर जड़ पर लोहेका कड़ाहा जकड़वा दिया था जिससे फिर बढ़ने न पावे यद्यपि वह फिर बढ़कर ऊँचा हो गया।" शाहजहाँने तो अकेले काशीमें ही ७६ देवालयोंका विनाश कराया था।

क्रियाँ है। इससे सम्भवतः उन बारह आज्ञाओंसे अभिप्राय है जिन्हें जहाँगीरने अपने शासन कालके आरम्भमें प्रचलित किया था। यह आज्ञाएँ जहाँगीरकी नीति के आधार स्वरूप थीं। वे इस प्रकार थीं:—

१—वे सभी कर बन्द कर दिये गये जिन्हें प्रत्येक और जिलेके जागीरदार लोग अपने ही लाभके लिये वसूल करते थे।

२—जागीरदारोंको ऐसे स्थानोंमें सड़कों पर विश्रामालय, मसजिद और कुएँ खोलनेका आदेश किया जहाँ डकैतियाँ हो जाया करती थीं, जिससे वहाँ पर बस्ती बस जायँ।

३—व्यापारियोंके गट्ठर बिना उनकी आज्ञाके न खोले जायँ।

४—मृत व्यक्तिका माल, (चाहे मुसल्मान हो या काफ़िर) उसके उत्तराधिकारियोंको मिलना चाहिये (पर यदि उत्तराधिकारी कोई न हो तो माल सार्वजनिक कार्योंमें सम्मिलित कर दिया जाता था)।

५—शराब या नशीले पदार्थ न तो बनाये जायँ और न बेचे जायँ।

६—किसीका घर ग्रहण नहीं किया जायगा।

७—किसीके नाक-कान नहीं काटे जायँगे (जहाँगीरने सिंहासनके सामने इसके लिये शपथ ले लिया कि वह किसीका अंगभंग न होने देगा)।

८—अफ़सर और जागीरदार लोग रैय्यतोंकी भूमि अपने जोतने बोनेके लिये बलपूर्वक न लेंगे।

९—सरकारी आमिलगुजार या जागीरदार अपने परगनेमें बिना मेरी आज्ञाके जनताके साथ अन्तर्विवाह न करेंगे।

१०—बड़े बड़े नगरोंमें अस्पताल खोलकर चिकित्सक सरकारी वेतनसे नियुक्त किये जायँगे।

११—जहाँगीरने भी अपने पिताके अनुसार जीव-हत्याका कुछ विशेष अवसरोंके लिये निषेध कर दिया।

१२—उसने अपने पिताकी दी हुई जागीरोंको पुनः मंजूर किया तथा कुछ और भी दयालुताके काम किए।

जहाँगीरके इन बारह आदेशों में से बहुतेरे ऐसे थे जिनका अनुसरण पहले भी होता था। जहाँगीरने न्याय घंटी भी टँगायी थी। यह उसकी सबसे पहली आज्ञा थी। उसने अफ़सरोंके लिये यह नियम प्रचलित किया था। वह तुज्जकमें लिखता है कि "बख़्शी लोग यह आज्ञा प्रचलित करदें कि कोई अफ़सर ऐसे कामोंमें हाथ न लगावे जो केवल बादशाहोंको करने चाहिये। पहली बात जो उन्हें करनी चाहिये वह यह है कि वे "झरोखे" पर न बैठें और न अपने अफ़सरोंको कुर्निश इत्यादिके लिए कष्ट दें। वे न तो गजयुद्ध करावें, न किसीको आँख-नाक या कान काटनेके दण्ड दें, न किसीको मुसल्मान होनेको बाध्य करें, न अपने नौकरोंको उपाधियाँ दें, न दरबारोंकी तरह गायकों को नियत रखें, न बाहर जानेके समय ढोल पिटावें और जब किसीको घोड़े या हाथी दें तो उनके पीठों पर लगाम या बर्छा रख कर सलाम न करावें। जुलूसमें शाही नौकरोंको पैदल साथ न ले जायँ और यदि उनको पास लिखें तो मुहर न लगावें।" जहाँगीरने इसी प्रकारकी आज्ञाएँ प्रचलित की थीं पर अपने पिताकी राज्यव्यवस्थामें कोई विशेष अन्तर नहीं किया।

सन् १६२७ में जहाँगीरके देहावसानके बाद शाहजहाँ सिंहासन पर आया। इतिहासकारोंने उसके शासनकी बड़ी प्रशंसा की है। फ्रांसीसी यात्री बर्नियर शाहजहाँके शासनको "कुटुम्बके ऊपर पिताके शासनके सदृश" कह कर प्रशंसा करता है। सड़कोंकी शान्ति और न्यायके विचारको भी उसने प्रशंसित किया है। मुसल्मान और ईसाई इतिहासकारोंने तो उसकी श्लाघा की ही है। एक * हिन्दू समकालीन लेखकने भी शाहजहाँके शासनके न्याय, भूमिकी योग्यतापूर्ण और उदार व्यवस्था, न्यायालयों की सत्यता, कार्यों पर स्वयम् देख-भाल, एवं इन सब कारणोंसे उद्भूत सुख-समृद्धिका वृत्तान्त बड़े प्रशंसात्मक शब्दोंमें लिखा है। यहाँ तक कि एल्फिंस्टन जैसे सुयोग्य लेखकने भी लिखा है कि शाहजहाँके अधीन भारतवर्षमें ऐसी अच्छी सुव्यवस्था तथा इतनी सुख समृद्धि थी जैसे रोमन साम्राज्य में सम्राट् सेवेरसके समयमें थी। शाहजहाँ प्रबंध सम्बन्धी शासन की देख भाल कड़ाईके साथ करता था। उसका ध्यान सड़कोंकी रक्षाके लिये अधिक था। बर्नियर जो शाहजहाँके शासनकालमें १८ वर्षों तक भारतवर्षमें रहा लिखता है कि डकैतीके लिये इस शासनमें मृत्यु दण्ड देनेका कभी अवसर ही नहीं आया। वह मुग़लमें सबसे अधिक प्रशंसाका भाजन बना है। पर अकबरकी तरह हिन्दुओंका उपास्य वह नहीं था। उसमें धार्म्मिक कट्टरता थी पर राजनैतिक कारणोंसे वह सहिष्णुता की नीतिको छोड़ नहीं सकता था। जितनी प्रशंसाएँ बहुतेरे इतिहासकारोंने

---

* राय भारामलका 'लुब्ब-अत्-तवारीख़' देखिये।

शाहजहाँको अर्पितकी हैं इतने उसे मिलना न चाहिये। वह इतना दयालु और प्रजाहितकारी नहीं था। उसकी निर्दयताके उदाहरण भी मिलते हैं। यों तो अकबरसे औरङ्गजेब तकके सभी मुगल सम्राट् दयालु एवं न्यायके पक्षपाती थे। अन्तर केवल उनकी नीतिमें हुआ, न कि सिद्धान्तोंमें। कीन साहब* कहते हैं कि बुढ़ापेमें "शाहजहाँका पतन स्वयम् उसीके आचरणकी विचित्रताओंका फल था।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि यौवनावस्थामें वह सुयोग्य और वीर शासक था पर ज्यों ज्यों बुढ़ापा आता गया त्यों त्यों ठाट बाट, सुख-सौख्य, सौन्दर्य्य और कलांसे उसका हृदय अभिभूत होता गया। धीरे धीरे इसका परिणाम यह हुआ कि उसने शासनका बहुत कुछ कार्य दाराशिकोहके हाथों में छोड़ दिया। इस प्रकार यदि जहाँगीरने अपने प्यालेके आवेशमें शासनकी बागडोर कठिनाईसे प्राप्त ※ नूरजहाँ (भूमण्डल की प्रभा) को सौंप दी थी। शाहजहाँने भी अपने बुढ़ापेमें कुछ समयके लिये बहुत

---

* दी टर्क्स इन इण्डिया पृष्ठ १२६

※ नूरजहाँ भी अच्छा शासन करनेकी योग्यता रखती थी। उसका आचरण भी दिव्य था। सब लोग उसकी दयालुता और योग्यताकी प्रशंसा करते थे। नूरजहाँका अपने प्रथम पतिसे दृढ़ अनुराग रखना एवं जहाँगीरके साथ पुनः परिणय करनेसे अस्वीकार करना तथा जहाँगीरसे विवाह हो जाने पर उस पर प्रेम रखना तथा अन्तिम दिनोंमें जहाँगीरको मुहब्बतखांके चंगुलसे स्वतंत्र करना उसके पातिव्रत धर्मका प्रमाण है।

कुछ कार्य दाराशिकोहके हाथमें छोड़ रखा। यह बात अकबर और औरङ्गजेबके दृढ़ स्वयं शासनकी तुलनामें स्थिरता काल के दोनों सम्राटोंको (जहाँगीर तो प्रायः सदा और शाहजहाँ बुढ़ापेमें) निर्बल सिद्ध करती है। पर यह न समझना चाहिये कि जहाँगीर और शाहजहाँ अन्य सम्राटोंकी अपेक्षा (अकबर और औरङ्गजेबको छोड़कर) सबल शासक न थे। स्थिरताकाल में अकबरकी राज्यव्यवस्था और उनकी नीतिका स्थिरता पूर्वक अवलम्बन होता रहा। अन्तर अति सूक्ष्म रूपसे दृष्टिगोचर होने लगा था कुछ कुछ सुन्नीमें कट्टरताका अभियान आरम्भ हो गया था पर राजनैतिक विचारोंसे शाहजहाँ अधिक आगे न बढ़ा। मुग़लवंशके इन चारों महासम्राटोंमें कुछ अलग अलग विशेषताएँ थीं। अकबरकी सहिष्णुता और सुनीति, जहाँगीरके प्याला, शाहजहाँके* भवन निर्म्माण एवं औरङ्गजेबकी फ़कीरी कट्टरताका शासन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। स्थिरताकालमें साम्राज्यकी वृद्धि भी प्रायः नहींके बराबर हुई। दक्षिणमें प्रवेश कुछ अधिक हुआ। स्थिरताकालमें शाह-

---

* शाहजहाँके निर्म्माण तीन भागोंमें विभक्त हो सकते हैं।

(१) समाधि मन्दिर और राजभवन—ताजमहल, और शाहजहानाबादके किलेका राजप्रसाद सर्वोत्तम कलाके दृष्टान्त हैं।

(२) धर्म्म मन्दिर—बहुतेरे शाहजहाँ निर्म्मित धर्म्म मन्दिरोंमेंसे आगराकी जामा मसजिद तथा दिल्लीकी जामा मसजिद प्रधान हैं।

(३) सार्वजनिक कार्य्य—नहर इत्यादि।

जहाँकी सबसे अधिक प्रशंसा भवन-निर्म्माण और कोशके योग्यता-पूर्ण शासनमें ही है। पर १६५८ में औरङ्गजेबने उसकी स्वतन्त्रताका* अपहरण करके शासनकी बागडोर अपने हाथमें ली। उसने अपनी धार्म्मिकता और सुन्नी कट्टरताकी हद कर दी। वह बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ था पर शासन पर्य्यन्त अपनी धार्म्मिकताके कारण एकके बाद दूसरी राजनैतिक भूल करता गया।[1] १६६९ में हिन्दुओंके पवित्र देवालयों और विद्यालयोंको नष्ट करनेकी आज्ञा प्रसारित हुई और कुछ वर्ष बाद (१६८०) "दूषित" जज़िया-करका

---

* औरङ्गजेबने जिस समय शाहजहाँको बन्दी किया उसके ठीक दो शताब्दी बाद अङ्गरेज़ोंने उसके वंशके अन्तिम कुमारको सदाके लिये बन्दी करके देश निकालेका दण्ड दिया! भाग्यकी विचित्र योजनाके साथ (By a curious coincidence of Fate) भारतीय इतिहासमें मुग़ल वंशके लिये एक एक शताब्दी बाद ऐसी ही करुण घटनाएँ घटित होतीं गयीं! १७५७ के प्लासी युद्धको भी शाहआलमके बन्दी होनेका पेशख़ेमा समझना चाहिये! पर आश्चर्य्य है कि भाग्यकी इस विचित्र योजनाको शाहजहाँके स्वतन्त्राहरणसे एक शताब्दी पूर्व पानीपतके दूसरे युद्धमें एक भाग्यमान् तेरह वर्षके लड़केसे हार खानी पड़ी थी!!!

[1] औरङ्गजेब ने हिन्दुओंके विरुद्ध अपना अभियान विशेष रूपसे शाहजहाँकी मृत्युके (१६६६) बाद आरम्भ किया। क्या यह नहीं सम्भव है कि वह शाहजहाँके ही कारण हिन्दू विरोधी अभियानोंसे रुका रहा हो।

दुर्व्यवहार हुआ। स्वर्गीय जसवंतसिंहके पुत्रोंको दरबारमें बुला भेजना (सम्भवतः मुसलमान बनानेके लिये), शिवाजी को प्रलोभनों द्वारा दरबारमें बुलाकर अनादर करना और क़ैद कर लेना एवं गुरु तेगबहादुरको धर्म्मके नाते मृत्यु दण्ड देना ये सब कार्य्य थे जिनसे हिन्दुओंको बड़ा क्षोभ हुआ। सम्राट्ने इन्हीं सब कारणोंसे सतनामियों, राजपूतों, मरहठों, सिक्खों और सभी हिन्दुओंको अपना बैरी बना लिया। सतनामी तो दमन कर दिये गये पर उन्होंने भी सम्राट्को बहुत तङ्ग किया था। राजपूतों, सिक्खों और मरहठोंने सम्राट्से ऐसा वैर-साधन किया कि औरङ्गजेबकी दृढ़ भुजाओंके दूर होते ही साम्राज्यका पतन बड़े वेगसे होने लगा। इसी कट्टर नीतिका आश्रय लेकर औरङ्गजेबने बीजापुर और गोलकुण्डा के दक्षिणी "शिया" राज्योंको नष्ट किया जो अन्तमें साम्राज्यके स्थितिके लिये लाभकर होनेके बदले हानिकर हुआ। इस प्रकार औरङ्गजेबकी गाथा करुणापूर्ण राजनैतिक भूलोंसे भरी है—और यह करुणा इसलिये कि वह परलोक साधनके लिये राजनैतिक भूलोंके गर्त्तमें जान बूझकर पड़ा। जिस साम्राज्य के शासनमें सुयोग्य हिन्दुओंने बड़ी योग्यतापूर्वक एक शताब्दी तक हाथ बँटाया था उसके ऊँचे ऊँचे पदोंसे औरङ्ग-जेबने धीरे धीरे प्रायः सभी हिन्दुओंको अलग कर दिया और रिक्त स्थानोंमें मुसल्मानों (प्रायः विदेशियों) की नियुक्त हुई। छोटे छोटे पदोंसे भी हिन्दुओंको अलग करनेका विचार औरङ्गजेबने किया था पर यदि वह ऐसा करता तो शासन कार्य बिल्कुल चल ही नहीं सकता। अतएव छोटे छोटे पदों-में हिन्दुओंकी संख्या घटाकर ही उसे सन्तोष करना पड़ा।

फ्रायर (Fryr: New account of India) ने लिखा है कि "वह इस सिद्धान्तसे शासन करता है, मुग़लों या फ़ारसियोंमेंसे विश्वस्त कर्म्मचारी मिल सकें उन्हें साम्राज्यके उमरा बनाया जाय, पर वे सदा अपनी जागीरोंसे दूर नियुक्त किये जायँ।" अस्तु, साम्राज्यका प्रायः सभी कार्य धीरे धीरे हिन्दुओंके हाथोंसे निकाल लिया गया और मुसल्मान खोज खोज कर भरती किये गये जिसका प्रभाव शासनकी कार्य प्रणाली (Efficiency) पर भी विशेष पड़ा, क्योंकि कर्मचारियोंकी नियुक्तिके लिये योग्यता नहीं इसलामकी आवश्यकता थी।

औरङ्गज़ेबने राजनैतिक भूलें कीं पर यदि उसकी प्रजा अधिकतर सुन्नी मुसलमान ही होती तो वह संसारके सर्वोत्कृष्ट सम्राटोंमें गिना जाता। वह न्यायी था और उसके न्यायमें दयालुता थी। उसने मुसल्मान विद्वानोंको पेंशनें मंजूर कीं और मुसल्मानोंके कुछ करोंको भी बन्द कर दिया। सुन्नी मुसल्मान उससे बहुत प्रसन्न थे पर वह किसीका भी विश्वास नहीं करता था। उसने अकबरकी व्यवस्थासे प्रायः उन सभी नियमोंको उठा दिया जो कट्टर सुन्नियोंके लिये अयोग्य थे। सङ्गीतको तो उसने दरबारसे बिल्कुल बन्द कर दिया। वह सीधा सादा धार्मिक सम्राट् था। उसे शाहजहाँ वाले दिव्य छटाकी आवश्यकता न थी यद्यपि उसे भी दरबार में शाही छटा रखनी ही पड़ती थी। मालूम नहीं किस उद्देश्य से औरङ्गज़ेबने इतिहासका लिखना बिल्कुल मना कर दिया था और जो वृत्तान्त उसके समयमें लिखे गये वे गुप्त रीतिसे ही लिखे गये। इस प्रकार "कृताकरण काल" में पहलेके किये करायेको मिटानेकी चेष्टा जारी रही। औरङ्गज़ेबके समयमें

साम्राज्यकी सीमा और* राजकरमें वृद्धि हुई परन्तु उसने पहलेके सम्राटोंकी नीतिको विल्कुल वदल दिया। व्यवस्थाके कर्त्ता (Machinary of Government) को चलानेके सिद्धान्तों और नियमोंमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ पर व्यवस्थाकी नीति विल्कुल उलट गयी, जिसका परिणाम यह हुआ कि सम्राट्के मरनेके वाद साम्राज्य दिल्लीके आस पास लुड़खुड़ाने लगा और "पतनकाल" का आरम्भ हुआ।

औरङ्गजेवके वाद मुगल सम्राटोंका वल विल्कुल जाता रहा। १७०७ से १७५३ तकमें अकवरके वंशजोंकी रही सही शक्ति समूल नष्ट हो गई। मुगल सम्राट् उच्चाभिलाषी दर-

*मुगल सम्राटोंका राजकर इस प्रकार था।

		(पौंड)	
अकवर	१५६४	१८६४००००	(अवुलफ़ज़ल)
,,	१६०५	१९९३००००	(डिलापेट)
जहाँगीर	१६२७	१९९८००००	(वादशाहनामा)
शाहजहाँ	१६२८	१८७५००००	(मुहम्मद शरीफ़)
,,	१६४८	२४७५००००	(वादशाह नामा)
,,	१६५५	३००८००००	(सरकारी विवरण)
औरंगजेव	१६६० (लगभग)	२५४१००००	(वर्नियर)
,,	१६६६	२६७०००००	(थेवेनाट)
,,	१६६७ (लगभग)	३०८५००००	(वखतावर)
औरंगजेव	वादको	४०१०००००	(सरकारी विवरण)
,,	१६९७	४३५५०००	(मैनकसी)
,,	१७०७	३३९५००००	(रेमूजियो)

बारियोंकी कठपुतली बन गया। दक्षिणके मरहठे हिन्दू साम्राज्य स्थापन करनेकी चेष्टामें लगे थे। भीतरसे मुग़ल सम्राट् सैय्यदों और उनके बाद अन्य दरबारियोंकी कठपुतली था और बाहरसे मरहठे अपनी ताकमें थे। पश्चिमसे फ़ारसके नादिरशाहने १७३९ में दिल्ली पर आक्रमण करके मुग़लको पददलित किया और उसके बाद अफ़गानिस्तानकी क्रूर दृष्टि पंजाब और दिल्ली पर देख पड़ी। इस पतन कालमें भिन्न-भिन्न सूबे साम्राज्यसे विलग हो गये। हैदराबाद अवध और बंगालमें स्वतन्त्र मुसल्मान शासन प्रचलित हुआ। ऐसे सङ्कटके समयमें मुग़लराज्य व्यवस्था ढीली ही नहीं पड़ गयी—मरणासन्न हो गयी। पर हाँ, इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि जो जो स्वतंत्र राज्य मुग़ल साम्राज्यके स्थानापन्न होने लगे वे अपनी स्थितिके अनुसार हेर फेरके साथ मुग़ल राज्य व्यवस्थाका ही अनुसरण करते थे; केवल मरहठोंने ही उसका अनुसरण नहीं किया क्योंकि उनकी राज्यव्यवस्था मुग़लोंसे बिल्कुल भिन्न थी। पतनकालमें ही मुग़ल साम्राज्य का पतन हो चुका था। उसके बाद १७५२ से १८०३ तक देश में मरहठोंका प्रभाव अधिक था। पर साथ ही साथ एक दूसरी महाशक्ति भी उत्थान करनेमें तत्पर थी। उसने अपनी क्षमता सिद्धकर दिया। परन्तु "महाराष्ट्र प्रभाव काल"में यद्यपि कुछ समयके लिये मुग़ल सम्राट् अंग्रेजोंके हाथमें आ गया था तथापि मरहठों ने उसे अपने अधीन कर ही लिया। इस कालमें दो प्रबल शक्तियाँ (फ्रेंच और हैदरसुल्तान तथा टीपू) आरम्भमें अधिक उत्थानशील थीं पर इस कालके भीतर ही उनकी शक्तिका अंत हो गया। इस सम्बन्ध-

में यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि १७६१ में तृतीय पानीपत-युद्धने मुगल सम्राट्की शक्तिपर अन्तिम चोट डाली। पेशवाकी शक्तिका भी वहीं से ह्रास हुआ और सिंधिया की वृद्धि होने लगी इस कालके पहले ही मुगल शक्तिका अंत हो चुका था, पर उसके नामकी धाक देशमें अवशिष्ट थी। इसीलिये सभी उत्थानाभिलाषी शक्तियाँ मुगलको अपने वशमें लानेकी चेष्टा करती थीं। मुगल १८०३ तक सिंधिया के हाथमें था परन्तु उस वर्ष अंग्रेजोंने दिल्लीके साथ मुगल को अपने अधिकारमें लिया। लार्ड वेलेज्लीने मरहठोंकी शक्ति को क्षीणकर सर्वत्र अंग्रेजोंका दबदबा जमा दिया। मुगलके नामकी धाक भी मिट गयी। १८०३ से १८५८ तक ब्रिटिश का पेंशनर और अशक्त राजनैतिक कैदी रहा एवं १८५८ के बलवेमें भाग लेनेके कारण रंगून भेज दिया गया। तबसे भारतसे मुगल वंशका नाम निशान भी मिट गया, पर मुगलों की राज्यव्यवस्थाके ही आधार पर भारतमें आधुनिक व्यवस्था की सृष्टि हुई।

२१—वर्तमान शासन-पद्धतिके साथ सम्बन्ध और उससे तुलना

पिछले परिच्छेदमें देख चुके हैं कि किस प्रकार मुगल राजवंशका भारतवर्ष से नाम निशान भी मिट गया। सम्राट अकबर एक विशाल साम्राज्यकी रक्षाके निमित्त दो मूल मन्त्र अपने वंशजोंके लिये छोड़ गया था—एक तो, सुदृढ़ और संङ्गठित शासन-पद्धति और दूसरी, सहिष्णुता एवं उदार

नीति । येही दोनों बातें (अकबरी शासन पद्धति और अकबरी नीति अर्थात् (an organized system of Government and a liberal policy of Government) अकबरी राज्यव्यवस्थामें सम्मिलित हैं। जब तक अकबरी राज्यव्यवस्थाके दोनों अंगों का अनुसरण होता रहा तब तक भारतीय साम्राज्य मुग़लोंके हाथमें रहा परन्तु जब उस राज्यव्यवस्थाके एक अंगको छोड़ कर (अर्थात् अकबरी शासन नीतिको (Liberal policy of Government) औरंगजेबने सुन्नी कट्टरताका मार्ग पकड़ा तभी साम्राज्यके शरीरमें पतन रूपी कीड़े पड़ गये और अन्तमें साम्राज्यका विनाश भी हो गया। भारतमें अट्ठारहवीं शताब्दी में बड़े सङ्कटका समय था। शताब्दीके आरम्भमें ही देशके भिन्न भिन्न भागोंमें विविध प्रकारसे राजनैतिक गड़बड़ी मची और अन्त तक भली भाँति शान्त न हुई। नाना प्रकारके राज-नैतिक आन्दोलनोंकी धाराओंने मिलकर अट्ठारहवीं शताब्दी को रुधिर प्रवाह एवं अशान्तिका चञ्चल पलना बना दिया। एकतो यह देश विविध उच्चाभिलाषी जातियों तथा व्यक्तियोंका रक्त लीला-क्षेत्र बन रहा था। दूसरे विदेशी व्यापारी जातियोंने मिलकर अट्ठारहवीं शताब्दीकी भारतीय समस्याओंके चञ्चल स्वप्नोंको और भी जटिल बना दिया। यह देश स्वयमेव अपने कंटकमय पन्थको साफ़ करनेका मार्ग निकालनेमें दत्तचित्त था। सड़ककी पूरी पड़ताल हो चुकी थी। क्षितिजमें मुग़ल साम्राज्य के स्थान पर मरहठा साम्राज्यकी सफलताका बिन्दु बहुत समीप दृष्टिगोचर होता था। पर ऐसा होने न पाया। उन्नतिशील अंगरेज़ जातिने अपने राजनैतिक चातुरीके बलसे अट्ठारहवीं शताब्दीके अन्त होते होते यह सिद्ध कर दिया कि

भारतीय साम्राज्यको संगठित रूपसे शासन करनेके लिये उस डावांडोल शताब्दीके विविध तत्वोंमें से केवल ब्रिटिश जाति ही सफलता पूर्वक भारतकी दूसरी शताब्दीमें पैर रख सकती है।

मुगल साम्राज्यकी स्थापनामें जिस नीतिका आश्रय सम्राट् अकबरने लिया था उसीका अनुसरण अंगरेज़ोंने भी किया। अकबर ज्यों ज्यों साम्राज्यको बढ़ाता जाता था त्यों त्यों राज्य-व्यवस्थाको भी सङ्गठित करता जाता था। ऐसा ही अंगरेज़ोंने भी किया। भारतवर्षमें ब्रिटिश साम्राज्यके जन्मदाता लार्ड क्लाइवसे लेकर लार्ड वेलेज्लीके शासनके अन्त तककी आधी शताब्दीसे यदि अकबरवाली आधी शताब्दीकी तुलनाकी जाय तो कुछ बातोंमें समानता अवश्य देख पड़ेगी। राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी जिन जिन प्रश्नोंका सामना अकबरको करना पड़ा वेही प्रश्न प्राय: अंग्रेजोंके सामने भी उपस्थित थे। लार्ड क्लाइवका प्रबन्ध और सेना सम्बन्धी सुधार वारेन हेस्टिंग्सका भूमिकर एवं न्याय सम्बन्धी सुधार और कोषोन्नतिके उपाय, लार्ड कार्नवालिसका डंकिनी बन्दोबस्त और न्याय विचार सम्बन्धी सुधार तथा मार्किस वेलेज्लीकी सहायक सैन्यपद्धति (Subsidiary system) द्वारा भारतवर्षको ब्रिटिश आधिपत्यमें लानेकी चेष्टा—ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि अंगरेज़ोंके सामने लगभग उसी प्रकारकी समस्याएँ उपस्थित थीं जैसी सम्राट् अकबरके सामने।

परन्तु भारतमें मुगल साम्राज्यकी स्थापनासे ब्रिटिश साम्राज्यके स्थापनाकी तुलना (Comparision) करते समय ध्यानमें रखनेकी बात है कि मुगल साम्राज्यके संस्थापक बिल्कुल

स्वतन्त्र थे—साम्राज्यकी स्थापना एक स्वाधीन बादशाह स्वयं विजय और नीति द्वारा कर रहा था, उसकी सारी शक्तियाँ इसी देशमें मौजूद थीं और उन्हींके द्वारा मुगल साम्राज्यकी स्थापना हुई। किन्तु भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके स्थापक स्वतन्त्र नहीं थे। उन्हें कम्पनीके डाइरेक्टरों और ब्रिटिश गवर्नमेण्टकी आज्ञाका पालन करना पड़ता था तथा यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि भारतमें अंगरेज़ लोग व्यापारके निमित्त पहले पहल आये थे, न कि साम्राज्य-स्थापनाके हेतु। इन सब बातोंको ध्यानमें रखा जाय तथा सोलहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दीकी विभिन्न राजनैतिक स्थितियोंके अनुसार विचार किया जाय तो भारतमें मुग़ल और ब्रिटिश साम्राज्योंकी स्थापनाके भिन्न भिन्न पक्षोंमें जो अन्तर रहा उसका कारण स्पष्ट हो जायगा। इसी बातमें इसका भी उत्तर मिल जायगा कि १६०५ में मुग़ल साम्राज्य कैसे इतनी उन्नत और स्थिर अवस्थाको प्राप्त हो गया था जब कि पचास वर्षसे भी अधिक उद्योगके बाद १८०५ में भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यको केवल आंशिक सफलता ही मिल सकी थी। इस आंशिक सफलता को पूर्ण करनेमें अंगरेज़ोंको आधी शताब्दी और लगानी पड़ी। वेलेज्लीके जानेके समयसे लेकर महाराणी विक्टोरियाकी घोषणा तककी अर्द्ध शताब्दी बिना लार्ड क्लाइवसे लार्ड वेलेज्ली तक की आधी शताब्दीमें आरम्भ किया हुआ काम बिल्कुल अपूर्ण रहता। इस अर्द्ध शताब्दीमें लार्ड मिंटोकी विदेशी नीति, मार्क़िस हेस्टिंग्स द्वारा मरहठों, पिंडारियों और गोरखों पर विजयके साथ साथ मद्रासका रैय्यतवाड़ी बन्दोबस्त (सर टामस मुनरो), देशीभाषाके स्कूलों और अंगरेजी साहित्य

एवं विज्ञानके अध्ययनका प्रोत्साहन, लार्ड अम्हर्स्टका ब्रह्मायुद्ध, लार्ड विलियम वेंटिङ्ककी शासन नीति तथा उनके द्वारा सेना, भूमिकर, कोष, देशी कर्मचारियोंकी बाहुल्यके साथ नियुक्ति इत्यादि सम्बन्धी आर्थिक सुधार, सती प्रथाका पूर्ण निषेध, ठगीका निराकरण, न्याय विचार सम्बन्धी सुधार, अंग्रेजीको राज्यभाषा बनाकर फ़ारसीके स्थानमें देशी भाषाको कचहरियोंमें प्रयोग करनेका नियम तथा उच्चशिक्षाके लिये अंग्रेजी माध्यमका नियम, लार्ड हार्डिङ्ग द्वारा सिक्ख विजय; एवं लार्ड डलहौजीका सिक्ख युद्ध, ब्रह्मायुद्ध, जप्तीकी नीति (सतारा, झाँसी, नागपुर, अवध आदिकी जप्ती) एवं शासन सम्बन्धी सुधार तथा सार्वजनिक कार्य्य विभाग (Public Works Department) की स्थापना और प्रजाके हितसे विविध कार्य्य (नहर, रेल, तार, शिक्षा, डाक आदिका आयोजन तथा सिविल सर्विसका द्वार हिन्दुस्तानी और योरोपियन दोनोंके लिये अनावृत करना)—इत्यादि इत्यादि कार्य्यों द्वारा ब्रिटिश राज्य-व्यवस्थाकी नींव इस देशमें दृढ़ता पूर्वक जमायी गयी। परन्तु इस दृढ़ताने ही देशमें असन्तोष पैदा कर दिया और भारतमें १८५८ की भीषण बदमली उपस्थित हुई। १५८१ का सङ्कट अकबरके लिये उतना कठोर न था जितना १८५८ का बलवा अंग्रेजोंके लिये। भारतीय ब्रिटिश साम्राज्यका आकाश अंधेरी काली काली घटाओंसे मेघाच्छन्न था। पर अन्तमें बदमलीका अन्त हुआ और भारतवर्षका साम्राज्य कम्पनीके हाथसे निकल कर महारानी विक्टोरियाके हाथमें आया एवं लार्ड कैनिंग भारतका प्रथम वाइसराय हुआ। बदमलीके बाद महारानी विक्टोरियाने भारतके रजवाडों, रईसों और जनताके प्रति

घोषणा की। इसी घोषणाको भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके दृढ़ता पूर्वक स्थापित होनेका समय समझना चाहिये। अट्ठारहवीं शताब्दीके बिखरे दलोंको धीरे धीरे शान्त करके एक शताब्दी (१७५७-१८५८) के अविरल प्रयत्न द्वारा अंग्रेजोंने इस देशमें एक दृढ़ साम्राज्य और उन्नतिशील राज्य व्यवस्थाकी स्थापना की। जिस बुद्धिमत्ताके साथ सम्राट् अकबरने साम्राज्य और राज्यव्यवस्थाकी स्थापनाका काम एक साथ अपने हाथमें लिया था वैसा ही अंग्रेजोंने भी किया।

वर्तमान शासन-पद्धतिकी तुलना मुगल शासन पद्धतिसे करने पर कुछ महत्व पूर्ण विषयोंमें समानताएँ दृष्टिगोचर होंगी एवं अंतर भी पर्य्याप्त देख पड़ेंगे। भूमिकरका सङ्गठन तो मुगलोंकी ही पद्धतिके आधार पर हुआ है। बन्दोबस्तके सिद्धान्त प्रायः वही हैं पर विस्तृत नियमोंमें (details) बहुत भेद भी हुआ है (अकबरके भूमिकर-संगठनका वर्णन करते समय तुलनाकी गयी है)। देशका सूबों, कमिश्नरियों, जिलों और तहसीलों आदिमें विभाग एवं प्रबन्ध सम्बन्धी (civil) बहुतसे कर्मचारियोंके पदोंका आयोजन भी कुछ आवश्यक हेरफेरके साथ पुराने ही आधार पर हुआ है। पुलिसकी योजनाका भी आधार पुराना ही है परन्तु न्याय और सेना सम्बन्धी विभागों (Judicial and military) में विशेष अन्तर हुआ है। इन दोनोंके सङ्गठनमें योरोपके सम्पर्क का बहुत प्रभाव पड़ा है। प्रबन्ध, न्याय, सेना तीनों विभागों (Civil, judicial and military) में कार्य प्रणाली बहुत उन्नति (efficient) दशामें पहुँचा दी गई है। शासन पद्धतिके उन्नत (effieicnt) होनेके कारण देशमें सर्वत्र शान्तिका स्थान है।

परन्तु शान्तिसे यह न समझना चाहिये कि देशमें असन्तोष भी नहीं है। अकबरी राज्यव्यवस्था और वर्तमान शासन पद्धतिमें एक बड़ा भारी—सबसे अधिक महत्वका—अन्तर यह है कि मुग़ल बादशाह इसी देशको अपना देश समझते थे, यहीं रहते थे और यहीं सभी मुग़ल सम्राटोंका (बाबर और हुमायूँ को छोड़कर) जन्म भी हुआ था। उस समय यह देश (मुग़ल साम्राज्य) संसारकी महाशक्तियोंमें एक बड़ा राष्ट्र था। मुग़ल सम्राट (Despots) स्वायत्त शासक थे पर उनकी राज्यव्यवस्था स्वदेशी थी। भारतीय इतिहासमें यह पहला ही अवसर है जब कि इस देशका शासन एक दूसरे सुदूरस्थ देशके आधीन हुआ है। मुग़लोंकी राज्यव्यवस्थामें* हिन्दुओंको भी ऊँचेसे ऊँचे पद मिलते थे। तात्पर्य यह है कि देशकी प्रजा मुग़ल शासनको प्रायः स्वदेशी ही समझती थी पर वर्तमान शासन-पद्धतिमें यह देश एक विशाल ब्रिटिश साम्राज्यका—जो संसारके सभी महाद्वीपोंमें फैला है—अंश है। अतएव इस देशकी शासन-पद्धति पर पुराने आधारों (Standard) से विचार करना निरर्थक है। यहाँकी शासन पद्धति अब "कूप मण्डूक" नहीं है। संसारके गहरे प्रश्नोंका अधिकाधिक प्रभाव पड़ रहा है एवं भारतीय साम्राज्यका भाग्य जिस विशाल साम्राज्यके भाग्यसे बँधा हुआ है उसकी नीति और व्यवस्थाके अनुसार भारतके कार्य्योंका परिवर्तन करना अनिवार्य्य है। १८५८ से १९०८ तकके अंग्रेजी शासनके

---

*कुछ समय तक औरङ्गजेबके अधीन भी हिन्दू ऊँचे पद पर थे।

परिमाणोंका विवरण सम्राट् एडवर्ड सप्तमके घोषणापत्र तथा इस विषय पर पार्लियामेंटमें उपस्थित मेमोरैंडम (Memorandum on some of the results of Indian Administration during the last fifty years of British Rule in India नामक पुस्तक) में मिलेगा। देश में एक उन्नतिशील शासन पद्धति द्वारा शिक्षा प्रचार, सार्वजनिक कार्य, यात्रा और सम्वादके उपकरण (रेल, तार डाक) इत्यादिमें विशेष उन्नति हुई है। इस कालमें इस देश में दुर्भिक्ष भी अनेक पड़े हैं। पर सरकार द्वारा दुर्भिक्षके कष्टको कम करने की चेष्टाकी जाती है। देश को ब्रिटिश शासनसे अनेक उपकार हुए हैं जिनकी मुग़ल शासन से तुलना नहीं की जा सकती। देश की इस उन्नति का एक यह भी कारण है कि संसार अब सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी को पीछे छोड़ कर बीसवीं शताब्दीमें विचर रहा है और इस संसार धारा का भारत पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। कौंसिलों की स्थापना और* स्थानिक स्वराज्य का विकास ब्रिटिश काल (British Period) में धीरे-धीरे उन्नति को पहुँच गया है। मुग़लों की व्यवस्था में कौंसिल या स्थानिक स्वराज्यकी पद्धतिका अभाव था। हाँ, उस समय की ग्राम समितियाँ (Village communities) जो अनन्त काल से चली आ रही थीं और जिनका ब्रिटिश शासन के प्रभाव से अन्त सा हो गया अवश्य बहुत उत्तम थीं और उनके अन्त होने का बहुतों को

* प्राचीन हिन्दुओं ने स्थानिक स्वराज्य और कौंसिलों में बड़ी उन्नति की थी। राधाकमल मुकर्जी तथा बनर्जीके ग्रन्थ पढ़िये।

पश्चात्ताप है (देखिये सर हेनरी मेन की पुस्तक)। परन्तु प्रतिनिधि शासन पद्धति जिसकी नींव जमाने का यत्न इस देश में बहुत पहले से अंग्रेजों ने आरम्भ किया, मुग़लों के समय में बिल्कुल अनोखी रीति जान पड़ती। आधुनिक शासन प्रणाली-में विदेशीयता की मात्रा बहुत अधिक है पर धीरे-धीरे उत्तर-दायी शासन (Responsible Government) की ओर भी डग बढ़ानेकी चेष्टा हो रही है। यद्यपि देश में आज कल मुग़लों के समय से कहीं अधिक दरिद्रता है तथापि शासन प्रणाली में अनेक गुण विद्यमान हैं जो मुग़लों को स्वप्नमें भी न सूझते और इसका कारण यह है कि वे बीसवीं शताब्दीके संसारमें न थे! धन्य है संसारकी गति!